धरती माता

मूल लेखक

श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

अनुवादक

हंसकुमार तिवारी

प्रकाशक

जनवाणी-प्रकाशन

प्रकाशक

जनवाणी-प्रकाशन

१६१।१, हरिसन रोड,

कलकत्ता - ७

मूल्य ५)

मुद्रक

श्री हजारीलाल शर्मा

जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता – ७

निवेदन

भारतीय भाषाओं में बँगला, गुजराती, मराठी, तेलगू आदि भाषाओं का साहित्य बहुत विकसित है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा के पद पर अभी-अभी आसीन हुई है। इसके साहित्य-भाण्डार को भारतीय भाषाओं के उच्च साहित्य से भरना हमें परमावश्यक ज्ञात होता है। इससे राष्ट्र भाषा के सूत्र से भारतीय संघ-सरकार से सम्बद्ध राज्यों में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ऐक्य स्थापन में सहायता मिलेगी। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख हम 'धरती-माता' पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं।

वंग भाषा के उच्चकोटि के उपन्यासकार श्री तारा शङ्कर वन्द्योपाध्याय के सुविख्यात उपन्यास 'धातृ देवता' का 'धरती माता' हिन्दी अनुवाद है।

श्री तारा शङ्कर बाबू का यह उपन्यास वंग भाषा-भाषियों के बीच बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इसका कारण है कि यह युग-धर्म का प्रतिनिधित्व करता है, जड़-चेतन का सम्बन्ध स्थापित करता है। इसके पात्रों में उच्चादर्शों के साथ आदर्श-पालन की अद्भुत् क्षमता का दिग्दर्शन लेखक ने बड़े कलात्मक ढंग से कराया है। हमारे हाथ में जब पहले-पहल यह पुस्तक आयी और मैंने पढ़ना आरम्भ किया, तब पुस्तक बिना समाप्त किये छोड़ने को जी नहीं चाहता था।

इसके बाद ही मैं ताराशंकर बाबू से मिला और इसके हिन्दी-संस्करण के लिए उनसे निवेदन किया। जिस आग्रह से मैंने उनसे निवेदन किया, उसी प्रेम से उन्होंने तदर्थ अपनी सहमति प्रेमपूर्वक प्रदान की।

भाषान्तर किया है हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि पं० हंसकुमारजी तिवारी ने। यथासाध्य शुद्ध-सुन्दर रूपमें अपने हिन्दी-प्रेमी पाठकों के सम्मुख इसे उपस्थित करने का हमने शुद्ध प्रयत्न किया है।

आशा है, हमारे सत्प्रयत्न को अवश्य प्रोत्साहन मिलेगा और हम शीघ्र ही ताराशंकर बाबू और अन्यान्य सुलेखकों की सत्कृतियों को अपने प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर सकेंगे।

—प्रकाशक

प्राथमिकी

आधुनिक बँगला-साहित्य में जिन दो-तीन कथा-शिल्पियों के नाम सब से पहले लिये जाते हैं, श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय उनमें अन्यतम हैं। उपन्यास के क्षेत्र में इन्होंने एक ऐसी मौलिक अन्तर्दृष्टि, एक ऐसी रस-सृष्टिकारिणी प्रतिभा का परिचय दिया है, जो इसके पहले नहीं दिखायी पड़ी थी। यों युग और जोवन के प्रति ईमानदारी, प्रकृति और प्राण की गहराई तक पैठ, पारदर्शी पर्यवेक्षण शक्ति, जीवन की अज्ञात दिशा के उद्‌घाटन की क्षमता, चरित्रों के वैचित्र्य का वैभव, प्रांजल और प्रवाह-मयी भाषा, घटना-परम्परा में नाटकीयता—ऐसी विशेषतायें हैं, जिनकी हमें एक औपन्यासिक से अपेक्षा रहतो है। ताराशंकर में ये सामान्य विशेषतायें तो हैं ही, इनके अतिरिक्त भी कुछ है, जो साहित्य की वेदी को इन्हों की प्रतिभा के जादू ने दिया है। इनकी निजस्वता का यह श्रेय वही है, जिसे मैं मौलिक अंतर्दृष्टि कह आया हूँ।

युग के रंगमंच पर जीवन के अनेक रूपों के पात्र इन्होंने उतारे हैं। वे पात्र समाज की सभी श्रेणियों के जीव हैं—सब की अपनी समस्यायें हैं, सब का अपना परिवेश है। वास्तव और जीवंत तो वे इतने हैं कि सब में से मिट्टी-पानी को ताजगी की बू आती है, सब निर्मित मूर्तियों में धड़कन का भान होता है—पास-पड़ोस का चीन्हा-जाना-सा कोई जीवन की कटुता और विषमता की गहराई से पहचान के समान सिर उठाता हुआ दिखायी पड़ता है। अनेक-रूपता का वैचित्र्य उनमें इतना है कि कोई एक दूसरे की परिछांई नहीं—उनमें से सब अपने ढंग से अपना जीवन जी रहे हैं—सब का अपना अलग व्यक्तित्व है—एक दूसरे के बीच

निजत्व की बड़ी चौड़ी खाई है। किंतु इसके बावजूद जीवित युग की चेतना में युगातीत का संधान और संदेश है। जीवन के उन खंड-रूपों में अखंड और संपूर्ण जीवन-धारा की एकतारता की ध्वनि गूंजती है। लगता है, लेखक ने जिस प्रकृति, जिस समाज और जिन मनुष्यों के भिन्न और नवीन रूपों को हमारी आँखों के आगे उपस्थित किया है, वे एक दूसरे से दूर और भिन्न होते हुए भी एक ही अखंड जीवन के पूरक हैं—कार्य और कारण के एक अविच्छिन्न सूत में सब गुँथे हुए हैं। जैसे सितार के सब तारों की ध्वनि अपनी है, सर्वथा स्वतंत्र है, परंतु उनकी सामूहिकता से जीवन की एक ही मूलरागिनी झंकृत होती है, सुर के उस वैषम्य में एक अभंग एकता विराज रही है।

अंतर्दृष्टि की ऐसी अजेय शक्ति कल्पना और भावुकता के आवेग से नहीं मिलती ; तथ्य, तत्त्व एवं उपादानों के माल-मसाले जुटाने की श्रम-साध्य लगन से भी नहीं मिलती, न ही पुस्तक-पाठ के अध्यवसाय से मिलती है। इसके लिये तो दुनिया की खुली किताब, सृष्टि के कारखाने में रमने की जरूरत है, जहाँ समय और परिस्थिति के साँचे में जीवन के ढंग-ढंग के पुतले ढलते रहते हैं, जहाँ आँखों का समंदर पीकर ओठों को मुस्कुराना पड़ता है, जहाँ विवशताओं की राखों से पुते हुए जीवन के अंदर सत्य की चिनगारी अंतराल में दबी रहती है, जहाँ जीवन के स्वरूप की परिछांई बाहरी प्रकाश के दर्पण में सर्वथा उलटी पड़ती है। यह एक साधना है, तप है, योग है। ताराशंकर ने यह तप किया है और इसलिये हम पाते हैं कि उन्होंने जितनी भी मूर्तियाँ गढ़ी हैं, उनमें न केवल वैचित्र्य का कौतूहल और चमत्कार है, बल्कि आत्मचेतना की मार्मिकता है—जीवन का स्पंदन है। जिन्हें हम देखकर भी नहीं जानते, ऐसे रूपों की पहचान का एक अकाट्य प्रमाणपत्र ये हमारे सामने हाजिर कर देते हैं।

इसमें लेखक की तटस्थता भी एक बहुत बड़ी विशेषता है, जिसका कि इस सफलता में बहुत बड़ा हाथ है। लेखक के किसी पूर्वग्रह ने पात्रों का गला नहीं दबोचा है, जीवन के संबंध में अपनी किसी निश्चित नीति, वैज्ञानिक या दार्शनिक मत, साहित्यिकवाद का हौआ इन्होंने खड़ा नहीं किया है, लिहाजा पात्रों का विकास चरित्र की अपनी विशेषताओं के अनुरूप हुआ है, लेखक के संस्कार की तानाशाही के अनुसार नहीं। रंगमंच के प्रत्येक अभिनेता को जैसे अभिनय की स्वतंत्रता में प्राम्पटर कोई दखल नहीं देता---उसी तरह लेखक ने अपनी रुचि के अनुसार पात्रों के लिये लीक नहीं बनायी है, उन्हें अपनी राह पर, अपने ही ढंग से मंजिल की ओर जाने दिया है और उस यात्रा की चलती-फिरती तस्वीर औरों के लिये तैयार की है। इस आत्मनिरपेक्ष दृष्टि से पात्रों का सहज विकास संभव हुआ है। चूंकि अपने विचारों और रुचि के आईने में जीवन को न देखकर, उन्होंने उसे उसी के रूप में देखा, उसका उसी जैसा बिंब ग्रहण किया, उसका एक सुन्दर परिणाम उनकी कृतियों में स्पष्ट है। वह है कथा-वस्तु और चरित्रों का संबंध। संबंध यह कि कहानी का महल खड़ा तो चरित्रों की नींव पर ही होता है, लेकिन कहानी सिर्फ चरित्रों की समष्टि नहीं हो पाती, उनमें घटना-परंपरा की रोचकता और नाटकीय गतिशीलता भी आ जाती है। चरित्र भी फोटोग्राफ के चित्रों जैसे स्थिर और एकांगी नहीं हो पड़ते, उनमें विकास का एक अटूट क्रम, परिणति की एक विचित्र सुन्दरता भी समाविष्ट हो जाती है। ऐसा संयोग बहुत अधिक देखने को नहीं मिलता।

ताराशंकर के लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास हैं और सब से हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ता है। जीवन को देखने की इनकी जो दृष्टि है, वह इन्हीं की है। यों वस्तु-विन्यास और चरित्र-चित्रण आदि से ये प्रतीत तो सोलहोआने वास्तववादी होते हैं। आज का जीवन, आज

के जीवन की जलती समस्यायें, अभाव, विषमता—सब कुछ कठोर वास्तव-दृष्टि के परिपोषक हैं ; किंतु सब कुछ के होते हुए भी जीवन की कठोर वास्तविकता के पीछे के उस रहस्यमय पहलू को ये नहीं भुला सके हैं। परिस्थिति या प्रकृति के कानून को इन्होंने मानव-भाग्य का विधाता नहीं माना है, मनुष्य के जीवन-रहस्य ने प्राकृतिक नियम की कठोरता को जो श्री और समृद्धि दी है, उस अदृश्य, अलक्षित रहस्य का संकेत इनकी रचना में है।

हिंदी के पाठकों द्वारा कथा के इस जादूगर की रचनायें आदृत होंगी, इसका हमें विश्वास है। ग्राम्य चित्र और चरित्रों का इतना अच्छा वैचित्र्य, उनकी इस खूबी के साथ परिणति दिखायी गयी है कि दंग रह जाना पड़ता है। 'धरती माता' को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने छाती रोपकर धरती के मर्म में प्रवाहित होनेवाली रस-धार की लय को सुना है ; उसकी छाती पर जीने-मरनेवाले जीवन के जानें कितने रूपों का रूप रक्खा है—छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सुन्दर-कुरूप, अच्छे-बुरे—सब। सब को अपनी रस-दृष्टि से एक-सा सुन्दर, एक-सा रोचक, एक-सा आवश्यक प्रस्तुत किया है। सब के साथ लेखक की असीम आत्मीयता देखने की वस्तु है। मिट्टी की ऐसी आत्मचेतना और उस आत्मचेतना के साथ जीवन की ऐसी आत्मीयता—दोनों अनुपम हैं। धरती रूप लेकर खड़ी हो गयी है—मूर्तिमती, प्राणमयी माता—स्तन्य के अमृत से जीवन की जननी, पालिका और संहारमयी और उस माता से मिलती-जुलती एक नारी मूर्ति—फूफी—निदाघ की धूप से तपती-सी शासन की कठोरता, सघन पेड़ों की शीतल छाया-जैसा ममता का आँचल और आषाढ़ के प्राणवर्षी श्यामल-मेघ-सा फटकर गलनेवाला करुणा-विगलित मन। अनुपम चरित्र, विचित्र सृष्टि। और ऐसे ही जीवित जीवनों का मेला बसानेवाली ग्राम-माता की तस्वीर। आशा

है, हिंदी के पाठक इनकी रचनाओं से आनन्द और तृप्ति पायेंगे। इसी इच्छा से इन पुस्तकों का हिंदी-रूपांतर प्रस्तुत करने की प्रेरणा हुई थी। पुस्तक की अच्छाई का श्रेय उस समर्थ कलाकार को है, कहीं यदि त्रुटियाँ हों, तो वह मेरे अनुवाद का दोष जानिये, जिसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूं। हिंदी में इन्हें ला सकने की अपनी इच्छा स्वप्न ही रहती, यदि प्रकाशक महोदय सब प्रकार का कष्ट उठा लेने को तैयार नहीं होते। हम आप दोनों ही उनके समान रूप से कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इनके लिये श्रम और अर्थ-व्यय में किसी भी प्रकार की कोर-कसर नहीं रक्खी।

मानसरोवर, गया
ता० १० दिसम्बर, ५०

—*हंसकुमार तिवारी*

बंगाल की श्याम शोभामयी उपजाऊ धरती का रूप, मौजूदा विहार की सीमा के समीप, वीरभूम पहुँच कर सहसा बदल गया है। ऐसा लगता है, मानों राज-राजेश्वरी अन्नपूर्णा छहों ऐश्वर्य को छोड़, भैरवी बनकर, तप में मग्न हो गयी हैं। ऊबड़-खाबड़ गेरुआ प्रांतर, लहरों की भंगिमा से, दिगंत की नीलिमा में लय हो गया है। बीच-बीच में झरबेरी के झुरमुट और कँटीली झाड़ियाँ, बड़े पेड़ों में से ऊँचे खड़े ताड़ के पेड़ ऐसी दिखायी देती हैं; जैसे किसी तपस्विनी के दुबले हाथ आसमान की ओर फैले हुए हों। वीरभूम के दक्खिन वक्रेश्वर और कोपाइ—ये दोनों नदियाँ मिलकर कुए नदी बनी है, जो मुर्शिदाबाद जाकर मयूराक्षी से मिल गयी है।

इसी कुए नदी की उपजाऊ मिट्टी में, लाघाटा बंदर के वन्द्योपाध्याय-परिवार के सात आने हिस्से के मालिक कृष्णदास बाबू ने खुशनुमा देवीबाग लगाया था। सेवा-जतन और कछार की मिट्टी की उर्वरता से देवीबाग के पेड़-पौधे खासे घने और पुष्ट हो उठे हैं। बगीचे के अंदर एक पक्का काली-मंदिर, दो कमरे का बंगलानुमा एक मिट्टी का मकान और एक रसोई-घर है। साथ ही सघन पेड़ों की छाया के नीचे बैठने के लिये पक्के आसन भी बनवाये

गये थे ! और, कृष्णदास बाबू की अकाल मृत्यु हो जाने, गाँव से बगीचे के काफी दूर रहने तथा उसकी शोभा और सुख-उपभोग करनेवाले किसी सयाने उत्तराधिकारी के न होने के बावजूद भी देवीबाग मलिन और तेज-हीन नहीं हुआ ; हाँ, जरा जँगल-सा जरूर हो गया है। फिर भी चारों ओर की रुखी-सूखी उजाड़ गेरुआ प्रकृति के बीच इस बगीचे की श्यामलता से आँखें जुड़ा जाती हैं !

बगीचे के कालीमंदिर के बरामदे पर बैठा, कृष्णदास बाबू का पुत्र शिवनाथ, एक धनुष की प्रत्यंचा खींचकर उस की ताकत आजमा रहा था। कुछ ही दूर पर, मंदिर के प्रांगण में बैठा, चरवाहा शम्भू एकटक अपने छोटे मालिक की ओर निहार रहा था। मालिक और नौकर—दोनों के दोनों—बालक ही हैं, किसी की उम्र तेरह-चौदह से ज्यादा नहीं। एक ओर दो-एक लाठियाँ और थोड़े-से पत्थर धरे हैं। ये सब लड़ाई के सरो-सामान हैं। शिवनाथ गाँव के दूसरे मुहल्ले के लड़कों से लोहा लेने आया है। पिछले दशहरे से ही दोनों मुहल्लों के किशोर-राष्ट्र के बीच असंतोष और द्वेष की आग सुलग रही है। इस झगड़े का श्रीगणेश हुआ था दोनों मुहल्लों की देवी-प्रतिमा की श्रेष्ठता को लेकर। यों दोनों प्रतिमाओं को बनाया तो एक ही कारीगर ने था, मगर उससे क्या, अच्छाई-बुराई की गुंजाइश तो होती ही है ! जब इस मसले का कोई हल नहीं निकला, तब दूसरे मुहल्ले के लड़कों ने यह दावा किया कि हमारी प्रतिमा ज्यादा जीवन्त और जाग्रत है। और, इस बात पर शिवनाथ के मुहल्ले की हार हो गयी ; क्योंकि उस मुहल्ले में मनौती की बलियाँ बावन हुईं और शिवनाथ के मुहल्ले में महज आठ ! इस करारी हार के कलंक-मोचन के लिये शिवनाथ ने उस

मुहल्ले के लड़कों को फुटबॉल की चुनौती दी। फुटबॉल में शिवनाथ के मुहल्ले ने बाजी मारी, मगर उसी से पड़ गयी लड़ाई की बुनियाद। फुटबॉल में हार जाने पर उधर के लड़कों ने शिवनाथ के किसी सहयोगी बालक का सिर फोड़ दिया। शिवनाथ ने धमकी देते हुए उधर के दलपति को पत्र दिया कि यदि गैरवाजिब तौर से हमला करनेवाले लोग, तुरंत गलती कबूल कर, क्षमा नहीं माँग लें, तो हम भी इसका बदला लेंगे।

इसके बाद ही छिट-फुट हमले शुरू हो गये। कभी यदि उधर के लड़के आते, तो ये लोग उन्हें कैद करने की कोशिश करते। उन्हें यदि कैद होना गवारा न होता, तो लड़ाई हो जाती। इधर के लड़के अगर कभी उधर निकल जाते, तो कुछ धौल-धमाके खाकर ही वापस आते। लिहाजा शिवनाथ ने अपनी ताकत की आजमाइश के लिये दुश्मनों को खुलकर लड़ने के लिये ललकारा। और, दोनों दलों की राय से वह गेरुआ प्रांतर ही युद्ध भूमि मान लिया गया। बाल-सुलभ चंचलता और झक के सिवाय शिवनाथ के पास एक और भी चीज थी, वह थी उसकी शिक्षा की विशिष्टता। इसी अर्से में अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त वह और भी बहुत सारी पुस्तकें पढ़ चुका है। असमतल रणक्षेत्र की बात सोचते ही उसे राजसिंह की याद आ गयी। बंकिमचन्द्र का 'राजसिंह' वह पढ़ चुका था। प्रांतर की ये खंदक-खाइयाँ पहाड़ी रास्ते जैसी ही तो हैं! सो उसने राजसिंह के कौशल से ही अपनी फौज रखने का मनसूबा गाँठा और कुछ साथियों के साथ, भली तरह देख-सुनकर, कुशल सेनापति के समान सैनिकों को सज्जित किया। रास्ते के दोनों किनारे, पास की खाइयों में, उसने अपने साथियों को छिपा दिया और खुद कुछ लड़कों के साथ सामने खड़ा

रहा, जैसे शत्रुओं की राह देख रहा हो। इस दाँव का नतीजा भी आशा के अनुकूल ही निकला। दुश्मनों ने देखा कि शिवनाथ की ताकत कम है और उन्होंने आव देखा न ताव, चढ़ दौड़े। उनका नजदीक आना था कि छिपे हुए साथियों ने निकलकर पीछे से उन पर धावा बोल दिया। पाँचेक मिनट में शिवनाथ की जीत हो गयी। दुश्मनों के पाँव उखड़ गये और वे भाग खड़े हुए। मगर शिवनाथ ने केवल आगे और पीछे का प्रबंध किया था। बगल के खुले रास्तों को घेरने की बात उसके दिमाग में आयी ही नहीं थी। सो जिससे जिधर बन पड़ा, शत्रु-दल के लोग भाग गये। कुछ लोग पकड़े गये, कुछ भागते हुए पत्थरों की ठेस खाकर गिरे और घायल हो गये, कुछ के पीछे शिवनाथ के लोग दो दलों में बँटकर दौड़े। जो पकड़े गये थे, शिवनाथ ने उनके साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं किया, बल्कि उनसे संधि की, अपने बगीचे के कुछ फल उन्हें उपहार में दिये। उनके साथ अब शिवनाथ या उसके दल के लोगों की कोई दुश्मनी नहीं रही। शिवनाथ ने यह बात मान ली कि देवी-प्रतिमा उन्हींके मुहल्ले की श्रेष्ठ है और उन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया कि शिवनाथ और शिवनाथ की फुटबॉल-टीम श्रेष्ठ है। अब शिवनाथ शत्रु-दल के सरदार की बाट जोहने लगा। किन्तु ; जिन लोगों ने उनका पीछा किया, उनमें से कोई भी अभी लौटकर नहीं आया। शिवनाथ ने ठान लिया है, दलपति के साथ भी वह कैदी पोरस के समान ही व्यवहार करेगा। लेकिन हाँ, उसके मंत्री और सेनापति, उस टेढ़ी टाँगवाले कन्हैया और रजनी को पकड़ पायें, तो उन्हें दाँतों तिनका दबवाये बिना हर्गिज नहीं छोड़ें।

शम्भू ने कहा—बाबू, वे अब लौटकर आनेवाले नहीं। साँझ हो आई, चलिये, घर चलें। वही तब के तो आये हैं!

शिवनाथ ने नजर उठायी, वास्तव में वक्त अब था नहीं, सूरज अस्ताचल को जा चुका था, पूरब दिशा धुँधली होती आ रही थी। वह बरामदे में खड़ा हो गया और चारों ओर नजर दौड़ाकर बोला—मगर ये सब-के-सब चले कहाँ गये आखिर ?

शम्भू ने सयाने के समान गर्दन हिलाकर कहा—अपने घर। भूख लगी होगी, सब अपने-अपने घर चले गये।

मगर शिवनाथ को यह जवाब कुछ जँचा नहीं। लोग लोहा लेने आये थे; फिर, भूख से बेचैन हो घर कैसे चले जायँगे भला ! कुछ सोचकर उसने कहा—तू जरा पेड़ पर चढ़कर ऊँचाई से तो देख कि कहीं कोई दिखायी देता है या नहीं। उस बहेड़ के पेड़ पर चढ़, काफी ऊँचा है, दूर तक देख सकेगा।

शम्भू, छिपकिली के समान ही सहज ढंग से, उस लम्बे पेड़ के तने पर चढ़ गया। लगभग चोटी पर ही जा पहुँचा और वहाँ से उम्ककर चारों ओर देखा और बोला—आप भी जैसे बाबू, भला वे अब कहाँ दीख सकते हैं ! वे जरूर फड़वी खाने को घर चले गये हैं।

हताश होकर शिवनाथ ने एक लम्बी उसाँस फेंकी। शम्भू पेड़ से उतरता आ रहा था। दिगंत की ओर आँखें दौड़ा कर वह मजे के सुर से गा उठा—The boy stood on the burning deck. उसे कैसाबियन्का की याद आ गयी। वह अपनी जगह से एक कदम भी नहीं हटा था। शिवनाथ ने समुद्र नहीं देखा, कभी जहाज भी नहीं देखा, किन्तु फिर भी उसकी आँखों में कैसाबियन्का की तस्वीर खिंच आयी। नील पारावार, उसके बीच लपटों में झुलसता जहाज और जहाज के भीतर खड़ा

किशोर कैसाबियन्का। उसके लम्बे केश आग से तपी हवा के गर्म झोंकों से झूल रहे हैं!

And shouted but once more aloud
'my father! must I stay?'
While o'er him fast through sail and shroud
The wreathing fires made way.

अचानक उसकी कल्पना में बाधा पड़ी। अरे, वह क्या! दो सियार एक सुकुमार बछड़े को पकड़े लिये जा रहे हैं। ना, ये सियार-जैसे तो नहीं लगते। ये तो सियार से कहीं बड़े हैं। देखने में बहुत-कुछ सियार-जैसे होते हुए भी सियार से इनमें फर्क है। सियार तो इस प्रकार पूँछ सीधी करके नहीं चलते। उनके चलने का ढंग भी तो ऐसा गुमानी नहीं होता। इनके चेहरे की बनावट भी तो सियार से नहीं मिलती! वह जरा चौकसी दिखाते हुए, शम्भू को पुकार उठा—शम्भू, रे शम्भू!

पुकारने के ढंग से शम्भू चौंक उठा, बोला—'जी!' और पेड़ की कुछ ऊँचाई पर से ही धम्म से नीचे कूद आया। अँगुली से इशारा करके शिवनाथ ने कहा—देखा?

शम्भू बोला—आह, सालों ने काम तमाम कर दिया है! बछड़ा मर गया है!

शिवनाथ ने पूछा—ये सियार तो नहीं हैं, भेड़िये हैं क्या रे?

—जी हाँ। बड़े पाजी होते हैं ये। देखिये न, यह लोहू गिरा है!

शिवनाथ ने धनुष सम्हालकर कहा—लगाऊँ एक तीर?

—ना। जाने दीजिये सालों को। अभी खदेड़ ले जायँगे और फाड़ खायँगे। बाघ की जाति के हैं न!

दोनों चुपचाप खड़े-खड़े उन जानवरों की ओर देखने लगे। शिवनाथ मुग्ध-विस्मित नेत्रों से देख रहा था। बार-बार उसके जी में आ रहा था कि आज अगर कहीं बन्दूक होती, तो इन दोनों को वह मार डालता। भेड़िये मुँह में बछड़े को लिये चले जा रहे थे। उनकी चाल में जीत का गर्व था, आनन्द का आभास था। बगीचे के पार ही पड़ता था उदासी पोखर। वह बड़ा पोखर अब भर कर खेती-योग्य जमीन में बदल गया है। पोखरे का ऊँचा-लम्बा चौतरफा बांध बन-बेर, सहोर, सेमल, ताड़ आदि पेड़ों और झाड़ियों से घने जंगल-सा हो गया है। भेड़ियों ने उसी बांध के नीचे बछड़े को डाल दिया और बैठ कर हांफने लगे।

शिवनाथ का कौतूहल क्रमशः बढ़ता जा रहा था। उसने रूस के बर्फ से ढँके मेरुप्रदेश के सिलसिले में उल्फ के बारे में पढ़ा था—उल्फ है या भेड़िया और हुड़ार।

उसने कहा—चल शम्भू, थोड़ा बढ़कर देखें।

कौतूहल तो शम्भू का भी बढ़ रहा था। वह बोला—पेड़ की आड़ लेते हुए चलिये।

पेड़ों की ओर से चलकर वे बहुत समीप जा पहुँचे। शिवनाथ ने देखा, दोनों जानवर जीभ निकाल कर हाँफ रहे हैं। मगर ताज्जुब है, उसमें हँसी की रेखा साफ फूट आयी है। गजब की बात, ये जानवर भी हँसते हैं! हाँ जानवर हँसते हैं, उसके घर के कुत्ते– कलुआ–में भी जब खुशी अँटाये नहीं अँटती, तब उसके मुँह में भी ऐसा ही ढङ्ग फूट पड़ता है, वह भी हँसता है। जरा ही देर बाद उनमें से एक अजीब ढङ्ग से आवाज कर उठा, फिर और फिर। संध्या का अन्धकार धीरे-धीरे घना होता आ रहा था,

फिर भी धुँधले उजाले में शिवनाथ को दिखायी पड़ा—कुत्ते के पिल्ले-जैसे कई बच्चे कीं-कीं करते हुए माँद से बाहर निकल पड़े।

शम्भू ने कहा—सालों के बच्चे भी हुए हैं—एक, दो, तीन। जरा मजा तो देखिये, देखिये बच्चों की तेजी!

बछड़े की चोट पर से बहते हुए खून को चाटते हुए बच्चों ने आपस में झगड़ना शुरू कर दिया था। एक दूसरे को खदेड़ कर हर एक अकेला ही खून पीना चाह रहा था। जिसे रुकावट होती, वही मारे क्रोध के गुर्रा उठता। नर-मादा, दोनों पहले जैसे ही, बैठे थे और बच्चों की ओर देख-देख कर वैसे ही हँस-से रहे थे। थोड़ी देर बाद, उन्होंने बछड़े के पँजरों को फाड़ डाला और खाने लगे, और यह देखकर उनके बच्चे गजब ढंग से गरज उठे!

शम्भू ने कहा—चलिये, इसी मौके पर हम लोग रफूचक्कर हो जायँ। अब ये खाने में लग गये हैं, छीना-झपटी करते हुए लड़ पड़ेंगे। अँधेरा भी हो आया। रास्ते के खाई-खंदकों से साँप-बाँप भी निकलेंगे।

शिवनाथ की उत्सुकता शांत नहीं हुई थी। भोजन के लिये भेड़ियों की छीना-झपटी देखने की उसकी लालसा प्रबल हो रही थी, लेकिन अबकी बार फिर वह इनकार नहीं कर सका। माँ के मनोरम मुखड़े की बड़ी-बड़ी आँखें उसके मन की आँखों पर तिर आयीं।

पेड़ों की आड़ लेते हुए गाड़ी की लीक पकड़कर वे गाँव की ओर बढ़ने लगे। इस सीधी सड़क के दोनों किनारे आम के पेड़ों की पाँत थी, पहले रास्ते पर रोड़ियाँ बिछी थीं, अब काँस और घास से वह सफाई नहीं रह गयी थी। भेड़ियों की झड़प की गरज से साँझ भारी हो उठी। चलते-चलते

शिवनाथ ने पूछा—अच्छा शम्भू, यह तो बता, ये भेड़िये के बच्चे क्या पोस नहीं मानते ?

शम्भू ने कहा—सब्र कीजिये, कल साँझ को जब नर-मादा बाहर निकल जायेंगे, तो एक को पकड़ ले आऊँगा।

खुशी में भर कर शिवनाथ बोल उठा—बन्दूक मिल जाय तो मैं दोनों को मार दे सकता हूँ। मगर माँ बन्दूक छूने जो नहीं देतीं !

शम्भू ने कहा—संथालों को एक बार कह दीजिये तो तीरों से ही इनका काम तमाम कर दें।

शिवनाथ थमक गया, बोला—अरे सुन-सुन, शायद खेल रहे हैं बच्चे। मगर ठीक आदमियों-जैसे बोल रहे हैं, हँस रहे हैं, बिगड़ रहे हैं, कतराते हैं—सभी कुछ साफ-साफ मालूम हो रहा है।

अब उनकी आपसी लड़ाई की खूंखार गरज थम गयी थी। माँ-बाप और बच्चों की आनन्द-किलकारी से बगीचा गुलजार हो उठा था।

शम्भू ने रुक कर सुना, सच तो, उस कर्कश आवाज में हँसी की ध्वनि स्पष्ट हो उठी है। वह बोला—साले क्या बोलते हैं, वही जानें। आज खाने को खूब मिल गया है न !

जब वे गाँव में पहुँचे, तो घर-घर दीया-बत्ती होने लगी थी। रास्ते में अँधेरा गहरा था। मंदिरों में शंख और घण्टे की ध्वनि हो रही थी। शिवनाथ ने संतोष की साँस ली कि उसकी माँ और फूफी अभी मंदिर में होंगी और वह जाते ही किताबें खोलकर पढ़ने बैठ जायगा। उसकी कचहरी में रोशनी हो चुकी थी। शिवनाथ सीधे अपने पढ़ने के कमरे में दाखिल हुआ। मेज पर धीमे-धीमे बत्ती जल रही थी ; बत्ती को उकसा कर वह

हाथ में एक किताब लेकर बैठ गया। दूसरे ही दम उस पुस्तक को उसने रख दिया और डिक्शनरी के पन्ने उलट कर निकाला—Wolf-Erect-eared straight-tailed harsh-furred twany-grey wild carnivorous quadruped, the Abyssinian wolf, the Antarctic wolf, the Maned wolf and the Prairie wolf—बस। ऐसे भेड़िये तो वहाँ भी पाये जाते हैं···। इस अधूरे विवरण से शिवनाथ का जी नहीं भरा। खिन्न होकर उसने किताब बन्द कर दी, और चुप बैठ रहा। और जरा देर बाद, उसने फिर डिक्शनरी के पन्ने पलट कर निकाला—टाइगर, रायल बंगाल टाइगर, संसार के सभी जाति के बाघों में बेजोड़, दुर्जय, पराक्रमी, अपार साहसी, बाघों का राजा।

तीसरे पहर कहाँ रहा रे शिवू?

शिवनाथ ने चौंक कर किताब रख दी और उठ खड़ा हुआ। गृहदेवता पर चढ़ायी हुयी एक माला लिये, फूफी उस कमरे में आयीं। उसकी मां उनके साथ नहीं थीं, शिवनाथ को भरोसा हुआ। वह उत्साह के साथ बोला—फूफी, आज मैंने दो-दो भेड़िये देखे।

शिवनाथ के माथे से हाथ की माला छुलाकर फूफी ने पूछा—भेड़िये देखे? कहाँ?

हमारे बगीचे के पास ही उनकी माँद है। आज एक बछड़े को मार दिया, अः, लोहू जो गिर रहा था फूफी!

अच्छी मुसीबत आयी तो! बछड़े, बकरी, भेड़ें मार-मार कर तबाह कर देंगे ये। तीन छोटे-छोटे, इत्ते छोटे-छोटे...

आधी बात शिवनाथ के मुँह में ही रह गयी। दरवाजे की ओर देख

कर ही वह एकाएक चुप हो गया। पता नहीं, माँ दरवाजे पर आकर कब खड़ी हो गयी थीं।

माँ ने कहा—मगर यह तो बता, उस मुहल्ले के लड़कों से तूने मार-पीट क्यों की है?

सामने ही अभयदान देनेवाली फूफी खड़ी थीं। उनके भरोसे साहस बटोर कर शिवनाथ ने कहा—मार-पीट क्यों करने लगा? उनके साथ मैंने युद्ध किया है।

—युद्ध?

—और नहीं तो क्या! देखो न, उन्होंने लड़ाई की चुनौती का पत्र दिया है। शिवू ने अपनी जेब से उस पत्र को निकाला, जिसमें विरोधियों ने इसकी चुनौती को स्वीकार करते हुए लड़ना कबूल किया था।

मगर मैं यह पूछती हूँ, यह लड़ाई आखिर है किसलिये? एक गाँव के लोग हैं, सब भाई के समान···

इस बार फूफी ने बीच ही में टोका—जो किया है, ठीक किया है। उन लड़कों के बाप शुरू से हम लोगों से जलते रहे हैं, आज भी मौका आता है, तो अपमान करने से नहीं चूकते। और अभी से उनके लड़कों का द्वेष तो देखो!

माँ ने हँसकर मीठे शब्दों में कहा—नहीं बहन, आपस में झगड़ा करना भी कोई अच्छी बात है? फिर मनुष्य और जानवर में फर्क ही क्या रहा?

शिवनाथ की आँखें माँ के चेहरे पर थीं, पर मन में भेड़ियों की छीना-झपटी की याद आ रही थी। कभी-कभी माँ उसे इतनी ही भली लगती!

दो

बात दूसरे ही दिन की है। दिन के आठ भी नहीं बजे होंगे। शिवनाथ की कचहरी के दक्खिन मुँहवाले फूस के बँगले के बरामदे में नायब सिंह जी चौकी पर बही-खाता खोले बैठे थे। नौकर सतीश ढेरे पर सन की रस्सियाँ बाँट रहा था। अन्दर अर्दली किसन सिंह अपनी पगड़ी दुरुस्त कर रहा था।

इसी बँगले के समकोण पर, पूरब की तरफ, फूस का दूसरा एक छोटा बँगला है, जिसमें नौकर, अर्दली रहा करते हैं। इसी के अन्दर छप्पर में हिफाजत से रखी दो पालकियाँ झूल रही हैं, जिनमें से एक का नाम 'सरकार सवारी' और दूसरी का 'मालकिन-सवारी' है। गरज कि एक थी मालिक के लिये, दूसरी गृह-स्वामिनी के लिये। मालिकन-सवारी की सजावट भड़कीली है, पालकी के अन्दर लाल सालू की परतें, छत के चँदवे के चारों ओर नकली मोती की झालरें। कचहरी के सामने ही प्रायः दो कट्ठे जमीन घेर कर फूलों का बगीचा लगा है। एक ओर नारियल के पेड़ों की कतार ; बीच में बेला, जुही, कनेर, जवाफूल, कामिनी, थल-कमल आदि की क्यारियाँ। बाग के बीचो-बीच ईंटों का बना एक चबूतरा। इस बाग के बाद ही लगभग डेढ़ बीघे का खलिहान—ऊँची दीवारों से घिरे

खलिहान में एक ओर धान की तीन सुरक्षित मोरियाँ। बाग के पास ही, जहाँ से खलिहान शुरू होता है, एक फाटक है। फाटक के दोनों ओर के पायों पर दो प्रकार की लतायें लगी हैं—एक मालती, दूसरी मधुमालती। ऊपर जाकर दोनों लतायें एक दूसरे से मिलकर एकाकार हो गयी हैं। घर से पूरब तरफ बनर्जी बाबुओं के प्रिय तालाब श्री पोखर के दक्खिनी बाँध पर ही और एक घर है—गोशाला, कृषि-सम्बन्धी घर, सूना अस्तबल।

फूफी वहाँ जाकर खड़ी हो गयीं—पीछे ही पीछे आयी उनकी दाई नित्तो। अपनी पैनी निगाह चारों ओर दौड़ा कर फूफी ने पूछा—किसन सिंह कहाँ है?

अपनी पगड़ी सम्हालते-सम्हालते किसन सिंह बाहर निकल आया। बोला—जी!

फूफी ने पूछा—शम्भू कहाँ लापता है? गाय-गोरू को सानी दी गयी है?

मोटी कांच के ऐनक को नाक की नोंक पर खींच कर भौंओं और ऐनक के बीच से इधर-उधर देख कर सिंह जी ने आवाज दी—शम्भू, अरे शम्भू!

इस बीच जल्दी से किसन शम्भू की खोज में चल दिया।

फूफी ने कहा—इसकी खबर अहले सुबह ही ले लेनी चाहिये सिंहजी, हिन्दू-घर में गो-सेवा में अपराध होने से शाप लगता है।

सर खुजाते हुए सिंहजी कुछ कहा ही चाहते थे कि फूफी बोल उठीं—सतीश, जरा कचहरीवाले कमरे को खोल।

कृष्णदास बाबू की मृत्यु के कई साल हो गये, तब से यह कमरा लगभग

खोला ही नहीं गया। शिवनाथ के बालिग हो जाने पर ही फिर यह नियम से खोला जायगा, काम में लाया जायगा। सतीश ने कुञ्जी से कमरे को खोल दिया। अंदर घुसकर फूफी भौंचक-सी खड़ी रहीं। कमरा ज्यों-का-त्यों सजा-सजाया है। विशाल कमरे के बीचोबीच आबनूस की एक मेज, उसके पीछे वजनी लकड़ी की एक पुराने ढङ्ग की कुर्सी, मेज के दोनों ओर कमरे के दोनों सिरों तक फैली हुई दो बड़ी-बड़ी चौकियाँ। चौकियों पर उसी तरह से फर्श बिछे हुए हैं, फर्श पर करीने से रखे हुए हैं तकिये। कमरे की दीवारों पर देवी-देवताओं की तस्वीरें टँगी हैं, दरवाजे के माथे पर पुराने ढङ्ग की मन्दिरनुमा दीवालघड़ी खट-खट चल रही है। चांदी की गुड़गुड़ी तक एक तिपाई पर उसी तरह धरी है, जिसकी सटक मेज पर पड़ी है, लगता है, इसका पीनेवाला शायद किसी काम से उठकर यहीं कहीं गया है।

फूफी ने एक लम्बी साँस ली, बोलीं—खिड़कियों को खोल दे, जरा धूप आये।

उस कमरे से बाहर आकर उन्होंने नायब से कहा--देखिये, बगतोड़ के महेंद्र गुसाईं के पास किसी को भेजना है। लल्ला की जन्मपत्री देखकर शांति की व्यवस्था···

अचानक कुछ क्षण रुक कर, वह फिर बोलीं—खैर, आप उन्हें आने को लिख दें।

उसके बाद फिर बोलीं—इलाकों में आदमी भेजे गये या नहीं?

नायब ने कहा—जी हाँ, आदमी तो परसों ही चले गये।

फूफी वहाँ और न रुक कर श्री पोखर के बाँध पर जा खड़ी हुईं।

तालाब मझोले आकार के चौकोर—इस तालाब के चारों तरफ बाँध पर ताड़ के पेड़ों की पंक्तियां सीमा बनाती हुई दीवार जैसी खड़ी हैं! फूफी की नजर पड़ी कि दूसरी ओर कई लोग—कुछ कर रहे हैं। उनके पास एक मेज है और कुछ मजदूर जंजीर जैसी किसी चीज को खींचकर इधर-उधर ले जा रहे हैं – हाँ, जंजीर ही तो!

जरा ऊँची आवाज से फूफी ने पूछा—कौन है वहाँ?

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। अपनी कचहरी की ओर पलटकर फूफी ने पुकारा—सिंह जी!

आवाज पाते ही नायब दौड़े आये। पाँवों की आहट से ही उनके पहुँचने का पता पाकर फूफी ने कहा—जरा देख तो आइये, वहाँ हमारी चौहद्दी के अन्दर वे क्या कर रहे हैं?

यह बात भी फूफी ने स्वाभाविक ऊँचे स्वर में ही कही। इस बार उस ओर से जवाब मिला—साहा पोखर की चौहद्दी नापी जा रही है।

साहा पोखर श्री पोखर की बगल में ही है। उसके हिस्सेदारों में बँटवारे का एक मामला चल रहा है –यह सब को मालूम है।

फूफी ने कहा—वह जो भी हो, मगर हमारी चौहद्दी के अन्दर जंजीर क्यों गिरी? उठा लीजिये।

दूसरे मुहल्ले के शशि राय ने कहा—हम लोगों ने आपकी सरहद को खा नहीं लिया, न उठाकर ही लिये जा रहे हैं—

फूफी ने बीच ही में बाधा देकर कहा—आप हमारी चौहद्दी से जंजीर उठा लें, बस!

उनकी आवाज और उसमें आदेश की बू पाकर सब लोग चकित-से

हो गये। बूढ़े शशि राय गँजेड़ी थे—पागल की तरह वे बोल पड़े—बड़ी हरामजादी औरत है यह !

उनका कहना था कि कठोर कंठ से आदेश मिला—किसन सिंह, उस जानवर की गर्दन पकड़कर अपनी सरहद से बाहर कर दो। जाओ।

फूफी के कर्कश कंठ की आवाज सुनकर किसन सिंह नायब के साथ ही लाठी लिये आ गया था ! आदेश पाते ही चुपचाप उस बाँध की ओर चल दिया। फूफी ने तबतक नायब से कहा—माप-जोख के लिये जो सरकारी कर्मचारी आये हैं, आप उनसे जाकर कहिये कि मैं उनसे मिलना चाहती हूँ। और खुद अपनी कचहरी में चली आयीं। सतीश से कहा—सतीश, बैठका खोल दे और लल्ला के पढ़ने का कमरा खोल कर उसमें पर्दा डाल दे। लल्ला है कहाँ, उसे बुला।

शिवनाथ अस्तबल के पिछवाड़े शम्भू से फुसफुसा कर कुछ मशविरा कर रहा था—वही भेड़िये का छौना पकड़ने का मशविरा। उसे पालने का उस पर नशा-सा सवार हो गया था। यहाँ तक कि रात को भी उसे इसके सपने आते।

शम्भू का उत्साह भी उतना ही गहरा था। बोला—वह सब ठीक हो जायगा बाबू ! झिलमिल वेला में उनके माँ-बाप बाहर चल देते हैं। वे उधर निकले नहीं कि हम लोग मांद से बच्चे को निकाल कर चम्पत हुए !

कुछ सोच कर शिवनाथ ने पूछा—अरे शम्भू, तादाद में भेड़िये ज्यादा तो नहीं हैं ? दूसरे ही क्षण उसे याद आ गया कि किताब में उसने पढ़ा है, मांस खानेवाले खूँखार जन्तु कभी दल बाँध कर नहीं रहते ! मनुष्य और पशु में फर्क की जो बात उस दिन माँ ने कही थी, वह भी याद आयी।

लेकिन यूरोप में तो भेड़िये जमात बाँधकर शिकार में निकलते हैं। उसने फिर शम्भू से पूछा—क्यों रे, भेड़िये जमात बना कर तो नहीं रहते ?

—जी नहीं, दो से ज्यादा एक साथ नहीं रहते। पूछ न लीजिये माँझी से, माँझी यानी शिवनाथ का संथाल मजदूर।

तब तक शम्भू फिर बोल उठा—और ज्यादा भी होगा, तो डरना क्या मालिक ! हाथ में एक तेज हँसुआ लिये चलेंगे। एक ही घात में काली मैया की जय कर देंगे !

शिवनाथ ने झटपट एक हथियार का जुगाड़ लगाया, एक क्रिकेट का विकेट भाले का काम देगा। उसे जोश हो आया, अगर संख्या में भेड़िये ज्यादा भी हों, तो सामना करेगा डटकर।

यहीं तक बात हुई थी कि उसके कानों में फूफी की आवाज आयी—लल्ला है कहाँ ? उसे बुला।

सरकारी कानूनगो दफ्तर में आकर बैठ गये। शिवनाथ दोनों कमरे के बीच पर्दा पकड़कर खड़ा था। अन्दर से हुक्म मिला—शिवनाथ, उन्हें नमस्ते करो।

शिवनाथ कहने के पहले ही नमस्ते कर चुका था। बोला—नमस्ते कर चुका फूफी !

कानूनगो ने पूछा—मुझसे कुछ कहना है ?

अन्दर से फूफी बोलीं—जी हाँ। मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरी चौहद्दी में जरीब गिराने के पहले क्या मुझे खबर देने तक की जरूरत नहीं थी ? देखिये, मैं एक स्त्री ठहरी, आईन-कानून की बात नहीं जानती। किन्तु क्या इसीसे कानून केवल आप का है ?

कुछ आगा-पीछा करके कानूनगो ने कहा—जी, अगर नक्शे के मुताबिक ही माप-जोख हो, तो खबर देने की जरूरत नहीं भी पड़ती।

सवाल किया गया—तो क्या, नक्शे के मुताबिक ही माप हुई है?

कानूनगो ने उत्तर दिया—नहीं। उन लोगों ने जैसा कहा, मैंने वैसे ही माप की। लेकिन वे आपकी सरहद में माप नहीं रहे थे। ताड़ों की वजह से डौल ठीक लग नहीं रहा था, इसलिये जंजीर आपकी चौहद्दी में···

बीच ही में फूफी बोल उठीं—देखिये, चौहद्दी मेरी नहीं, इस नाबालिग की है। इसके अभिभावक सरकार की ओर से जज साहब मुकर्रर किये गये हैं, मैं उनकी प्रतिनिधि हूँ।

कानूनगो महोदय अभिभूत होते जा रहे थे, एक नारी से ऐसे सवाल-जवाब की उन्हें उम्मीद नहीं थी। वे बोले—जी हाँ, मुझ से गलती हो गयी, वास्तव में मुझे आप लोगों की अनुमति ले लेनी चाहिये थी। मैं इसके लिये···

फूफी फिर बीच ही में बोल उठीं—आप सरकारी कर्मचारी हैं, इसलिये हमारे भी आप मान्य हैं। हमने आपको कैफियत देने के लिये नहीं बुलाया है; मैं तो महज इतना जानना चाहती थी।

कानूनगो ने कहा—उस बूढ़े सज्जन की बात से तो हम भी बेहद शर्मिंदा हुए हैं! यदि आप उसका कोई प्रतिकार चाहती हों तो···

फिर उत्तर मिला—दरअसल वे गँजेड़ी हैं, फिर अगर ऊपर की ओर कोई थूके, तो अपने आप पर ही वह पड़ता है। हमारे पिताजी क्या थे, यह इस इलाके में किसी से छिपा नहीं। मुकदमा कर के रुपये की डिग्री तो पायी जा सकती है, सम्मान की डिग्री पाने की आशा बेकार है!

कानूनगो उठं खड़े हुए। बोले—तो अब मुझे इजाजत है ?

इस बार शिवनाथ कुछ आगे बढ़ आया। बोला—चाय पीकर जाइये। हँसते हुए कानूनगो ने कहा—रहने दो लल्ला, चाय का कष्ट न करो।

अन्दर से अनुनय किया गया—यह एक हिन्दू का घर है, फिर हम हैं जमींदार। आप हमारे अतिथि हैं, सरकारी कर्मचारी हैं। आप अगर चाय नहीं पीते, तो हम समझेंगे कि आप हम लोगों से नाराज हैं।

कानूनगो के पास इसका कोई उत्तर नहीं था !

शिवनाथ ने कहा—आपकी चाय हाजिर है !

कानूनगो ने उलटकर देखा, एक छोटी मेज पर चाँदी की तश्तरी में मिठाइयाँ हैं और प्याले में गरम चाय रखी है। दरवाजे के पास नौकर हाथ में पानी का बर्तन और कंधे पर तौलिया लिये खड़ा है।

कानूनगो के चले जाने पर फूफी कमरे से बाहर निकल आयीं। बरामदे पर एक लम्बे-लम्बे-से सज्जन खड़े थे। फूफी को उन्होंने प्रणाम करके पूछा—कुशल से तो हैं ?

यह मौका पाते ही शिवनाथ फिर शम्भू की टोह में खलिहान की ओर चलता बना।

उस आदमी को देखते ही फूफी बोलीं—आओ भैया, आओ। आज भाग्य प्रसन्न है कि सुबह ही लक्ष्मी के लाड़ले के चरणों की धूल मेरे घर पड़ी। मगर आये कब, कैसे रहे ?

ये सज्जन मुहल्ले के ही रामकिंकर बाबू हैं, लखपती व्यापारी हैं—कलकत्ते में रहते हैं।

रामकिंकर बाबू बोले—परसों आया। सुबह बैठक के दरवाजे पर खड़ा

था कि अपनी आँखों सब देखा, अपने कानों सुना। इसीलिये लपका आया हूँ, यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ।

हलकी हँसी हँसकर फूफी ने आशीर्वाद दिया—जुग-जुग जियो भैया, दूधों नहाओ, पूतों फलो। तुम जैसे दस भाइयों का ही तो भरोसा करती हूँ।

हँसते हुए रामकिंकर बाबू ने कहा—भरोसा तो बहन जी, आपको किसी का भी नहीं करना पड़ेगा। आड़-ओट में लोग आप पर फबती कसते हैं कि आप तो फौजदारी के वकील हैं जैसे! सो मैंने खुद भी देखा, आप तो वकील की भी नाक काटती हैं। आप तो बैरिस्टर हैं—बैरिस्टर!

फूफी हँसने लगीं—तो इस बार कलकत्ते से मेरे लिये गाउन और टोपी ला देना। कभी कोई मामला पड़े, तो खबर भी देना।

रामकिंकर बाबू बोले—मामला तो बहन जी, एक ले-लिवाकर ही आया हूँ, मगर इस मामले के आप ही जज हैं—आखिरी फैसला इसी हाईकोर्ट का होगा—इसकी कहीं अपील नहीं।

फूफी बोल उठीं—अभी तो मैं सोच रही थी, व्यापारी भला गरज लिये बिना कहीं कदम रख सकता है! उसके पेट में तो बनिया की व्यवसायी बुद्धि होती है। खैर, मामला क्या है, यह तो सुनें।

रामकिंकर बाबू ने कहा—मेरी मातृहीना भानजी को तो स्वीकार करना ही होगा आप को। मुझे पता चला है, आप शिवनाथ का व्याह करने वाली हैं!

फूफी कुछ क्षण चुप रह गयीं, फिर धीरे-धीरे बोलीं—भैया, मैं आज तो इसका कोई जवाब नहीं दे सकती, कल कहूँगी!

रामकिंकर बाबू को ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। वे कुछ गर्म-से हो गये। बोले—मेरी भानजी जमींदार के घर के अनुकूल नहीं होगी, क्यों?

फूफी का चेहरा सुर्ख हो उठा! अपने को जब्त करके उन्होंने कहा—मैं तो इसका ठीक उलटा सोचती हूँ—मेरा शिवनाथ भला हाथी की खुराक जुटा पायेगा? लखपती के घर की लड़की हम जैसे टुटपुँजिये जमींदार के घर खप भी सकेगी? दूसरे, लड़के की माँ मौजूद है, उसकी भी तो राय लेनी होगी?

रामकिंकर बाबू कुछ अप्रतिभ-से हो गये! कहने लगे—नहीं-नहीं, आपके दादा और हमारे परदादा के प्रताप से बाघ-बकरी एक घाट पानी पीते थे। शिवनाथ उन्हीं की तो संतान है। लड़की शेरनी भी होगी, तो वह वश में करके दम लेगा। वह देखिये न!

सामने ही सपाटे में शिवनाथ उस समय एक घोड़े को काबू में ला रहा था। किसी का टट्टू जैसा छोटा घोड़ा था, मगर शरारत में उस्ताद। बार-बार पिछली टाँगें फेंककर वह पीठ पर से शिवनाथ को जमीन पर दे मारना चाहता था।

और; शिवनाथ शम्भू से कह रहा था—शम्भू, खजूर की एक छड़ी तो ला दे, काँटे-सहित लाना।

रामकिंकर बाबू ठठाकर हँस पड़े। बोले—सुन रही हैं आप?

फूफी का मुखमंडल आनन्द से चमक उठा। उन्होंने पुकार कर कहा—शिवू, अरे ओ शिवू, इधर आ बेटा!

शिवू ने कहा—जरा ठहरो तो फूफी, मैं इसकी दुलत्तियाँ निकाल देता हूँ।

फूफी बोलीं—जाने किसके घोड़े पर चढ़ बैठा है, तेरी माँ सुनेंगी, तो बहुत बिगड़ेंगी।

सामने ही एक भला-सा मुसलमान खड़ा था। उसने स-सम्मान सलाम बजाया और कहा--घोड़ा मेरा है माँ जी! मैं आप का रैयत हूँ, दोगद्दी इलाके का पंच।

फूफी का चेहरा गंभीर हो उठा। बोलीं--अच्छा, सबजान शेख तुम्हीं हो?

उसने कहा--जी हाँ, गुलाम, ताबेदार हूँ मैं।

फूफी ने रामकिंकर बाबू से कहा—तो भैया, कल सबेरे एक बार आ जाओ न! नाती का टिप्पण भी साथ ले आना। आज तो अब देर हो गयी, सबेरे का जलपान यहीं रहेगा।

रामकिंकरने हँसकर कहा—खैर, कल ही आऊँगा। लेकिन वह मिठाई तो हमारी आजकी घटकी का पावना है। आज की···

फूफी ने हँसकर कहा—अच्छा-अच्छा भैया, दो तश्तरी खा लेना—दो।

हँसते-हँसते रामकिंकर चले गये। फूफी के चेहरे से हँसी की रेखा लुप्त हो गयी, उसकी जगह वह कठोर हो उठीं। उन्होंने पुकारकर कहा—शिवनाथ, उतर जा घोड़े से।

'शिवनाथ' सम्बोधन से ही शिवू समझ गया कि यह आज्ञा टलने की नहीं। वह घोड़े से उतर कर दफ्तर के बरामदे में आ खड़ा हुआ।

सबजान आकर कहने लगा—आते ही हुजूर से भेंट हो गयी! झुककर सलाम करते ही हुजूर ने बताया—वह देखो, फूफी वहाँ खड़ी हैं। उनके पास जाओ, तब तक मैं तुम्हारे घोड़े को जरा देखूँ—यह कह कर

उसने शिवनाथ के आगे घुटने टेक दिये। दोनों हाथ फैला कर, एक लाल रेशमी रूमाल में पाँच रुपये रख, नजराना दिया।

शिवनाथ फूफी की ओर देख रहा था, वहाँ से कब उसे क्या संकेत मिल गया, यह वही जाने। उसने रुपयों को छू दिया और सिरिश्ते में जमा कर देने को कहा।

सबजान ने हाथ जोड़कर कहा—मेरी रक्षा करनी पड़ेगी हुजूर, दफ्तर को हुकुम दें कि हमारी मालगुजारी जमा कर ले।

शिवनाथ फूफी की ओर ही निहार रहा था। उनका चेहरा एक अजीब गम्भीरता से तमतमा रहा था।

सबजान बोला—माँ-बाप !

शिवनाथ ने सबजान के मुखड़े पर निगाह डाली, उसकी दोनों आँखों के कोनों में आँसू छलछला आये थे। वह कह उठा—हर्ज क्या, तुम मालगुजारी जमा करो।

सबजान, इसके बाद बोला—फूफी !

फूफी की अनुमति के निवेदन में विनीत कंठ से सबजान ने भी कहा—माँजी !

फूफी ने कहा—सबजान, अब तो तुम्हें मालिक का ही हुक्म मिल गया। वह किसी भी तरह रद्द नहीं हो सकता।

सबजान बार-बार सलाम बजाकर खड़ा हुआ। फूफी बोलीं—मगर महज दो बूँद आँसू ढुलकाकर मुझ से तो तुम्हें रिहाई नहीं मिल सकती थी सबजान ! मैं तुम्हें कुछ और भी सबक देती। खैर, जो हो गया सो हो गया, आइंदे जमींदार के कारिंदे का यों बे-वजह अपमान मत करना······

सबजान कहने लगा—आखिर हम भी तो आपके बाल-बच्चे ही हैं माँजी !

फूफी की भौंहों पर बल पड़ गया। उन्होंने कहा—सबजान, बात पर बात कहने की आदत अच्छी नहीं। तुमलोग भी बच्चे जरूर हो, मगर हुक्मउदूली के लिये अपने मालिक की पीठ पर भी मार के निशान कभी तुम देख सकते हो। चलो शिवनाथ !

शिवनाथ का हाथ पकड़कर फूफी चली गयीं। थोड़ी ही देर बाद, सतीश मिट्टी के बर्तन में जलपान लाकर बोला—शेखजी, आपका जलपान।

नायबजी के सामने सतीश ने कागज का एक चिट रख कर कहा—शेखजी की विदाई।

नायब ने चिट को पढ़ा। उसमें लिखा था, दोगद्दी के पंच सबजान शेख को विदाई में एक जोड़ा धोती और चादर मँगवा दीजिये। चिट पर हस्ताक्षर शिवनाथ की माँ ने किये थे। हस्ताक्षर के पास ही फूफी का हुक्म, निशान से जाहिर था। फूफी जोड़-तोड़कर पढ़ना तो जानती हैं; लिखना नहीं जानतीं।

तीन

शाम को नीचे की दालान में ननद-भौजाई के बीच बातें हो रही थीं। फूफी कालीन पर बैठी पाँवों में तेल मल रही थीं। बगल में, एक बटरी में सुपारी और सरौता रखा था। एक ओर शिवनाथ की माँ, लालटेन की रोशनी में, जमा-खर्च की बही जाँच रही थीं। मद्धिम प्रकाश में भी उनके शरीर की मोम जैसी शुभ्र-कान्ति झलमला रही थी। बही बन्द करके उन्होंने कहा—ठीक तो है सब।

फूफी ने कहा—तो सतीश के हवाले करो उसे।

सतीश वहीं खड़ा था, कागज-पत्तर ले गया।

फूफी ने कहा—कुछ दिनों से मैं एक बात सोच रही हूँ बहू, मन में एक साध है, मगर कहूँ-कहूँ करके भी कह नहीं पायी।

कोई ओट से सुनता तो हर्गिज नहीं पहचान पाता कि यह वही फूफी हैं, जो सुबह थीं। भाव, भाषा किसी भी बात में कहीं कोई मेल नहीं। इस समय की भाषा और ढंग में करुणाभरी दीनता का आवेदन टपक रहा था, सन्देह करने की कोई गुंजाइश ही नहीं।

शिवनाथ की माँ बोलीं—शिवनाथ के व्याह की बात है न? फूफी चौंक-सी उठीं। बोलीं—तुम्हें मालूम हो गया बहू? किसने कहा तुम से?

शिवनाथ की माँ जरा हँसीं। कहा—किससे क्या, सब किसी से सुना। तुमने कहा नहीं एक केवल मुझ से ही, बाकी तो मुहल्ले में सबों से कहा है।

फूफी बोलीं—नहीं-नहीं, मैंने तो किसी से नहीं कहा।

शिवनाथ की माँ फिर हँसीं। हँसकर ही बोलीं—हो सकता है, अपनी जान में तुमने यह बात न कही हो किसी से, मगर मन की साध, कब मुँह से निकल गयी, तुम्हें पता नहीं।

फूफी ने कहा—देखो बहू, मेरी बड़ी लालसा है कि एक नन्ही-सी बहू घर लाकर आँखों का सुख देखूँ। घर की लड़की जैसी पीछे लगी डोलती चलेगी, शिवू को देखकर घूँघट नहीं काढ़ेगी, लड़ेगी-झगड़ेगी। मेरे भैया की भी यही अभिलाषा थी। हम दोनों भाई-बहन न जाने कितनी बार इस पर बातें करते रहे हैं।

शिवनाथ की माँ चुप बैठी रहीं। कुछ क्षण जवाब का इन्तजार करके फूफी ने कहा—बहू!

शिर झुकाये शिवनाथ की माँ ने कहा—वही सोच रही हूँ बहन!

फूफी बोलीं—बस, इसीलिये मैं तुम से नहीं कह रही थी। कुछ भी हो, आखिर लड़का तो तुम्हारा ही है। और एक ठंडी साँस लेकर फूफी मौन हो गयीं।

शिवनाथ की माँ ने कहा—नहीं-नहीं, शिवनाथ तुम्हारा है। यह सुनकर फूफी जैसे सर्वाङ्ग से सिहर उठीं। बोलीं—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो बहू, शिवू तुम्हारा ही है तुम्हारा। शायद हमारा होने से वह न रहे। भाई नहीं रहा, एक ही दिन स्वामी और पुत्र, दोनों मुझे छोड़ गये। और

हमें ऐसा लगता है बहू, कि तुम्हारे वैधव्य के लिये भी मैं ही जिम्मेदार हूँ।

फूफी की आँखें झरझर बरस पड़ीं। वक्षस्थल का आँचल भीग गया।

शिवनाथ की माँ ने कहा—बहन, इस तरह रोओ मत। कहीं शिवू आ निकलेगा, तो खैर नहीं। तुम्हें रोते देखकर तुम पर उसके जुल्म का अन्त नहीं रहता।

फूफी जैसे जाग पड़ीं। बोलीं—अच्छा हाँ, शिवू तो अभी तक लौटा नहीं?

दरवाजे के बाहर सतीश खड़ा था। वह कहने लगा—जी नहीं, बाबू अभी तक लौटे नहीं हैं। मास्टर साहब कब से उनकी राह देख रहे हैं।

फूफी की उद्विग्नता बढ़ गयी। बोलीं—कितनी रात हुई सतीश? किसन सिंह से कह दे कि लालटेन लेकर···

शिवनाथ की माँ ने रोककर कहा—रात कुछ वैसी ज्यादा तो नहीं गई है, लेकिन शिवनाथ पर अब कड़ाई होनी चाहिये बहन!

फूफी ने कहा—आज जितना जी चाहे तुम डाँटो-फटकारो, मैं चूँ तक न करूँगी। ऊपर कमरे में बन्द होकर बैठी रहूँगी। इसी से तो चाहती हूँ कि छुटपन में ही उसे इस बन्धन में बाँध दूँ। तुम तो हमारे वंश की परम्परा जानती ही हो। किसी दिन बेहाथ न हो जाये वह।

माँ ने कहा—अरे, यह तो एक कहने भर की बात है बहन। अगर लड़के पर शासन की आँख रहे, तो मजाल क्या है कि वह टस से मस हो सके। शिवनाथ के ऊपर मेरे तो अनेक अरमान हैं बहन, मुझे तो एक महान् पुरुष की माँ बनने की लालसा है।

फूफी बोलीं—तो क्या, ब्याह हो जाने से वैसा नहीं हो सकता? यह सब तो भाग्य पर निर्भर करता है।

माँ ने कहा—शायद भाग्य की ही देन हो। अपने बाबूजी को भी मैंने ऐसा लिखा था। उन्होंने तुम्हारा हवाला देते हुए लिखा—देखना, बेटी शैलजा की आकांक्षा पर आघात मत करना, पाप होगा।

आनन्द गद्-गद् कंठ से फूफी ने कहा—अच्छा, ऐसा लिखा है उन्होंने, सच! वही तो, अगर आदमी में इतना विवेक न हो, तो वह बड़ा हो भी कैसे सकता है? एक बात और है, हमारा भाग्य जैसा है, देख ही रही हो, और तुम्हारे भाग्य को भी अच्छा कैसे कहूँ, वही होता तो इस उम्र में राजा जैसा स्वामी ही क्यों उठ जाता तुम्हारा? यही सब देख-सुनकर सोचती हूँ, किसी भाग्यवान लड़की से शिवू के भाग्य को बाँध दूँ।

बाहर से शिवू की उछल-कूद सुनाई दे रही थी—समझ लो किसन, आज कहीं बन्दूक होती, तो मार ही गिराता मैं उसे।

माँ ने कहा—बहन जी, तुम ऊपर चली जाओ।

शैलजा जाते-जाते कहती गयीं—खूब जोर से कान मलना, मगर ठौर-कुठौर तमाचे न लगा देना। हाँ!

शिवनाथ अन्दर आया। उसके हाथ में क्रिकेट का विकेट था, और काँख में दबाये था भेड़िये का बच्चा। उसे आँगन में उतारकर उसने कहा—रतन जीजी, बता तो यह काहे का बच्चा है?

रतन इस घर की पुरानी रसोईदारिन है। उसने शिवनाथ को इशारे से जना दिया, माँ खड़ी हैं। मगर शिवनाथ के उत्साह का क्या कहना! वह बोल बैठा—यह क्या, इशारे से उधर क्या दिखा रही हो? देखो-

देखो, भेड़िये का बच्चा पकड़ लाया हूँ। भेड़िया—अंग्रेजी में इसे कहते हैं—उल्फ, हायना। डू यू नो? यू डोन्ट नो। फिर हाथ हिलाती है। सुनो भी पहले, उदासी के उस पार की एक माँद से नर-मादा बाहर निकल गये। उधर वे गये और इधर हमने क्रिकेट से माँद को खोद डाला—

इतने में माँ सामने आकर खड़ी हो गयीं—'शिवनाथ!'

माँ के चेहरे को देख कर शिवनाथ कुछ ठंडा पड़ गया। बोला—भेड़िये का बच्चा पकड़ लाया हूँ माँ! मगर कम्बख्त ने बुरी तरह हाथ को काट खाया है! यह देखो।

उसने अपना लहूलुहान हाथ माँ के सामने फैला दिया। किंतु माँ ने, उसके हाथ पर नज़र नहीं डाली, वह एकटक उसका मुँह देखती रह गयीं। शिवू बोल उठा—रतन जीजी, फूफी कहाँ गयीं? और फिर खुद ही कहने लगा—फूफी, देख जाओ, भेड़िये का बच्चा पकड़ लाया हूँ। जरा देखो कि चबाकर मेरे हाथ का क्या हाल कर दिया है, आओ। उफ्…

माँ ने उसका कान पकड़ रखा था, हँसकर छोड़ दिया। बोलीं—तू परले सिरे का शैतान हो गया है शिवू! फूफी भेड़िये के बच्चे को देखें या न देखें, मगर तुम्हारे हाथ की हालत तो देख ही जायँ आकर।

और तब तक ऊपर के बरामदे से फूफी के पैरों की आहट हुई। माँ ने कहा—रतन, थोड़ा पानी गरम होने को चूल्हे पर चढ़ा दे! और किसन, दवाखाने से एक शीशी आइडिन ले आओ। इन जानवरों की लार में जहर होता है।

शिवनाथ की ओर मुड़कर माँ ने कहा—शिवू, मैं तुम से बहुत-बहुत नाराज हूँ। संयोग से कहीं भेड़िया होता, तो क्या दशा होती तुम्हारी?

तब तक फूफी वहाँ पहुँच गयीं। आते ही बोलीं—किसन, डाक्टर को बुला लाओ।

शिवू ने कहा—फूफी, यह देखो।

—मैं तुमसे नहीं बोलती।

माँ ने कहा—देखो, कल ही इसे इसकी जगह पर छोड़ आना।

शिवू का मुखमंडल मलीन हो गया। बोला—छोड़ आना होगा?

—हाँ,हाँ,। यह भेड़िये का बच्चा पालकर क्या होगा? ये खूंखार होते हैं। कहावत भी है—पंछी, पशु, पासा, तीनों करम नासा। ये तुम्हारे लिखने-पढ़ने के दिन हैं। फिर हिंसा मुझे हर्गिज पसन्द नहीं, यह मैं कहे देती हूँ।

शिवू ने लम्बी साँस छोड़कर, गर्दन हिलाकर इशारे में ही कहा—अच्छा!

माँ ने कहा—उस बच्चे को थोड़ा दूध पिलाओ।

वह बच्चा भेड़िया, एक कोने में दुबककर, खूंखार ढंग से फों-फों कर रहा था। किसन उसे उठाकर वहाँ से चला गया।

अब फूफी ने कहा—बहू, अब तुम मुझे छुट्टी दो, मैं कल काशी जा रही हूँ।

शिवनाथ अब तक तो चुप बैठा था। बोल उठा—रतन जीजी, हाथ में बड़ी जलन हो रही है। माँ बता रही थीं, भेड़ियों के जहर होता है।

फूफी दूसरी ओर के बरामदे में बैठी थीं। अकुलाकर उठीं। माँ हँसने लगीं। कहा—बैठो भी, कुछ नहीं हुआ है। छँटा हुआ पाजी है यह!

कहा नहीं जा सकता, फूफी और भतीजे का यह रूठना-मचलना कब तक चला करेगा। आये दिन, इस घर में, ऐसा होता ही रहता है। लेकिन फूफी का यह रूप कहीं क्रोध में बदल गया, तो जानिये कि आफत आयी। उस दिन घर-गृहस्ती में बखेड़ों का अन्त नहीं रहता। आज की यह घटना भी क्या रूप ले लेती, कौन जाने! भाग्य की बात, एक अड़चन आ गयी अचानक। बाहरी द्वार पर से किसी की गुरु-गम्भीर ध्वनि सुनायी दी—काली, कल्याण कर मैया!

आवाज सुनते ही शिवू खिल उठा! दौड़कर वह बाहरी दरवाजे पर हाजिर हो गया। बोला—गोसाँई बाबा!

मेरे अच्छे बेटे!—यह कहकर उस लम्बे-तगड़े संन्यासी ने नन्हे बच्चे के समान शिवू को अपनी गोद में उठा लिया। सन्यासीजी पूरे साढ़े छः फीट लम्बे हैं, जैसी लम्बाई है, वैसा ही हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ है शरीर। छाती छूती हुई घनी-लम्बी दाढ़ी, हाथ में एक चिमटा।

शिवू की माँ ने कहा—नित्तो, रामजी दादा के लिये आसन लेती आ। आइये दादा; विराजिये।

तब तक नजर पड़ी कि शिवू संन्यासी की छाती से लगा है। माँ बोलीं—शिवू, उनकी गोदी से उतर जा बेटा! संन्यासी नारायण होते हैं। अब तू नन्हा-नादान बच्चा तो रहा नहीं, उतर आ।

संन्यासी ने शिवू को अपनी छाती से और भी जकड़ लिया। बोला—देखो जीजी, ऐसा कहोगी, तो आइंदे मैं न आया करूँगा।

शैलजा देवी ने कहा—लेकिन इससे शिवू को दोष जो लगेगा!

—दोष नहीं लगेगा दीदी, नहीं लगेगा। कार्तिकजी, गणेशजी क्या दुर्गा मैया की गोद में नहीं उछलते-कूदते हैं?

और संन्यासी ने शिवू को और भी गाढ़े स्नेह से चिपका लिया। यह संन्यासीजी पहले फौज में हवलदार थे; बहुतेरे मोर्चों पर जा चुके हैं।

मणिपुर के राजवंश को उखाड़ फेंकने के लिये जो लड़ाई हुई थी, उसमें भी यह थे ; जो फौज मिस्र भेजी गयी थी, उसमें भी यह शामिल थे और अफगानिस्तान तथा बर्मा में भी यह काफी दिनों तक रहे। आज भी उनकी देह पर गहरे घाव के कई निशान मौजूद हैं। इनकी झोली में, बहादुरी के पुरस्कार-स्वरूप पाये हुए, कई तमगे सुरक्षित हैं। एक बार जानें क्या हुआ कि फौज की नौकरी को लात मार, संन्यासी होकर निकल पड़े। आज से पन्द्रह-सोलह साल पहले, यहाँ के विख्यात तीर्थस्थान 'अट्टहास' के दर्शन को वह आये और कृष्णदासबाबू की मित्रता के सूत्र में बँध गये। कृष्णदास बाबू ने अपने परम प्रिय देवीबाग में इनके लिये आश्रम बनवा दिया और इन्हें यहीं बसाया। बगीचे के कालीमन्दिर की स्थापना भी इन्हीं संन्यासीजी की प्रेरणा और निमित्त से हुई थी। इन संन्यासी महोदय का भी कुछ कम ऋण कृष्णदास बाबू पर नहीं है। संन्यासीजी अद्भुत् परिश्रमी हैं। इन्हीं के परिश्रम और मौजूदगी से देवीबाग, देवीबाग बन सका। शिवू बचपन से ही गुसांई जी का बड़ा प्यारा है ; संसार में इनके लिये एकमात्र प्रियतम यदि शिवू को ही कहें, तो भी कोई अत्युक्ति न हो। इसके पहले, शाम के भोजन के लिये संन्यासीजी कृष्णदास बावू के साथ, यहाँ आया करते थे। अपनी शाम की पढ़ाई खत्म करके शिवू रोज इनकी राह देखा करता, कब वे आवें कि वह कहानी सुने। यों बाबाजी के पार्थिव संचय की झोली तो बड़ी मामूली-सी है, लेकिन इनकी कहानी की झोली है बड़ी भरी-पूरी। नानी की कहानी, लड़ाई के किस्से, अचरज की बातें, आदि-आदि ये बड़े गजब तरीके से सुना सकते हैं। इस तरह एक सर्वस्व त्यागी संन्यासी और एक स्वप्न-प्रवण शिशु ने मिलकर स्नेह के एक अभिनव स्वर्ग की रचना की, जो आज भी वैसा ही बना है। हाँ, वह स्वर्ग पिछले दिनों की तरह सदा गुलजार नहीं है। उजड़े हुए देवीबाग की शोभा के निर्जन हो जाने पर भी बीच-बीच में वे यहाँ आते-जाते हैं और आपस में

भेंट-मुलाकात होती है। संन्यासीजी, अब महापीठस्थान अट्टहास में, गद्दीनशीन हो गये हैं। मुश्किल से समय मिलता है, फिर भी यदा-कदा कृष्णदास बाबू के घर की खोज-खबर लिये बिना वे रह नहीं सकते। कभी-कभी शिवू भी उनके पास दौड़ा जाता है।

बूढ़े और बालक की मिताई का यह गाढ़ापन देखकर शैलजा कह उठीं—संन्यासी दादा, अब आप का भी भरत राजावाला हाल होगा।

संन्यासीजी हँसे। बोले—यह मैं जानता हूँ, चंचल मृग-शावक भागेगा। लेकिन कहा गया है—योग-जप, भजन-पूजन में नन्दलाल नहीं मिलते, वे तो बाल-गोपाल के वेश में ही मिला करते हैं। फिर जब नन्दलाल के मिलने की उम्मीद नहीं रही, तो बाल-गोपाल को किस बुद्धिमानी से छोड़ दूँ, कहो?

शिवू इस बात का आशय ताड़ गया। रामायण-महाभारत वह पढ़ चुका है। उसका चित्त दुःख और अभिमान से थोड़ा खिन्न हो उठा। जिन हाथों से वह गोसांई बाबा को कसकर पकड़े हुए था, उन्हें ढीले कर लिए और उनकी गोद से उतर भागने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। अपने इस अभिमान का तनिक भी आभास वह नहीं देना चाह रहा था।

शिवू को यह सुयोग स्वयं संन्यासीजी ने ही दिया। बोले—बेटा, अब पढ़ो-लिखो जाकर। थोड़ी देर में तुम्हारे पास मैं आ जाऊँगा।

शिवू चुपचाप उनकी गोद से उतर पड़ा। संन्यासीजी बोले—आज मैं एक खास बात कहने आया हूँ दीदी। शिवू के व्याह की बात सुनने में आयी?

शिवू की माँ धीमे हँसकर बोलीं—इसी बीच यह बात चारों तरफ फैल गयी?

—नहीं दीदी, मुझ से तो रामकिंकर बाबू की माँ ने कहा। यह व्याह कर ही दो। लड़की बड़ी भाग्यवती है, उसकी भाग्य-रेखा गजब की है। मैं केवल इतना ही कहने को आया था। इसमें शिवू का भला होगा।

शैलजा बोल उठीं—संन्यासी दादा, आपने अपने नाती का हाथ देखा है ?

—देखा है। हाथ और ललाट की रेखाएँ बड़ी साफ हैं। फिर रामकिंकर बाबू इस समय यहाँ के एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। इस सम्बन्ध से हमारे शिवू का बल बढ़ेगा, भरोसा बढ़ेगा।

जी खोलकर शैलजा ने इस पर अपनी सम्मति नहीं दी, केवल 'हाँ' करके रह गयीं।

नम्र हँसी हँसकर शिवू की माँ ने कहा—बात तो सही है दादा, किंतु इस संसार में क्या कोई किसी का भाग्य बदल सकता है ?

फिर उस बात को बदलकर वह बोली—खैर, अभी आप अपने 'अच्छे बेटे' के पास जाइये। कहानी सुनने के लिये वह बेताब हो रहा है।

संन्यासीजी को अपने भ्रम का आभास मिल गया था। उनका भी मन शिवू से बातचीत करने के लिये अकुला रहा था। वह उठकर चल दिये। कुछ ही क्षण बाद उनकी ऊँची आवाज गूँज उठी—दन्न्–दनादन–दन्न्–दनादन। लड़ाई की कहानी शुरू हो गयी—यह तोपें छूट रही हैं। अपलक आँखों से शिवू उनकी ओर निहार रहा है। मणिपुर की लड़ाई का किस्सा चल रहा है।

टिकेंद्रजित एक नम्बर का बाँका वीर। मणिपुर के राजा के भाई उनके सेनापति थे! जानें क्या तो खट-पट हो गयी रेसिडेंट साहब के साथ और लड़ाई छिड़ गयी। हमलोग इस लड़ाई में गये। शहर के बाहर पड़ाव पड़ गया। फिर क्या पूछना—तोपें आग उगलने लगीं—दन्–दनादन, दन्–दनादन।

फिर तो संन्यासीजी की खिचड़ी भाषा के माध्यम से, काल के पर्दे को पारकर, वक्ता और श्रोता मणिपुर के युद्धस्थल में दाखिल निडर सेनापति के समान ही गोली-बारूद के बीच युद्धक्षेत्र में निर्भय-निद्वन्द्व विचरने लगे। ठिंगने कद के अपार बल-विक्रमशाली टिकेंद्रजित उनके सामने आ गया। शहर

का द्वार टूट गया। उन्मत्त गोरी फौज, बंदूक की नोक पर संगीन सम्हालकर, शहर के अन्दर घुस गयी, लूट-पाट मच गयी।

इसी हो-हल्ले में मैं और दूसरे चार आदमी, एक घर के दरवाजे को ठोकरों से तोड़, भीतर घुस पड़े। वहाँ मुझे सोने की एक बड़ी पत्तर मिली।

—सोने की पत्तर!

—हाँ जी, सोने की पत्तर! मैंने उसे अपनी पतलून के नीचे छिपा लिया।

—कौन-सी लड़ाई का चल रहा है यह वर्णन? कब तक खत्म होगा? रात जो बहुत हो गयी।—शिवू की माँ कहती हुई द्वार पर आ खड़ी हुईं। कहानी की गति में रुकावट पड़ गयी। दूसरे दिन फिर आने का वचन देकर तब कहीं संन्यासीजी को जाने की छुट्टी मिली।

रात को फूफी से शिवू की गप्पें हो रही थीं। शिवू अभी भी फूफी के ही कमरे में सोता है। उसे किसी और के जिम्मे छोड़कर फूफी को नींद नहीं आती। शिवनाथ के नाना, सरकारी नौकरी के सिलसिले में, बिहार में रहते हैं। उनके सब लड़के योग्य हैं। शिवनाथ की माँ ने अपने बच्चे को सुशिक्षित करने और परम्परा से आती हुई आदतें—जमींदार-सुलभ अभिमान, जिद, उच्छृङ्खलता, कठोरता और विलासिता आदि से बचाने के लिये, कई बार उसे वहीं भेजने की कोशिश की थी। इस पर फूफी जबान से कुछ बोलती तो नहीं थीं, पर तुरत काशी जाने की तैयारी कर बैठती थीं। लाचार शिवनाथ की माँ को अपना निश्चय छोड़ देना पड़ता था।

घनिष्ठ पड़ोसिनों में से कोई-कोई कहतीं—मगर यह सब तो तुम्हें बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। आखिर यह जायदाद-जमींदारी तुम बहू होकर कैसे चलाओगी?

इस पर शिवनाथ की माँ हँस देतीं—जवाब नहीं देतीं। लेकिन एक बार किसी से कहा था—जमीन-जायदाद के भाग्य में जो होगा सो होगा। मगर

ननदजी जो पागल हो जायँगी। उनकी दशा तो भरत राजा की दशा है। ममता से आँखें अन्धी हो रही हैं।

और यह बात फूफी के कानों तक पहुँच ही गयी, फिर तो गजब ही हो गया। उन्होंने काशी जाने की कसम खा ली। अन्न-जल ग्रहण करना छोड़ दिया। शिवनाथ की माँ, जो कि सम्बंध में बड़ी होती थीं, पैरों पड़ीं, तब कहीं रिहाई मिली।

फूफी ने कहा था—आखिर यह माया है भी क्या? और किसकी माया? जिस अभागी के पति-पुत्र एक ही बिछावन पर सदा के लिये सो गये, जिसके राजा जैसा भाई नहीं रहा, वह माया करे भी तो किसकी? यहाँ जो हूँ, वह महज तुम्हारे लिये। तुम मेरे दादा की स्त्री, शिवू की माँ हो, तुम्हें परेशानियाँ होंगी, धन-जायदाद लोग छीन-छोरकर खा जायँगे और तुम्हें राह की भिखारिन बना छोड़ेंगे—इसीलिये यहाँ पड़ी हूँ—महज इसीलिये।

फूफी की इस बात पर शिवू की माँ मीन-मेख न कर सकीं।

आज फूफी ने कहा—शिवू, अगर तुम्हारी हरकतें ऐसी ही रहीं, तो मैं काशी चल दूँगी। जाने किस दिन अपना खून करा लोगे तुम—मैं यह सब नहीं सह सकती।

शिवू बोल उठा—यू आर ए कावर्ड!

फूफी ने कहा—जो कहना हो, हिन्दी में ही कह। अंग्रेजी मेरे बाप ने भी नहीं पढ़ी थी।

शिवू ने कहा—मैंने कहा, तुम बड़ी डरपोक हो फूफी। मुझे बंदूक दो न, मैं भेड़िये को ही मार लाऊँगा—धाँय-धाँय। जानती हो, तोपों से बड़े-बड़े शहर भी तहस-नहस हो जाते हैं।

फूफी ने कहा—आज तेरी माँ बहुत ही अफसोस कर रही थीं, रो पड़ीं बेचारी।

शिवू ने चकित होकर पूछा—क्यों, रो क्यों पड़ीं?

फूफी ने कहा—कह रही थीं कि मैं जैसा चाहती थी, शिवू वैसा नहीं बना।

शिवू बोल उठा—वाह, पिछले तीस आश्विन से, जब माँ ने मुझे राखी बाँध दी थी, मैंने कोई विलायती चीज नहीं खरीदी, न कोई विलायती कपड़ा पहना। पढ़ भी तो रहा हूँ, देखो, इस बार भी इम्तहान में तीसरा रहा। खैर, हिंसा अब नहीं करूँगा।

फूफी जरा देर चुप रहीं, उसके बाद बोलीं—एक बात और। कई जगह से तुम्हारे सम्बन्ध आ रहे हैं।

शिवनाथ जरा रंगीन-सा हो उठा। बोला—मेरा व्याह होगा?

हँसकर फूफी कहने लगीं—हाँ, व्याह होगा और इसी माघ में। मगर यह तो बता, कहाँ करेगा व्याह तूँ? एक तो आ रहे हैं पुलिस साहब हृदय बाबू, अपनी पोती के लिये, नवीन बाबू वकील तो पीछे पड़े ही हैं। आज अपनी भानजी नान्ती के लिये रामकिंकर बाबू भी आये थे।

शिवनाथ ने कहा—राम-राम···उसकी तो नाक बहती है।

फूफी बोली—ऐसा तो बचपन में सबों की बहती है। तेरी क्या नहीं बहती थी? और लड़कियों की भी बहती हैं। बड़ी हो जाने पर थोड़े ही बहेगी?

शिवनाथ जरा देर चुप रहा। उसके बाद बोला—वह तो बड़ी बक्की लड़की है फूफी। उस दिन मुझे 'मुँहजला' कहकर गाली दे रही थी।

फूफी हँस पड़ीं, बोलीं—नादान बच्ची है, उसे क्या अक़्ल है? देखा नहीं, उस दिन यहीं तो तेरी पीठ पर सवार हो गयी थी और बड़बड़ा रही थी। कितने मीठे बोल थे?

शिवनाथ चुप हो गया। गाँव के रिश्ते में शिवनाथ और नान्ती दादा-पोती होते हैं।

फूफी कहने लगीं—ज्योतिषीजी से मालूम हुआ और आज रामजी

दादा भी कह रहे थे, लड़की का भाग्य बहुत अच्छा है, सदा सुहागिन रहेगी। धर्मस्थान, धनस्थान, पुत्रस्थान बहुत उत्तम हैं। ऐसा मेल बहुत कम ही मिलता है। देखने में भी लड़की भली है, रंग की गोरी है, जरा नाक ही चिपटी है।

सोच-विचारकर शिवनाथ ने कहा—तुम लोगों के जो जी में आये, वही करो बाबा। व्याह ही करना है, तो जैसा चाहे हो जाय।

चार

दूसरे दिन जैसे ही रामकिंकर बाबू शिवनाथ के घर पहुँचे कि शैलजा को कहते सुना—गाछ तो एक निहायत मामूली चीज है बहू, लेकिन यह तो मान-अपमान, इज्जत-आबरू की बात है, इसमें तुम दखल मत दो।

उनकी आवाज में दृढ़ता थी। जरा देर चुप रहकर वह फिर बोलीं—यह हमारे पूर्वजों का अपमान है। भैया अक्सर मुझसे कहा करते थे, शैल, झूठा भात खाना और पैर पकड़ना, ये दो काम कभी नहीं करना—यह हमारे पुरखों की शिक्षा है। सिर नीचाकर किसी की जबर्दस्ती तो मैं कभी सहन नहीं कर सकूँगी।

रामकिंकर बाबू ने आवाज दी—जीजी जी हैं क्या ?

भीतर से बुलाहट हुई—आओ भई, अन्दर आ जाओ।

नायबजी बाहरी दरवाजे तक बढ़ आये थे। अन्दर जाकर राम बाबू ने देखा, किसन सिंह तथा और कई प्यादे किसी काम से कहीं जाने को तैयार खड़े हैं।

फूफी एक कालीन पर बैठी थीं। दूसरे एक आसन की ओर इशारा करते हुए उन्होंने राम बाबू से बैठने को कहा।

इसके बाद फिर बोलीं—किसन सिंह, पेड़ को तुमलोग रोक सकोगे ?

किसन सिंह बोला—घायल होकर जब तक लाचार नहीं हो जाता,

तब तक तो यों नहीं लौट सकता माँ जी।

राम बाबू ने पूछा—लेकिन हुआ क्या है जीजी?

फूफी ने कहा—शशि राय कल के अपमान को पी नहीं सका। उन लोगों के पोखरे के बाँध पर एक पेड़ बहुत दिनों से हमलोगों के कब्जे में है, आज उसी को कटवा रहा है।

राम बाबू बोले—किंतु मुकदमे में तो आप लोग खड़े नहीं हो सकेंगे। कानूनन पेड़ उसी का होता है, जिसकी जमीन होती है।

फूफी ने कहा—गाछ जब हमारे कब्जे में है, तो उसके नीचे की मिट्टी भी हमारी ही है। यह सब-कुछ तो कब्जा साबित करने पर मुनहसर है। मगर यह बात तो बहुत बाद की है। अभी इससे शिवू की हेठी जो होगी, उसका क्या होगा? कहावत है, जिसकी लाठी, उसकी भैंस।

राम बाबू बोल उठे—अगर जरूरत महसूस करें तो मेरा दरवान—

बीच ही में वाधा देकर फूफी बोलीं—अभी रहने दो भैया। भगवान ने शिवू का ब्याह अगर तुम्हारे ही घर लिक्खा है, तो बाद में जितना जी चाहे, करना।

उसके बाद हँसकर फिर बोलीं—और तब यदि जरूरत पड़ेगी, तो समधी को भी लाठी लेने को कहूँगी। फिर लेनी ही पड़ेगी लाठी।

नायब ने पूछा—तो ये लोग रवाने हो जायँ?

कुछ सोचकर फूफी ने कहा—छोड़ दो, इनके घायल होकर लौट आने से तो हमारी नाक नहीं रह सकती। इससे तो अच्छा है कि वे पेड़ काटें। आप मेरे महल के प्यादों और लठैतों को बुला दें। कोई पचास—एक गाड़ी तैयार रक्खें। कटे पेड़ को उठवा मँगाइये, जिससे एक भी पत्ता वे घर न ले जा सकें। उसी लकड़ी से मेरी रसोई बनेगी।

किसन सिंह और दूसरे प्यादे चले गये।

फूफी ने नायब को निर्देश दिया, जरा एक बार मुखजा भानजा क

घर से तो हो आइये। पूछिये कि मालगुजारी वे भले-भले दे रहे हैं, या नहीं। और ज्योतिषीजी की पूजा अगर समाप्त न हुई हो, तो कह दें, इतमीनान से करें, कोई जल्दी नहीं है।

नायबजी चले गये।

राम बाबू ने कहा—नान्ती ने कल क्या कहा, जानती हैं? वह पान खूब खाती है, सो कल माँ ने उससे कहा—तेरी शादी शिवू से हो रही है, उसकी फूफी को तो जानती है तू, इलाके के लोग उससे काँपते हैं। वह क्या तुझे ऐसे ही पान खिलायेंगी? नान्ती शरीर तो है ही, बोल बैठी—नहीं खाने देंगी? ओह, बड़ी तो आयी हैं वो!

फूफी ने कहा—जोड़ी अच्छी रहेगी, जैसा शिवू, वैसी ही नान्ती।

कमरे के अन्दर से ही शिवनाथ की माँ ने कहा—लेकिन व्याह में मेरी एक शर्त है दीदी जी, व्याह के बाद, बहू बराबर यहीं रहेगी।

और वह जलपान के साथ बाहर आयीं, रकाबी रामकिंकर बाबू के आगे रख दी।

रामकिंकर बाबू बोले—नान्ती की माँ नहीं है। आप लोगों को केवल उसकी सास ही नहीं, माँ भी बनना पड़ेगा। वह आप लोगों के पास ही रहेगी।

जलपान कर चुकने के बाद, राम बाबू ने कहा—तो ज्योतिषी को एक बार······

बीच ही में फूफी बोल उठीं—भई, तुम टिप्पन यहाँ रख जाओ, हम दिखा लेंगे।

राम बाबू ने टिप्पन दे दिया। बोले—मगर ज्योतिषी की जेब मैंने पहले ही भर दी हो, तब?

फूफी ने कहा—तब समझेंगे—यही होनी थी, हम दो विधवाओं के नसीब में यही बदा था। इसके सिवा तब और किया भी क्या जा सकता है!

रामकिंकर बाबू चले गये।

नौकरानी नित्यकाली को बुलवाकर, फूफी बर्तनों की गिनती लेने लगीं।

नित्तो ने कहा—केवल काँसे का वह कटोरा नहीं मिला। सवेरे ही बाबू भेड़िये के बच्चे को दूध पिलाने, वह कटोरा ले गये थे।

फूफी बोलीं—शिबू अभी तक जलपान करने नहीं आया! जरा उसकी कोई खोज तो ले। कहाँ गयी, मोती की माँ? तेल-तौलिया ले आ।

इतने में, कटोरा लिये, नित्तो लौट आयी। खबर लाई, पढ़कर, बाबू भेड़िये के बच्चे को माँद में रखने गये हैं।

फूफी चौंककर कहने लगीं—अकेला ही चला गया?

—नहीं तो; शम्भू भी साथ गया है। नायबजी ने रोकना तो चाहा था, पर बाबू बोले—माँ का आदेश है, पहले बच्चे को रख आऊँगा, तभी कुछ खाऊँगा-पिऊँगा। उन्होंने साथ में प्यादा भी भेजना चाहा, पर ढेले मारकर बाबू ने उसे भगा दिया।

फूफी ने शिवनाथ की माँ से कहा—तुम्हारी शिक्षा का यह जो तरीका है बहू, इसे तुम्हीं जानो।

माँ बोली—दिन की तो बात है; फिर, शम्भू भी साथ गया है। इसमें डरने की कौन-सी बात है?

फूफी बोलीं—तुम भी कैसी, मैं डर-भय की बात थोड़ी ही कर रही हूँ। कहती हूँ, इस शाक्त जमींदार घर के बच्चे से तुम माला लेकर जप कराना चाहती हो क्या? भेड़िये का मेमना रह ही जाता तो कौन-सा पुराण अशुद्ध होता! भैया के तो बहुत-से जानवर थे!

दिन के तीसरे पहर, बन्द कमरे में, पण्डितजी ने टिप्पनी पर विचार किया। हृदय बाबू—पुलिस साहब—की पोती का टिप्पन भी अच्छा ही निकला। लेकिन, जीत आखिरकार नान्ती की ही हुई। नान्ती के

राशिचक्र में सदासुहागिन का योग था, इधर शिवू के टिप्पन में, बीस की उम्र में, मृत्यु का ग्रह था। इसलिए, सोच-विचार के बाद, नान्ती से ही व्याह की बात तै हो गयी।

जो शिक्षक शिवू को, घर पर पढ़ाया करते थे, उन्होंने इस व्याह का विरोध किया ? वह छुट्टी पर गए हुए थे। लौटने पर जब यह सब सुना, तो भँवे टेढ़ी करके गम्भीर हो रहे! कुछ क्षण बाद विरोधात्मक ढंग से गर्दन, हिलाकर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—नो, आइ वोन्ट एलाउ इट। चौदह साल के बच्चे की शादी! बड़ी वाहियात बात है यह!

शिवू को उन्होंने आदेश के स्वर में कहा—शिवू, डोन्ट मेरी।

फूफी ने मास्टर साहब को बुलवाकर कहा—क्यों बेटा रतन, इस विवाह के तुम खिलाफ हो ? शिवू ऐंठ बैठा है!

मास्टर साहब का नाम है रामरतन। पीठ-पीछे लोग उन्हें पागल कहा करते हैं। सुना जाता है, जिन दिनों वे पढ़ रहे थे, उन दिनों एक बार वास्तव में ही उनका दिमाग खराब हो गया था। मास्टर साहब ने कुछ इस तरह कहना शुरू किया, मानों वह कोई बड़ी दूर की बात बता रहे हों। बोले—आपको एक लटका सुना दूँ, हम लोग कुम्हार की जाति के हैं, यह लटका भी इसीलिये हम लोगों से सम्बन्ध रखता है। कहा गया है, कुम्भकार से धूम्राकार, धूम्राकार से मेघाकार, मेघाकार से जलाकार—समझ में आयी बात! कुम्हार ने आवा जलायी नहीं कि बारिश हुई। आखिर क्यों ? इसीलिये कि आवा लगते ही धुआँ हुआ, धुएँ से बने बादल और बादल से बरसा पानी। वैसे ही, आज अगर शिवू का व्याह होगा, तो घर में बहू आयेगी ; जब बहू आवेगी तो शिवू के पढ़ने पर पानी फिरेगा और पढ़ना जहाँ गया कि सब गुड़ गोबर! मैं बालविवाह को बुरा जरूर नहीं कहता ; किन्तु, बालविवाह के मानी इतनी कम उम्र में नहीं।

फूफी कहने लगीं—शिवू पर छोटी उम्र में ही ग्रह का फेर है। उस

पर हम लोगों का जैसा बुलन्द एकबाल है, तुम अपनी आँखों देख ही रहे हो। यही कारण है कि मैं शिवू को किसी एक भाग्यवती कन्या के साथ बाँध देने को आतुर हो उठी हूँ।

मास्टर साहब तनिक गम्भीर हो गये। दो-चार बार अपनी दाढ़ी सहलाकर बोले—फूफी जी, यह सब मैंने भी कुछ कम नहीं देखा। मगर सच मानिये, इन बातों पर मैं कभी विश्वास नहीं करता। मेरे एक ही लड़का था, वह मर गया। बड़ी लड़की व्याह होते ही विधवा हो गयी। और ताज्जुब यह कि उसके टिप्पण में वैसा कुछ भी लिखा नहीं था। दर-असल भाग्य का नाम है अदृष्ट। अंकों के योग-वियोग से वह थोड़े ही पकड़ा जा सकता है, या राशि-चक्र के जरिये कभी जाना जा सकता है?

फूफी चुप हो गयीं। इस आदमी के लिये उनके हृदय में बहुत आदर है। यह व्यक्ति हार्दिकता से शिवू, और शिवू के नाते समूचा परिवार के प्रति जैसा निश्छल प्रेम एवं सद्भावना रखता है कि वह इस परिवार का एक अनिवार्य अंग ही बन गया है।

कुछ देर चुप रहकर फूफी ने कहा—लेकिन अब तो वचन दे चुकी हूँ मास्टर, वचन देकर मुकर जाना क्या उचित होगा?

मास्टर साहब बोले—मुकरने की बात क्या है? बात पक्की हो जाय, व्याह पाँच साल बाद ही होगा। मैं शिवू को आदमी जैसा आदमी बनाऊँगा फूफी।

मास्टर साहब चल पड़े। कमरे के बाहर ही हुए थे कि रसोईदारिन रतना ने कहा—मास्टर साहब, जरा सुनते जाइये।

रतन कब से उन्हीं के इन्तजार में खड़ी थी। बोली—शिवू की माँ ने आप से निवेदन किया है कि आप इस विवाह में आपत्ति न करें। इससे फूफी को बड़ी कड़ी चोट लगेगी। इसके अलावे उन्होंने यह भी कहा है कि व्याह से पढ़ने-लिखने की राह में रोड़े तो जरूर आते हैं, किन्तु व्याह के बाद भी विद्वान होने और बड़े बनने की मिसालें मौजूद हैं। हाँ, इतना

जरूर है कि यह काम थोड़ा कठिन है, लेकिन कठिनाई देखकर डरने से काम कैसे चल सकता है ?

मास्टर साहब ने अपनी दाढ़ी को सहलाया। बोले—हुँ···, माँ को जैसा कहना चाहिये, वैसी ही बात कही जा रही है। खैर, जब माँ कहती हैं···। मास्टर साहब फिर लौट पड़े, पुकारा—फूफी !

फूफी भरी-भर्राई बैठी थीं। उत्तर में उन्होंने सिर्फ मास्टर साहब की ओर देखा। मास्टर साहब ने कहा—मैं यह कहने आया कि आपने जब बात दे दी है, तो हो ही जाय व्याह। मगर मेरी एक शर्त है, व्याह के खर्च में से सौ रुपये की किताबें खरीद देनी होंगी आप को।

फूफी हँस पड़ीं। बोलीं—देखो, बरात में तुम्हें मैं शिवू के मास्टर साहब को जैसा होना चाहिये, वैसा ही सजा-सँवारकर भेजूँगी। गर्म कोट, शाल—यह सब पहनकर जाना होगा तुम्हें। वह पटसनवाला लम्बा कोट तो हर्गिज नहीं पहनने दूँगी मैं तुझे।

सचमुच ही मास्टर साहब के वैसा एक कोट है। उन्होंने कहा—वह तो आप जैसा चाहेंगी, वही होगा। लेकिन बाईजी का नाच, नौटंकी—यह सब कुछ मैं न होने दूँगा। गरीबों को जी भर खिलाना पड़ेगा।

—अच्छा, तुम्हारी इच्छा के खिलाफ कुछ नहीं होगा। फूफी खुशी-खुशी ही मास्टर साहब के प्रस्ताव पर राजी हो गयीं।

···मास्टर साहब शिवू के अध्ययन-कक्ष में पहुँचे। बोले—नः, यह व्याह कर ही ले शिवू। अर्ली मैरेज एक प्रकार से अच्छा है—गुड। हो जाने दे।

शिवू को इस पर कहने जैसी कोई बात नहीं थी। मास्टर साहब की आज्ञा को सिर-आँखों पर उठा लेने के सिवा इस व्याह से उसे कोई विरोध तो था नहीं, बल्कि रुचि ही थी। सो उसने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। जो किताब हाथ में थी, उसे रखकर उसने दूसरी उठा ली। जो किताब उसने रख दी, मास्टर साहब ने उसे उठाकर देखा। वह 'मेघनाद-

वध' काव्य था। उनकी आँखें प्रदीप्त हो उठीं। बोले—यह एक महान रचना है। और उन्होंने पढ़ना शुरू किया—

वीरशिरोमणि खुले समर में
जब असमय ही यमपुर को प्रस्थान कर गये ;
हे अमृत बरसानेवाली देवि, कहो तब
किस महान बलवान वीर को
सेनापति के पद पर वरण किया, भेजा
फिर समर-भूमि में, राक्षस-कुल की
भाग्य-लक्ष्मी का रखवाला कर।

जब तू और बड़ा हो जायगा शिवू, महाकवि मिल्टन का काव्य पढ़ेगा, तब तुझे साफ झलकेगा कि उन्होंने भी ऐसा ही लिखा है, उनके छन्दों की भी यही ध्वनि है। यह जो अमिताक्षर छन्द है, माइकेल ने उन्हीं से लेकर बङ्गला में चलाया है। मिल्टन महाकवि थे। लेकिन उनके अन्तिम दिन बड़े कष्ट में बीते—अन्धे होगये थे बेचारे। बड़ों की जीवनियाँ पढ़ जा। हाँ ! रवीन्द्रनाथ की कौन-कौन-सी किताबें तू पढ़ गया है? 'कथा और कहानी' पढ़ी है?

उत्साह के साथ शिवू ने कहा—वह पढ़ चुका हूँ। लेकिन हमारे पण्डितजी तो सौ मुँह से रवीन्द्र की निन्दा करते हैं।

इसके उत्तर में मास्टर साहब ने छात्र के कान में कुछ कहा, जैसे कोई बहुत गुप्त बात कह रहे हों—रवीन्द्रनाथ इज ए ग्रेट पोएट। बहुत बड़े कवि। एण्ड योर पण्डितजी नोज नथिंग।

—सर, आपने रवीन्द्रनाथ को कभी देखा है? शान्तिनिकेतन तो आपके घर से बहुत नैजदीक है?

—कभी क्यों, कई बार देखा है उन्हें। देवता-सरीखा स्वरूप है, लगते हैं कि कोई राजा हों। कहते-कहते मास्टर साहब उमड़-से उठे।

—आपने सुरेन्द्रनाथ को भी देखा है? उनके भाषण सुने हैं?

—अरे, उन्हें तो ज्वालामुखी ही जानो—एक बालकेनो। वे अभी-अभी उसी दिन तो पधारे थे शान्तिनिकेतन में। जरा उनकी तबीयत ख़राब हो गयी, नहीं तो ले जाता उन्हें···।

—इस बार मुझे भी शान्तिनिकेतन ले चलना होगा, सर!

—सच! मेरे यहाँ तू जायगा शिवू? मगर चैत में कंकाली-पूजा के मौके से वहाँ चल, तो तुझे इतना मांस खिलाऊँगा—इतना कि तेरा पेट फट जायगा। तुझे मालूम है, हमलोग वैष्णव हैं, हम अपने से काटकर किसी को मांस नहीं खिला सकते। मगर इस कंकाली-पूजा के अवसर पर वहाँ चार-पाँच सौ बलियाँ चढ़ती हैं, उस समय मांस मारा चलता है। शान्तिनिकेतन देखना, मेरा घर भी देख लेना। लेकिन मेरा घर तो अच्छा नहीं है, गरीब का घर ठहरा। ऐसा भी दिन था कि जब हम ऐसे गरीब नहीं थे। व्यवसाय में लुटिया डूब गयी। फूँक मारकर चिराग गुल कर देने से जैसा होता है—नलिनी दलगत जलमति तरलं—समझ गया?

शिवू ने कहा—इस बार मैं जरूर-जरूर जाऊँगा। उस समय गर्मी का बहाना करने से काम नहीं चलेगा। मैं जानता हूँ कि आप भी फूफी की बात मान लेंगे, लेकिन यह नहीं होने का।

मास्टर साहब बोले—तू है एक बहुत बड़ा इडियट। कब और कहाँ जिद पकड़ना चाहिये और कहाँ नहीं, यह सब तू कुछ नहीं जानता।

पास के कमरे में—टन्-टन्—घड़ी बोल उठी। मास्टर साहब चौंक पड़े—एः, नौ बज गये।

शिवू भी चौंक पड़ा—लेकिन गणित तो रही गया, सर!

गडवा और गमछा हाथ में लेकर, मास्टर साहब ने कहा—आज शाम को बस गणित ही गणित रहेगा। सतीश, अरे ओ सतीश—जरा तेल तो ले आ! थोड़ा ज्यादा लाना, कहना महिषासुर जैसा शरीर है, उसी अनुपात से।

मास्टर साहब डेढ़ मील दूर के एक झरने में नहाते हैं। लौटते समय

गड़ुवा में भर कर पानी लिये आते हैं। उसे छोड़कर दूसरा पानी वह पीते ही नहीं। स्कूल भी जाते हैं, तो यह गड़ुवा उनके साथ-साथ जाता है।

शिवू जब अन्दर आया, तब फूफी ने पूछा—मास्टर साहब ने क्या कहा तुम से? क्या यह कहा कि माँ और फूफी की बातें न माना करो?

शिवू चुप रह गया। यह समझते उसे देर नहीं लगी कि इसके बाद प्रसंग विवाह का उठेगा। विवाह की कल्पना से एक साथ ही आनन्द और लज्जा उसके मन को आच्छन्न करती जा रही थी। विवाह की याद आते ही उसे फूलों से लदी मालती लता का खयाल हो आया। किसी के व्याह के काव्योपहार में उसने पढ़ा था—'यह विवाह्-वासना एक सपना सोने का'। यही गूँज बार-बार उसके मन में उठने लगी।

स्कूल पहुँचकर, उसने बरामदे की रेलिङ्ग में साइकिल को जञ्जीर से बाँध दिया। वह दर्जे के अन्दर दाखिल हुआ, तो देखा, केवल दो छात्रों की पुस्तकें बेंच पर रखी हुई हैं, पुस्तकवाले छात्र भी कोई कहीं नहीं हैं। शायद बाहर गये हों। खिड़की से उझककर, उसने छात्रावास की ओर नजर दौड़ायी। कुछ लड़कों का भोजन समाप्त हो चुका था, कुछ अभी खा ही रहे थे।

जिस लड़के को शिवू की आकुल आँखें ढूँढ़ रही थीं, अचानक वह दिखाई पड़ गया। वह भी कुएँ के पास खड़ा-खड़ा शिवू को ही देखकर मुस्कुरा रहा था। लड़का शिवू की ही उम्र का था—सुन्दर-सा। नाम है उसका कमलेश, शिवू की होनेवाली वधू का बड़ा भाई। चूँकि माँ उनके नहीं है, इसलिये घर पर ताला पड़ा है। नान्ती और दूसरे छोटे भाई तो अपनी नानी के साथ रहते हैं, कमलेश छात्रावास में रहता है। बड़े दिन की छुट्टियों में वह कलकत्ते गया था, शायद आज ही सुबह की गाड़ी से लौटा है!

कमलेश ने खिड़की के सामने आकर पूछा—ब्रदर-इन-लॉ के मानी? हँसते हुए शिवू ने उत्तर दिया—तुम्हारी मानि की बही में क्या लिखा है, पता नहीं, पर मेरी किताब में तो दन्त्य 'स' में आकार 'ल' में आकार लिखा है।

कमलेश बोला—शुक्रिया! लेकिन तुमसे बहुत-बहुत बातें करनी हैं।

शिवू बोला—छुट्टी के बाद, क्यों?

—आज मैं क्लास नहीं जाऊँगा। गाड़ी में तमाम रात जगकर आया हूँ। न हो तो मेरे कमरे में ही आ जाओ न।

—नः, शरारती लड़के खिल्लियाँ उड़ायेंगे।

—अजी, तीन-तीन पिचकारियाँ फायर ब्रिगेड के लिये ले आया हूँ। वे एक डोल पानी खींचती हैं और बड़ी दूर तक फेंक सकती हैं।

सच! और शिवू उसी दम क्लास से बाहर निकल गया। उन लोगों की एक ग्राम-सेवा-समिति है, जिसमें एक फायर ब्रिगेड है। कहीं आग लगती है, तो डोल, बाँस की सीढ़ी आदि लेकर वे दौड़ पड़ते हैं। फायर-ब्रिगेड का कप्तान यही कमलेश है।

शाम को शिवू पढ़ने बैठा। सहसा उसे दीख पड़ा कि खलिहान की तरफ धीरे-धीरे कई गाड़ियाँ आ रही हैं। आदमी भी बहुत-से जमा हैं। मास्टर साहब इक्वेशन की थ्योरी समझा रहे थे। उन्हें ऐसा लगा कि शिवू का ध्यान कहीं और है। उन्होंने डाँट बताई—यू फौलो माई फिंगर। कम्बख्त उधर क्या देख रहा है?

शिवू ने कहा—सर, वहाँ आखिर इतनी गाड़ियाँ क्यों जमा हैं? मास्टर साहब ने खुद उठकर उस ओर की खिड़की बन्द कर दी और बोले—नाउ, फौलो मी।

सवाल हल होने लगा। खत्म हो जाने पर मास्टर साहब बोले—बात क्या है रे शिवू! घुस-फुस आवाज में बहुतेरे लोग बातचीत कर रहे हैं। डकैत तो नहीं आ धमके?

शिवू हँस पड़ा—नहीं मास्टर साहब, किसन सिंह भी उसमें है, महल के कई प्यादे भी हैं।

उहूँ, हो सकता है, आते ही डाकुओं ने उनके मुँह में कपड़ा ठूंस दिया हो। दबे पाँव आ तो मेरे पीछे-पीछे। हाँ, लाठी ले लूँ।

लेकिन और कुछ की जरूरत ही नहीं पड़ी। कमरे से बाहर होते ही नजर पड़ी, किसन सिंह और दूसरे कई प्यादे नायबजी का निर्देश सुन रहे हैं—पौ फटते ही गाड़ी लेकर हाजिर हो जाना। रात को नहीं, तब तो लोग यह कहेंगे कि चोरी-चोरी ले गये। मतलब यह कि जब तक लोग पहुँचें, तब तक गाछ गाड़ी पर लद जाय। बस, उसके बाद यदि रोक-थाम करें, तो तुम लोग हो और तुम्हारी लाठियाँ हैं।

शिवू सारी बातें ताड़ गया। उसे न जाने यह कैसा तो लग रहा था। बोला—सिंहजी, फिर भी वे कहेंगे कि धोखे से ले भागे।

सिंहजी बोल उठे—हर जगह बल से ही काम नहीं होता। बल से बुद्धि ज्यादा काम आती है। कहा है, बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—क्यों मास्टर साहब ?

मास्टर साहब बोले—बेशक! मॉडर्निज्म इसी का नाम है। उसके बाद बार-बार गर्दन हिलाकर कहा—फूफी इज़ ग्रेट। गजब का दिमाग है! आ, चल शिवू, तुझे रानी-भवानी की कहानी सुनाऊँ। वे बङ्गाल के जमींदार घर की लाड़ली थीं। पलासी की लड़ाई के वक्त क्या कहा था उन्होंने, मालूम है? कहा था, नहर खोदकर मगर को मत न्योता दो। क्रोकोडाइल इज ए डेंजरस रेप्टाइल।

दूसरे दिन सवेरे एक-एक करके बहुतेरी लकड़ी लदी गाड़ियाँ खलिहान में दाखिल हो गयीं–उनके पीछे लगे आये किसन सिंह तथा और कई प्यादे। बिना किसी हल्ला-हङ्गामा के काम बन गया, कोई रोक-टोक करने भी न आया। एक आदमी ने देखा जरूर, लेकिन वह खबर देने जो गया, फिर लौटकर नहीं आया।

सतीश ने अन्दर से लाकर एक चिट् नायबजी के सामने रख दी। यह गाड़ीवानों और प्यादों के इनाम का हुक्म था।

पाँच

बनर्जी-परिवार के लोग बहुत मामूली जमींदार हैं। सात आने हिस्से से शिवनाथ की सालाना आमदनी चार-पाँच हजार रुपये की है। मगर बन्दोबस्ती बहुत है। पालकी ढोनेवाले कहारों को जागीर है, प्यादों को जमीन अलग दी गयी है; नाई, पुरोहित, पुजारी को भी खेत दिये गये हैं, यहाँ तक कि गया, पुरी, काशी के पण्डों को भी। घर के ठाकुर के लिये रोज फूल ले जाने का भार एक खास आदमी पर है, जागीर पाये हुए बजनिये रोज सुबह-शाम नफीरी बजाने आते हैं—इन बातों की मालिक को कभी फिक्र नहीं करनी पड़ती।

जो भी हो, मामूली जमींदार होने पर भी शिवनाथ का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। फूफी शिवनाथ के पिता के विवाह की फिहरिश्त निकालकर सामानों की सूची बनाने बैठीं।

नायब ने कहा—माँजी, अगर आदेश दें तो एक अर्ज करूँ।

फूफी ने कहा—आप खर्च ही की तो बात कहेंगे?

—जी हाँ। तब की बात और अब की बात में बड़ा अन्तर है, फिर जो बाजार की हालत है, बेहद मँहगी, वसूली का ऐसा हाल—शायद कर्ज की नौबत······

लेकिन जब उधर से कोई सहारा नहीं मिला, तो नायबजी बात अधूरी छोड़कर ही चुप हो गये।

शिवनाथ की माँ भी निकट ही बैठी थीं। बोलीं—आपका कहना बहुत दुरुस्त है नायबजी! यह आतिशबाजी, बाईजी का नाच, इन सबों का खर्च तो फिजूल ही है।

महल के बहुत पुराने गुमाश्ता प्रताप मुखर्जी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा—बहुत ठीक कह रही हैं बहूजी, यह सब फिजूलखर्ची नहीं तो क्या है?

फूफी ने कहा—मोती की माँ, तेल-तौलिया ला—बड़ी देर हो गयी।

नायबजी ने पूछा—आखिर फिहरिश्त का कैसे-क्या होगा?

फूफी उठकर खड़ी हो गयीं। कहा—वह सब तुम लोग बना डालो। कहाँ गयी मोती की माँ···मोती की माँ? दईमारी गयी कहाँ? कौन है रे, वहाँ वे सब कौन खड़े हैं?

किसन सिंह आकर बोला—जी, दो सौ उन्नीस नम्बर के मोची और बागदी रैयत हैं।

—क्या कहना चाहते हैं वे?

प्राणकृष्ण बजनिये ने हाथ बाँधकर कहा—माँ जी, हमलोग बाबू के व्याह के बाजे का बयाना करने आये हैं। ये बागदी भी उसी के लिये आये हैं।

फूफी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। उन्होंने नित्तू को बुलाकर कहा—जरा देख तो, यह मुई मोती की माँ कहाँ गयी?

प्राणकृष्ण ने कहा—हमलोगों की रौशनचौकी और ढोल की अब माँग नहीं होती, किन्तु बाबू के व्याह में हमलोग बाद न पड़ जायँ, यही अर्ज है माँजी!

काला-कलूटा, हट्टा-कट्टा शरीरवाला रामभल्ला हाथ बाँधे वहीं खड़ा था। बोला, हमारी भी यही प्रार्थना है माँजी!

तेल और तौलिया लेकर इतने में मोती की माँ आयी। फूफी ने कहा—तुझे नौकरी से जवाब देती हूँ। और उसके हाथ से तौलिया लेकर बिना तेल लगाये ही वे नहाने चली गयीं।

अब तो सामानों की फिहरिश्त बनाना मुमकिन ही नहीं था। नायबजी,

गुमाश्ताजी उठकर चले गये। शिवनाथ की माँ सिर्फ जरा हँसी। रैयत लोग खड़े थे। शिवनाथ की माँ ने कहा—तुम लोगों के बाजे का बयाना जरूर होगा। तुम्हारे बाबू का व्याह है, तुम्हीं लोग कैसे छाँटे जा सकते हो?

रैयत लोगों ने कृतार्थ होकर उन्हें प्रणाम किया।

माँ ने कहा—रतन, इन लोगों के लिये जलपान ला दो।

अन्त तक विवाह में वैसा ही आयोजन, अनुष्ठान और समारोह हुआ, जैसा कि शैलजाजी चाहती थीं। ढोल-ताशे, बैण्ड, बैगपाइप, नाच, रोशनी, जुलूस, इनमें से एक भी बाद नहीं पड़ा। ब्राह्मण-शूद्र, अन्य जाति के लोग, सभी न्योते गये। इस धूमधाम के लिये कर्ज के सिवाय कोई चारा नहीं था। सारी जमींदारी की कुल आय से भी इतना कुछ नहीं होने को था। किन्तु, जिस युक्ति से फूफी ने यह सब-कुछ निबाहा कि नायब-गुमाश्ता तक को दंग रह जाना पड़ा। आयोजन के प्रारम्भ में ही उन्होंने स्टेट के वकीलों को बुलवाया। जितने मुकदमे दायर थे, उन्हीं के मुद्दालहों से पेशगी थोड़ा-बहुत लेकर कोई बारह सौ रुपयों का इन्तजाम उन्होंने कर लिया।

नायबजी से उन्होंने कहा—इन रुपयों से आप लोगों को कोई ताल्लुक नहीं है। यह तो बकाये के हैं, स्टेट के मौजूद तहबिल के रुपये हैं। मुकदमे के खर्च के रुपयों में से मैंने नहीं लिया, वे वकील के पास जमा रहे।

फिर भी हजार रुपये कर्ज लेने पड़े।

पाँवलगी के दिन शिवनाथ और नयी बहू को उन्होंने कचहरी में बैठाकर मुँहदिखाई का रस्म अदा किया। दोनों के पास आप खुद भी खड़ी रहीं। एक ओर नायब और सभी गुमाश्ते खड़े रहे। बहू के पीछे दाई खड़ी रही। वर-वधू के सामने एक तिपाई पर एक बड़ी-सी परात रखी गयी थी। देखते-ही-देखते वह रुपयों से भर गयी। रात के नौ बजे बहू को देखनेवालों का ताँता टूटा, उस समय तक नौ साल की नन्ही बहू कुर्सी की बाँह पर नींद से ढुलक गयी थी।

फूफी ने कहा—किसन सिंह, परात उठा लो।

कमरे के अन्दर शिवनाथ ने गिन-गिनकर रुपयों की गद्दियाँ लगाईं। सात सौ उनचास रुपये आये।

भाई-बंधु हल्ला मचाने लगे। एक प्रौढ़ा स्त्री ने कहा—अजी ओ फूफीजी, अब अपना हिसाब-पत्तर रखो बाबा, आखिर फूल-शय्या का क्या होगा? बहू तो तुम्हारी मारे नींद के लुढ़क पड़ी।

फूफी ने कहा—बस, जरा देर और। नायबजी, सेफ खोलिये।

वही पुराने-जमाने का भारी आयरन चेष्ट, नायबजी और एक गुमाश्ते ने मिलकर उसके ढक्कन को उठाया। फूफी ने कहा—इसे हमारे भैया अकेले ही आसानी से उठा लिया करते थे!

सन्दूक में ताला लगाकर फूफी ने आसमान सर पर उठा लिया—ऐं, बाजे बंद क्यों हो गये? किसन सिंह, शहनाईवाले से बजाने को कहो। हाँ, बहुएँ कहाँ चली गयीं? आओ, सब इधर आओ।

शहनाई बजने लगी।

फूफी बोलीं—नायबजी, मिठाईघर के भण्डारी से कहिये, कोहवर में पूरी-मिठाई भेज दें, लड़कियाँ खायँगी। अरी ओ पँचथोपी बहू, देखो, एक भार यह तुम पर रहा कि जो खायें नहीं, उनका परोसा उन्हें जरूर दे दो!

बाहरी दरवाजे से आवाज आयी—काली, माँ आनन्दमयी।

—कौन? रामजी दादा हैं?

—हाँ, दीदी। आज आनन्दमयी ने मेरी मनोवांछा पूरी की। शिवू आज से गृहस्थ हो गया। मैं माँ काली को चढ़ाकर प्रसादी माल ले आया हूँ।

उन्होंने कपड़े में लिपटी दो वनमल्लिका की मालायें बाहर निकालीं। खुशबू से सारा आँगन गमगमा उठा!

—संन्यासी दादा, आप ऊपर जाकर वर-वधूको आशीर्वाद तो दीजिये।

संन्यासीजी ने सिर्फ मालायें ही नहीं दीं, बहू के हाथ में दो रुपये भी दिये और कहा—सदा सुहागिन बनी रह बिटिया ! और, रुपये देने की वजह से कोई कुछ कह-सुन न पाये, यह सोचकर जल्दी-जल्दी वहाँ से निकल पड़े। कोहवर का आनन्द-उत्सव आरम्भ हो गया।

पँचथोपी की बहू ने फूफी को पुकारकर कहा—बूआजी, जरा देखती जाओ।

फूफी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्मुक्त आकाश की ओर आँखें किये वह आँगन में खड़ी थीं। रतन ने कहा—जरा जल्द चलिये, देखिये मजा। बहू उठती ही नहीं थी, सो शिवनाथ ने खूब कसकर कान मल दिया ! और, रतन ठठाकर हँस पड़ी। उत्सवक्रान्त घर मुखरित हो उठा।

फूफी ने कहा—बहू कहाँ हैं ?

रतन बोली—वह सो गयी हैं। लाख किये भी नहीं जगीं। शायद···। और रतन चुप हो गयी।

फूफी ने कहा—रो रही हैं ? वह कुछ और भी कहने जा रही थीं, कह नहीं सकीं। जल्द-जल्द ऊपर चली गयीं और अपने सोने के कमरे को अन्दर से बंद कर लिया।

उस समय भाभियों के आग्रह से शिवू ने कोहवर में तान छेड़ दी थी। इतने में फूफी के कुण्डी खोलने का शब्द सुनायी दिया। थकी हुई-सी आवाज में फूफी ने पुकारा—नीचे कौन है ?

किसी ने उत्तर दिया, मैं श्रीपति हूँ माँजी, बेलेड़ा मौजे का गुमाश्ता।

आदेश हुआ—किसन सिंह से कह दीजिये, कोहवर के द्वार पर पहरा देता रहे।

माँ ने उपहार में वधू को एक रामायण और शिवनाथ को चाँदी जड़ी एक कलम दी।

३

विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया !

बहू ब्याह के साथ ही विदा होकर ससुराल आ गयी, जैसा कि पहले से ही तय था। बहू को कोई कष्ट भी नहीं है। ससुराल की खिड़की से मायके के लोग देखे जा सकते हैं, बातें भी की जा सकती हैं। सुबह-शाम मायके जाने की छूट भी है। और यों मौका पाते ही आँख बचाकर जब-तब वह नानी से भेंट कर भी आती है। जिम्मेवारी के नाम पर उसे दो काम दिये गये हैं, फूल बीनना और पान लगाना। फूफी ने शिवनाथ के कपड़े-लत्ते सजा-सँवार रखने की आज्ञा दी थी, किन्तु शिवनाथ की माँ ने उसे इस भार से बरी कर दिया है। बल्कि इसके बदले में रात को फूफी के पाँवों में तेल लगा देने का जिम्मा उसे दिया है। रात को बहू, माँ के साथ सोती है।

फागुन का महीना। गाँवों के गुमाश्ते पूष किश्त की मालगुजारी का हिसाब देने आये हैं। बेलड़ा मौजे के गुमाश्ते ने वसूली की जो रकम सदर को भेजी थी, वह बहुत थोड़ी थी। इसलिये फूफी ने कहा—यदि वसूली नहीं हो सकी है, तो रुपये अपनी गाँठ से जमा कर दो, तुम पीछे अदा करके ले लेना।

श्रीपति गुमाश्ते ने (हाथ जोड़कर) कहा—माँजी, महज पाँच रुपये का मैं नौकर, आय की रकम मेरी गाँठ में कहाँ मिल सकती है ?

फूफी बोलीं—यह बताओ, टैक्स के रुपये कम दिये जाँय, तो क्या शिवनाथ को सरकार से माफी मिलेगी? आखिर यह जमींदारी कैसे चलेगी?

नायबजी पास ही खड़े थे। बोले—भाई, लगान के रुपये तो देने ही पड़ेंगे, जमींदारी का मुनाफा चाहे न दो।

गुमाश्ते ने कहा—बड़े पेड़ ही बड़ी आँधियाँ झेल सकते हैं, माँ जी! आप दया न करें, तो उपाय भी क्या है? इस बार रैयतों का बड़ा बुरा हाल है!

फूफी ने कहा—मगर इन बातों का ख्याल किया जाय, तो नाबालिग की जमींदारी ही जाती रहेगी। जैसे भी हो, इस किश्त के रुपये तो चाहिये ही। अगर वसूल न कर सको, हैंडनोट लिख दो।

इतना कहकर फूफी नहाने चली गयीं। इतनी सारी बातें कमरे के अन्दर ही हुईं। नायबजी और श्रीपति गुमाश्ता बाहर चले जा रहे थे कि बरामदे पर शिवनाथ की माँ दिखायी पड़ीं। उन्होंने पुकारा—श्रीपति!

मुड़कर श्रीपति अदब के साथ--खड़ा हो गया, बोला—जी, माँजी।

वह दालान में जाती हुई बोलीं—एक बात तो सुनो। नायबजी, आप भी सुन जाइये।

नायब और गुमाश्ता दोनों अन्दर गये। माँ ने सहज स्वर में पूछा—क्या वास्तव में रैयतों को इस साल बड़ा कष्ट है?

गुमाश्ता हाथ बाँधकर बोला—मैं झूठ हर्गिज नहीं कह सकता माँजी, आप तहकीकात करा लें चाहे।

माँ बोलीं—एक और बात। सच-सच बताना। अच्छा, रैयतों से बहू दिखाने के बहाने भेंट के जो रुपये लिये गये हैं, उसके लिये क्या लोग हमारी निन्दा करते हैं?

श्रीपति मौन रह गया।

माँ ने फिर पूछा—नायबजी?

नायबजी बोले—इस बात की चर्चा ही न कीजिये माँ जी! यह दुनिया है, जितने ही मुँह हैं, उतनी ही बातें भी हैं। उन पर ध्यान देना बुद्धिमानी नहीं।

माँ ने कहा—मैं रैयतों के रुपये उन्हें लौटा देना चाहती हूँ।

श्रीपति ने कहा—नहीं, नहीं माँ जी, ऐसा भी कहीं हुआ है? निन्दा सभी थोड़े ही करते हैं! और यों रुपये लौटा देने से क्या उनका अनादर नहीं होगा? इतना जरूर है कि आपके आगे उनके आदर-अनादर का सवाल ही नहीं उठता।

माँ ने मीठी हँसी हँसकर कहा—नहीं-नहीं; ऐसा नहीं कहो। हाथ की अँगुलियों में छोटी-बड़ी का भेद नहीं किया जाता! लोगों के लिये भी यही बात है। स्थिति के हिसाब से छोटा-बड़ा नहीं होता कोई। खैर, आप लोग अब जा सकते हैं।

जाते-जाते नायबजी ने कहा—सब तरफ से मेरी ही मौत है। एक मालिक उत्तर जाती हैं, तो दूसरी दक्खिन। यह लड़का सयाना हो जाय, तो खैर मनाऊँ!

होली की छुट्टियाँ। शिवनाथ अपने कमरे में बैठा, पीतल की पिचकारी में लत्ता लपेट रहा था। होली आ रही थी, रंग जो खेलना है।

नौ साल की नान्ती पास ही खड़ी यह देख रही थी। जीने पर से ही उतरती हुई माँ ने पूछा—शिवू है?

अपने पास ही बहू की मौजूदगी की बात सोचकर शिवू का चेहरा फक हो गया। सूखे गले से वह बोल उठा—ऐं······

किन्तु नान्ती न तो अप्रतिभ हुई, न घबड़ाई। वह सिमटकर खाट की आड़ में दुबक गयी। कमरे में जाकर माँ ने अन्दर से कुण्डी लगा दी। मारे भय के शिवू के तो होश उड़ गये।

माँ ने कहा—तुझ से एक बात कहनी है शिवू!

शिवू उनके मुँह की ओर देखने लगा। माँ बोलीं—गुमाश्ते यह कह रहे थे कि इस साल दिन बड़े बुरे पड़े हैं, फसल अच्छी नहीं हुई है। रैयत बेचारे मालगुजारी नहीं दे पा रहे हैं।

माँ की ओर आँखें गड़ा कर शिवू ने कहा—तो इस बार की मालगुजारी माँफ कर दो।

माँ ने कहा—अपनी हालत भी तो ऐसी नहीं है बेटा, कि एकबारगी माफी दे दी जाय। फिर यह जमींदारी है नाबालिग की, जज साहब को हर साल हिसाब देना होता है। शायद उन्हें यह माफी मंजूर न हो। खैर, यह बात जाने दो। मैं कह रही थी, ऐसे अकाल के दिनों में भी, विवाह के समय, रैयतों से रुपये लिये गये हैं, इस बात की तमाम निन्दा है।

माँ की बातें सुनते हुए जाने कब शिवू का मुखमण्डल गम्भीर हो उठा था। उसने धीमे से कहा—यह तो बहुत ही बुरा हुआ है माँ!

बेटे के माथे पर हाथ फेरती हुई माँ ने कहा—इसी से वे रुपये रैयतों को लौटा देने चाहिये बेटा! किसी तरह इस बात के लिये तू अपनी फूफी को राजी कर।

शिवू ने कहा—फूफी को मैं जरूर राजी कर लूँगा। जहाँ एक शाम का खाना बन्द कर दिया कि वह इस पर सहमत हो जायँगी।

—हाँ, अगर सीधे रुपये ही लौटा दिये जायँ, तो वह रैयतों का अपमान होगा। इसीलिये फूफी से यह हुक्म करा ले, जिसमें इस साल की मालगुजारी में हर रैयत को एक रुपये की माँफी मिल जाय। उनसे कहना, मेरे व्याह की खुशी में एक रुपये की छूट देने से आसामी बड़े खुश होंगे। सदा हमारा नाम लेंगे और हृदय से दुआ देंगे।

—लेकिन कुछ लोगों ने एक से ज्यादा भी तो दिया है। जैसे योगी मण्डल ने पाँच दिये हैं, खुदी मोलेन ने भी, और भी न जाने किस-किस ने दिया है। सिंहजी की बही में सब दर्ज है।

—लेकिन वे लोग जरूरतमन्द नहीं हैं शिवू। यह चाल न भी खेली गयी होती, तो ये उतना ही देते। खैर, तू एक ही रुपये छूट का हुक्म फूफी से दिलवा तो भला!

इसके आगे माँ वहाँ न रुकीं। लेकिन जाते-जाते यह कह गयीं कि भूल से भी आज यह बात न कहना। आज शाम को गुमाश्ते चले जायँगे। तू कल कहना फूफी से। नहीं तो वह डाँट पड़ेगी इन पर कि बेचारों की बुरी गत हो जायगी। फूफी सोचेंगी कि उन्हीं लोगों ने तुम को भुला-फुसलाकर उभाड़ा है।

इधर माँ चली गयीं और उधर धूल-झोल से सिर सानकर, बहू खाट की आड़ से निकल पड़ी। हँसकर उसने शिवू की पीठ पर धम्म से एक धौल जमाया और नौ दो-ग्यारह हो गयी।

दूसरे दिन। नौ बजे की घटना है। बहू छत पर खिलौने लिये खेल रही थी कि अचानक फुक्का फाड़कर रोती हुई नीचे आयी। शिवू ने चीनी मिट्टीवाला बड़ा-सा खिलौना तोड़ दिया।

फूफी ने आवाज दी—शिवनाथ!

शिवनाथ मोर्चे पर डट जानेको तैयार होकर ही उतरा आ रहा था। जीने पर से ही बोल उठा—आखिर वह विलायती खिलौने से क्यों खेलती है?

जली-कटी बहू तुमड़ी की तरह तुनतुना पड़ी—जरूर खेलूँगी, हजार बार खेलूँगी। इसमें उसका क्या बिगड़ता है?

आदेश के स्वर में शिवनाथ बोला—निन्नू, ऊपर से मेरी पतली बेत तो ले आ।

बहू न पागल के समान जीभ निकालकर, बड़ी बुरी तरह, शिवनाथ को मुँह दूस दिया—आँ-आँ-आँ।

फूफी मन्द-मन्द हँस रही थीं। माँ भी हँस रही थीं। पर अब की उन्होंने शासन करते हुए कहा—बहू, अन्दर चली जाओ।

नान्ती सिसकती हुई अन्दर चली गयी।

फूफी बोलीं—नित्तू, नायबजी से कह दे, अनन्त वैरागी को बुलवा दें। उसके पास जितने भी प्रकार के खिलौने हों, सब साथ लाये। अपनी पसन्द से बहू खिलौने ले लेगी।

शिवनाथ बोला—लेकिन कहीं खिलौने विलायती हुए तो अनन्त को हर्गिज आँगन में पाँव न धरने दूँगा।

अन्दर से ही बहू बोल उठी—बड़े बनने आते हैं कि पाँव नहीं रखने देंगे। घर जैसे अकेले उसी का है।

सिलाई में लगी हुई माँ बोल पड़ीं—बहू, तुम्हें चुप ही रहना चाहिये।

बहू से कोई जवाब देते नहीं बना, तो शिवनाथ की ओर देखकर उसने मुँह बिचका दिया।

शिवनाथ ने कहा—बस देख लो, फिर मुँह बना रही है। मारे बेत के मैं चमड़ी उधेड़ दूँगा—कहे देता हूँ।

माँ बोलीं—शिवू, औरतों पर हर्गिज हाथ नहीं उठाना चाहिये। अब कभी ऐसा न कहना।

सतीश वहाँ आकर खड़ा हो गया। इस सतीश की एक विचित्र-सी आदत है। घर में अगर कभी शोरगुल होता है या कुछ सरगर्मी दिखायी देती है, तो वह चुप खड़ा रह जाता है। फिर चाहे कितनी ही जरूरी बात क्यों न हो, जब तक शांति नहीं होती, वह कुछ नहीं कहता। कहता है, आखिर झूठ-मूठ चिल्लाने से फायदा भी क्या? हो-हल्ला में सुनवाई क्या हो सकती है? उसके संयम का एक अच्छा नतीजा यह निकला है कि अब उसके यों चुपचाप खड़े होते ही लोग उसकी ओर मुखातिब हो जाते हैं, और तुरन्त पूछते हैं—क्या है सतीश?

इतना ही कहना काफी हो जाता है, सतीश काम की बात कह डालता है। रतन रसोईदारिन ने उसका नाम ही 'भग्नदूत' रख दिया है।

उसे देखते ही माँ ने पूछा—क्या है सतीश ?

वह बोला—जी तेल के लिये आया हूँ। मास्टर साहब आये हैं।

यह सुनकर तपाक से बहू बोल उठीं—मैं मास्टर साहब से सब कह दूँगी। माँ ने झिड़की-सी दी—छिः, ऐसा नहीं कहते।

तो मास्टर साहब की छुट्टी खत्म हो गयी! होली की छुट्टी भी तो आ ही पड़ी! छुट्टी हुई नहीं कि मास्टर साहब घर रवाना हुए। और, उनका घर जाना भी क्या खूब होता है, ठीक जैसे कोई खेतिहर नंगे पाँव धमधमाता जा रहा हो।—उस दृश्य को याद करके रतन को हँसी आ गयी। अपनी बात वह पूरी नहीं कर सकी।

शिवू मास्टर साहब के पास पहुँचा। वह अपनी दाढ़ी सहलाते हुए भारी मुँह लिये पायचारी कर रहे थे। शिवू को देखकर बोले—वेल्, शिवू!

—जी सर!

—वेल् माइ बॉय, कैन यू टेल मी, ह्वाट शैल आइ से ? हाँ, तू बता सकता है कि मनुष्य का सम्मान बड़ा है या सम्पत्ति ?

शिवू को यह उम्मीद न थी कि मास्टर साहब इतना सहज सवाल पूछेंगे। बोला—सम्मान बड़ा है सर, सम्मान के लिये आदमी जान तक दे सकता है।

मास्टर साहब गद्‌गद् हो गये, बोले—शाबाश! तुमसे ऐसे ही जवाब की मैं आशा करता था। गॉड ब्लेस यू, माइ बॉय।

और उन्होंने शिवू का हाथ धर लिया। बोले—देन आइ बिड् यू गुडबाइ, माइ बॉय। आइ हैव रिजाइन्ड। स्कूल से मैंने इस्तीफा दे दिया है।

ऐसे अप्रत्याशित कठोर समाचार से जैसे शिवू को काठ मारा गया। मास्टर साहब गम्भीर होकर पायचारी करने लगे। फिर बोले—स्कूल में

मुझे अपमानित होना पड़ रहा है। मैंने इस्तीफा दे दिया है। अब उसे वापिस ले नहीं सकता। इसीलिये मैंने छुट्टी ले रखी थी। घर के सभी लोग खिलाफ हैं, सगे-सम्बन्धी भी रोक-थाम कर रहे हैं, मगर किसी की राय मुझे ठीक नहीं जँचती। एक, बस, एक तू ने ही वाजिब कहा है। मुझे इसकी बेहद खुशी है।

शिवू की आँखें भींग गयीं। मास्टर साहब की जिस गहरी ममता के बंधन से वह जकड़ गया था, उस बंधन के टूटने की कल्पना से ही उनका जी गाढ़ी वेदना से व्याकुल हो उठा। एक कुर्सी पर सिर टेककर वह जोरों से आँसू बहाने लगा। मास्टर साहब ने उसे दिलासा देना चाहा, पर दे नहीं सके और खुद भी रो पड़े। उनके आँसू आशीर्वाद के ही समान शिवू के माथे पर झरने लगे। बड़ी देर के बाद बोल पाये—शिवू, रो मत बच्चे! इसका कोई उपाय नहीं। यह दुर्बलता है। मैन इज़ बोर्न टु डाइ। मनुष्य मर ही जाता है, फिर भी घबराना नहीं चाहिये। यह मैं जानता हूँ, नौकरी के बिना मेरे कष्टों की कोई सीमा नहीं रहेगी। लेकिन तोभी मुझे यह सहना ही पड़ेगा।

बात भी बड़ी मामूली-सी हुई। मास्टर साहब ने स्कूल की प्रबंध-समिति की सदस्यता के लिये उस व्यक्ति के पक्ष में मत नहीं दिया, जिसे कि स्कूल के अध्यक्ष और मन्त्री महोदय ने मनोनीत किया था। उन्होंने एक दूसरे योग्यतम उम्मीदवार को अपना मत दिया। किन्तु; मालिक-मन्त्री को यह आशंका थी कि वह योग्य व्यक्ति उनका साथ न देकर बात-बात में रोड़ा डालेगा, इसलिये वे उसके पक्ष में नहीं थे। इसलिये मालिक ने चाहा है कि मास्टर साहब माफी माँग लें, नहीं तो अयोग्यताके नाम पर उन्हें स्कूल से अलग कर दिया जायगा। इसी उधेड़-बुन में मास्टर साहब कई दिनों की छुट्टी लेकर घर रहे। तरह-तरह से इस बात पर सोचते-विचारते रहे, घर के लोगों और हित-मित्रों ने उन्हें माफी माँग लेने की नेक सलाह

भी दी, पर किसी भी तरह माफी माँगना उन्हें न जँचा। उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

इस समाचार से शिवू का परिवार वास्तव में दुःखी हो उठा, जैसा कि अपने प्रियजन के वियोग से कोई परिवार दुःखी होता है। फूफी ने कहा—मास्टर साहब, आखिर तुम जाओगे क्यों भैया! यहीं रहो, मेरे शिवू को पढ़ाओ। जहाँ तक बन पड़ेगा, मैं तुम्हारी जरूरतें पूरी करूँगी।

किन्तु आज मास्टर साहब पहले के तेजोद्दीप्त मास्टर नहीं दिख रहे थे—शान्त, अचल बैठे थे। वे मुँह का कौर रोककर बोले—जी नहीं, इससे शिवू की जमींदारी को नुकसान पहुँचेगा। वह महज मेरा छात्र ही तो नहीं है, उससे हमारा वही रिश्ता है, जो पिछले युग में हिन्दुओं के गुरु-शिष्य का हुआ करता था। और अब नौकरी करने का इरादा भी नहीं है, घर चलकर खेती करूंगा। हमारे एक कवि ने कहा है—

जो स्वतन्त्रता-धन पल भर को भी पा जाऊँ।
तो स्वर्गिक सुख को, नन्दन को तुच्छ बनाऊँ॥

जीवन की आजादी के लिये अगर कष्ट ही गले लगाना पड़े, तो वह लगाऊँगा मैं।

दीर्घ निश्वास छोड़कर फूफी ने कहा—मगर मेरा शिवू पढ़ेगा किससे? न हो, तो अपने बदले तुम्हीं किसी को ठीक कर जाओ।

शिवू के लिये इसकी कोई जरूरत नहीं है फूफी। दूसरे मास्टर केवल इसे पढ़ा ही सकेंगे, इन्सान नहीं बनायेंगे। शिवू आप अपनी राह बना लेगा—माइ शिबू इज़ ए गुड बॉय।

फूफी ने इसका जवाब तो जरूर नहीं दिया, मगर उनका मन वैसा सन्तुष्ट नहीं हुआ। दूसरे दिन मास्टर साहब सबसे मिलकर विदा हुए। जाते-जाते उन्होंने शिवू से कहा—बड़े होकर मुझे भूल तो नहीं जायगा?

शिवू की आंखें भर आयीं। मास्टर साहब बोले—मैं जानता हूँ, तू मुझे

नहीं भूल सकता ! खैर, कभी-कभी मैं आता-जाता रहूँगा। मगर एक बार तू मेरे यहाँ जरूर आना। तेरे आने से मुझे बड़ी खुशी होगी। अच्छा—विदा !

आज शिवू ने जात-पाँत के बन्धन की उपेक्षा कर दी। पाँव छूकर उसने मास्टर साहब को प्रणाम किया। और पाँव छूने देने में आज मास्टर साहब ने भी कोई आपत्ति नहीं की। आकाश की ओर मुँह करके वह बोले—गॉड ब्लेस यू, माइ बॉय। डोन्ट फॉरगेट, लाइफ इज नॉट एन एम्टी ड्रीम। (भगवान तुम्हें खुश रखें, मेरे प्रिय ! यह कभी मत भूलो कि जिन्दगी केवल एक सपना नहीं है।)

सात

दोपहर को फूफी नायब और गुमाश्ते से, मालगुजारी-वसूली के सम्बन्ध में सलाह कर रही थीं।

नायबजी ने कहा—हमारे यहाँ चूंकि सूद का रिवाज नहीं है, इसीसे वसूली में ऐसी ढिलाई होती है। रैयत लोग यह सोचते हैं कि सूद तो देना है नहीं, जितने ज्यादा दिनों तक इन रुपयों का उलट-फेर किया जा सके, उतना ही अच्छा। यही समझिये, कोई हाल-बकाया दे, तो वही दस रुपये; और दो साल बाद भी दे, तो वही दस। इसलिये पहले चुका देने में उन्हें घाटा है। अच्छा हो कि हम भी सूद लिया करें।

फूफी ने कहा—यह आप क्या कहते हैं नायबजी?

सिर खुजलाते हुए उन्होंने कहा—जी हाँ, दोगछी इलाके के कागज-पत्र से जाहिर है कि वहाँ किसी के पास चौदह साल, तो किसी के पास दस साल और किसी के पास बीस साल की मालगुजारी बाकी पड़ गई है। एक आदमी के यहाँ तो छप्पन साल से रुपये झूल ही रहे हैं। यह सब सूद न लगाने से......

फूफी बोलीं—जो कहा सो कहा, फिर कभी ऐसा न कहें। जो काम बाप-दादों ने कभी नहीं किया, वह अब हमसे नहीं हो सकता। मगर हरीश, तुम्हारे इलाके में इतना बकाया कैसे पड़ा है?

हरीश ने कहा—जी, माँजी, जिसके पास छप्पन साल से मालगुजारी

बाकी पड़ी है, उसके यहाँ पावना नहीं के बराबर ही होता है, सिर्फ चार आने सालाना। उसका कहना है, जब कभी जमींदार बाबू के चरण यहाँ पड़ेंगे, मैं पाई-पाई बकाया चुका दूँगा। सदा से यही होता आ रहा है। और, एक अर्सा हो गया कि मालिक वहाँ नहीं पधारे। कहते हैं, नन्हे बाबू के दादाजी—यानी आपके पिताजी वहाँ गये थे।

फूफी केवल 'हूँ' करके रह गयीं। फिर कुछ ठहरकर बोलीं—जैसे भी हो, वसूली होनी चाहिये। उन्हें कचहरी में पकड़वा मँगाओ और वसूल करो। अगर उनके अनाज हो, तो रोक रखो। वे जब तक मालगुजारी के रुपये अदा न कर दें, तब तक न तो अनाज घर ले जा सकें, न बेच सकें। हर मौजे के लिये एक-एक प्यादा और बहाल कर दीजिये नायबजी !

जब गुमाश्ता जाने लगा, तो फूफी ने एक बार फिर कहा—चूंकि मालिक नाबालिग है, इसलिये सख्ती करने में डरो मत। याद रखो, तुमलोगों के मालिक सोये हैं, आड़े वक्त उनका सहारा मिलेगा।

सबके चले जाने पर फूफी सोचने लगीं—अपने इलाकों में शिवू को एक बार क्यों न भेज दिया जाय ? मालिक के जाने-आने से गुमाश्तों को भी बल मिलता है, रैयतों को भी खुशी होती है। बहुत बार वसूली न होने और रैयतों को उभाड़ देने में इन गुमाश्तों की भी कारसाजी होती है। कभी शिवू के स्कूल बन्द हों, तो दो-चार दिन के लिये ऐसा ही किया जाय। फिर दाई को बुलाकर पूछा—नित्तो, शिवू कहाँ है ?

नित्तो बरामदा बुहार रही थी। बोली—नन्हे बाबू कुछ लिख रहे हैं। इतने में बहू, फूफी की गोद में, सटकर बैठ गयी। बोली—वह तो कविता लिखने में लगा है।

भौंहें सिकोड़ कर फूफी बोलीं—मालूम होता है, तुम वहाँ गयी थी ?

बहू ने कहा—उसने बुलाया जो था ! पढ़कर कविता भी सुनायी। बहुत

सारी लिख गया है फूफी ! माँ के ऊपर लिखा है, जानें कितना क्या—पुलकित पारिजात चरणों के—आदि-आदि ।

फूफी ने उत्सुक होकर पूछा—और क्या-क्या लिखा है बिटिया ?

बहू बोली—और न जानें देश-वेश पर बहुत-सारा क्या-क्या लिखा है ।

फूफी ने कहा—यह सब उसकी माँ ने उसके दिमाग में ठूँस दिया है ।

बहू ने चौकन्नी निगाह से चारों ओर देखकर कहा—कल ही तो माँ-बेटे में कितनी बातें हो रही थीं, रैयतों की गरीबी पर, उनके नजराने के रुपये लौटा देने पर । रैयतों को मालगुजारी में एक रुपये की छूट दी जायगी, यह बात क्या आपसे नहीं कही गई है ?

फूफी ने इन बातों का कोई भी उत्तर नहीं दिया । बहू फिर फिस करके हँस पड़ी । बोली—जानती हैं फूफीजी, उसने मेरे नाम पर भी कविता लिखी है, और मुझे लिखा क्या है तो सखी ! —यह कहकर मुँह में कपड़ा देकर वह हँसने लगी । लेकिन वह हँसी दूसरे ही दम सहसा थम गयी । फूफी के चेहरे पर नजर पड़ते ही उसका चेहरा फक हो गया । आगे कुछ कहने की उसे हिम्मत ही नहीं पड़ी, वह दबे पाँवों अपनी नानी के पास भाग गयी ।

नित्तो बोली—नन्हे बाबू, फूफीजी बुला रही हैं ।

शिवनाथ कविता लिखने में व्यस्त था । बोला—'हूँ' ।

थोड़ी देर बाद शिवू बाहर निकला । नित्तो तब भी बरामदे में ही काम कर रही थी । शिवनाथ ने पूछा—कहाँ हैं फूफी ?

दाई एक कपड़ा चुनिया रही थी । बोली—नीचे हैं !

शिवू ने फिर पूछा—और ये गुमाश्ते चले गये ?

नित्तो बोली—जी हाँ ।

शिवनाथ खटाखट जीने से नीचे उतर आया और फूफी के पास जाकर बैठ गया । फूफी न हिलीं-डुलीं, न कुछ बोलीं ; बुत जैसी बैठी ही रहीं ।

शिवनाथ अभी भी कविता के ही मूड में था, उसने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया ! बोला—मुझे एक बात कहनी है फूफी ।

फूफी जरा हिलीं । शिवनाथ ने कहा—इस बार मेरे व्याह की खुशी में रैयतों को एक-एक रुपये की—

फूफी ने वाक्य को पूरा किया—छूट देनी होगी न ?

शिवू ने अचरजभरी आँखों से उनकी ओर देखा ।

फूफी ने कठोर कंठ से कहा—नहीं, ऐसा हर्गिज नहीं होगा ।

उनकी आँखों में विचित्र भाव था । शिवू ने आँखें झुका लीं । फूफी की नजरों में सारा संसार ही मानों असार हो गया है । शिवू ने माँ पर कविता लिखी, बहू पर लिखी और जैसे वह उसके कोई नहीं होतीं ! सारी दुनिया जैसे उनके लिये झूठी हो गयी है ।

घरभर के लोग त्राहि-त्राहि कर उठे हैं । फूफी बेहद कठोर और गम्भीर हो उठी हैं ! वह किसी काम-काज में राय नहीं देतीं और बिना राय लिये यदि कोई काम हो जाय, तो खैर नहीं । मालगुजारी में कोई छूट नहीं दी गयी है, बल्कि शासन-सूत्र में इतना कड़ा तनाव आ गया है कि जरा-सा हुआ नहीं कि झङ्कार निकली ! पूस किस्त के जो रुपये बाकी पड़ गये थे, चैत में वसूल हो गये । इस समय फूफी का ज्यादा समय पूजा-पाठ में जाता । और वही समय सबसे ज्यादा खतरनाक होता । उस वक्त कहीं कोई चूं भी करता, जरा कुछ खटका होता कि मारे क्रोध के वह पागल हो जातीं । फिर तो लानत-मलामत का अन्त नहीं रहता । यह सब देख-सुन कर बहू सूखकर काँटा हो गयी है ।

अभी उस दिन उन्होंने पूजा की थाली पटक दी । बोलीं—ऐसे ही फूल बीने जाते हैं और यही हैं दूबें ! बेल के पत्ते में चक्र हैं !

और इधर शिवनाथ भी समय-समय पर विद्रोह-सा कर उठता है । उस से कुछ ठनता नहीं कि वह निर्जल उपवास कर बैठता । सब में एक शिव-

नाथ की माँ ही ऐसी हैं, जो होंठों में हँसकर सब कुछ सह रही हैं। ज्वाला-मुखी की इन भभकों के आगे उन्होंने अपनी जाह्नवी जैसी सुशीतल छाती फैला दी है, जहाँ आग की लपटें अंगार हो-होकर लुप्त हो जाती हैं !

बात चाहे जो भी हो, फूफी सब पर नाराज हो जातीं। भोजन करने जातीं, तो छोड़ कर उठ जातीं। पान खाते वक्त भी आफत! पान थूक कर बहू को भला-बुरा कहतीं। कहतीं—बहू, तुमने कुछ भी नहीं सीखा। राम-राम ! ऐसे ही पान लगाया जाता है ? अब अगर फिर ऐसा पान लगाओगी तो कल से पान खाना ही छोड़ दूँगी मैं।

इधर एक दूसरी ही आफत आन पड़ी है। जब देखो, बहू भागकर अपनी नानी के घर हाजिर ! पच्छिम ओर की खिड़की होकर तालाब के बाँध से नान्ती का ननिहाल मजे में जाया जा सकता है। किन्तु वह गली गंदगी से भरी रहती है ! फिर भी जब भी घाट जाने का मौका आता, उसी गली होकर बहू चंपत हो जाती।

धीरे-धीरे शिवनाथ की माँ की हँसी का माधुर्य घटने लगा, फूफी के क्रोध का पारा भी !

जेठ के दिन तीखी धूप से सब कुछ जैसे जला जा रहा है, आसमान का नीलापन धुमैला हो उठा है। भोजन के बाद घर के लोग बन्द कमरे में सो गये हैं। इतने में खट से फूफी का कमरा खोलकर बहू बाहर निकल आयी।

पीछे लगी फूफी भी बाहर निकलीं ! यह-वह सभी दरवाजे, सभी खिड़कियाँ वह देख गयीं। उन्हें ताज्जुब हुआ। ठक सी खड़ी रह गयीं। दरवाजे सब के सब भीतर से बन्द थे। कहीं से किसी के बाहर जाने की कोई गुंजाइश नहीं दीख पड़ी।

फूफी चुपके से ऊपर चली गयीं। शिबू के कमरे की खिड़की में एक छेद था। उसमें से उन्होंने भीतर झाँककर देखा तो बहू वहीं थी।

शिवनाथ उसे चुपा रहा था और वह रो-रोकर कहती जा रही थी—मेरी शादी गोबरडांगा के बाबुओं के घर होती, तो यह मुसीबत तो नहीं होती। क्या दिन, क्या रात, फूफी मुझे फटकारती हैं। मेरी नानी भी यही कह रही थीं।

शिवनाथ ने उसकी आँखें पोंछ दीं। ढाढ़स बँधाते हुए कहा—आज मैंने फिर एक कविता लिखी है, और तुम्हीं पर लिखी है—सुनोगी?

बहू के चेहरे पर हँसी खेलने लगी। बोली—हाँ, पढ़ जाओ, कविता बहुत बढ़िया पढ़ते हो तुम!

शिवनाथ पढ़ने लगा—

तुम बचपन की साध, वही ज्यों रूपकथा की राजकुमारी।
अश्रुबिंदु ज्यों मोती झरते, माणिक मानों हँसी तुम्हारी॥

—किसकी हँसी? मेरी? बहू हँसते-हँसते शिवनाथ पर लुढ़क पड़ी। शिवनाथ ने चट उसे चूम लिया। नान्ती होंठ पोंछते-पोंछते बोल उठी—राम-राम! तुम्हारे मुंहसे भात की बू आ रही है। पान क्यों नहीं खाते?

शिवू ने कहा—पान तुमने दिया भी कभी?

बहू ने पूछा—खाओगे? सच!

शिवू ने आग्रह के साथ कहा—लाओ। कौन, कौन हैं?

बरामदे से किसी के पैरों की आहट उठकर सीढ़ियों में लुप्त हो गयी। दोनों एक दूसरे के मुँह की ओर देखते रह गये। नीचे के बरामदे में फूफी ने आवाज दी—नित्तो, अरी, ओ नित्तो।

नान्ती ने अपनी जीभ काटी। वह नीचे भागकर कमरे में सो गयी, जैसे गहरी नींद में हो।

शाम के पहले तक शिवू की छाती धड़कती रही। मगर जैसे-तैसे समय निकल गया। रात वह बैठके में पढ़ रहा था कि नित्तो ने आकर खबर दी, नन्हे बाबू, जल्द चलिये, फूफी के दाँत लग गया है

घबराकर शिवू ने पूछा—ऐं, कैसे ?

—फूफी सो रही थीं। माँ जगाने जो गयीं, तो देखती क्या हैं, कि उनके होश नहीं है। दाँत लग गया है। किसन सिंह कहाँ गया ? नायब बाबू, डाक्टर को बुलवाना है।

नीचे के कमरे में फूफी निश्चेष्ट सी पड़ी थीं, साँस धीमे-धीमे चल रही थी। शिवनाथ की माँ खुद ही उनके मुँह और आँखों पर पानी के छींटे डाल रही थीं। नित्तो पंखा झल रही थी और पास ही उत्सुक शिवनाथ बैठा था। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

डाक्टर ने नब्ज़ टटोला। पूछा—आखिर यकायक ऐसा कैसे हो गया ? और भी कभी ऐसा होता है क्या ?

शिवनाथ की माँ ने कहा—जी नहीं, आज पंद्रह वर्षों से ऐसा कभी नहीं हुआ, हाँ पंद्रह वर्ष पहले जरूर होता था। एक ही दिन, एक ही विस्तर पर इनके पति और पुत्र--दोनों जाते रहे थे, जिससे यह शुरू हुआ था। फिर आज से पंद्रह वर्ष पहले, जब मेरा शिवनाथ हुआ, तब से—

एक लम्बी साँस फेंककर फूफी तनिक हिलीं।

शिवनाथ की माँ ने पुकारा—बहन !

थकी हुई सी आवाज में वह बोलीं—आयी !

आठ

कोई तीन दिन बाद की बात है। फूफी की तबीयत अभी भी खराब ही है। किसी से भी विशेष बोल-चाल नहीं करतीं। खासकर बहू को देख, तो जैसे एँड़ी से चोटी तक जल उठती है।

अपनी कचहरी के बरामदे में शिवनाथ खड़ा था। चार-पाँच पंजाबी बगल के रास्ते से छ-सात घोड़े लिये जा रहे थे। शिवनाथ जल्द-जल्द बाहरी फाटक पर जा खड़ा हुआ।

एक बूढ़े से पंजाबी ने पूछा—क्यों लल्ला, बड़े बाबू हैं?

हँसकर शिवनाथ ने कहा—हैं तो, क्या काम है?

पंजाबी ने कहा—हम बेचने को घोड़े ले आये हैं। बहुत दिन हो गये कि हमसे उन्होंने एक घोड़ा खरीदा था। लगता है, अब वह घोड़ा रहा नहीं। हम नया घोड़ा ले आये हैं—बहुत बढ़िया घोड़ा।

पंजाबी फाटक के अंदर दाखिल हुआ। शिवनाथ भी लौट आया और बरामदे की कुर्सी पर बैठ गया।

उसके पीछे-पीछे घोड़ों को लिये उसके साथी भी फाटक के अंदर खुली जगह में आ गये। बूढ़े ने नायबजी को लंबा सलाम बजाया—सलाम हुजूर, मिजाज तो अच्छे हैं?

नायबजी जरा हँसे। बोले—हाँ, अच्छा है। बहुत दिनों पर दिखाई दिये। पंजाबी ने कहा—जी हुजूर, अर्से के बाद आया हूँ—कोई सात

साल हो गये। बड़े सरकार कहाँ हैं, उनको हमारा सलाम भेजिये—कहला दीजिये कि रमजान शेख आया है। और, वह घोड़ा कहाँ है, जो मैं पिछले दिनों हुजूर को दे गया था ?

नायबजी चुप रह गये। शिवनाथ की नजर घोड़ों पर थी। छः घोड़े थे—एक सुफेद, एक सुफेद और काला मिला-जुला, तीन लाल और एक काला। उस काले घोड़े की चाल का खासा ढंग, गर्दन पर केशर के समान खूबसूरत बाल ; जमीन छू ले, इतनी लम्बी पूँछ ! पर घोड़ा उसे कुछ उठाये-उठाये रखता। बार-बार वह अपनी गर्दन को उठा-गिरा रहा था, बार-बार मिट्टी में पैर ठोंककर हिनहिना उठता, जिससे वह स्थान गूँज-सा रहा था। शिवनाथ के जी में एक बड़ी लालसा सिर उठाने लगी थी कि उस घोड़े की पीठ पर बैठकर कब हवा हो जाय—आह, वह भी क्या आनन्द होगा ! उसे अपने पिता की वह कहानी याद आ गयी। उस समय वे श्यामपुर गये हुए थे—घर से पचीस कोस दूर। अपने पिता की बीमारी का हाल पाकर, महज कई घण्टों में इतनी दूर से राह तै करके घर आ गये थे !

पञ्जाबी की ऊँची आवाज से शिवनाथ का ध्यान टूटा। वह कह रहा था—मेरी बदनसीबी, हमारे हुजूर नहीं रहे !

पता नहीं, कब नायबजी ने धीरे से उसे मालिक की मृत्यु का समाचार कह दिया था।

रहते-रहते शिवनाथ को माँ की बात याद हो आयी। उसने एक लम्बी साँस ली और उठ बैठा। उस बार साइकिल खरीदते समय माँ ने कहा था—बेटे, इस विलास की कोई हद नहीं होती। यह दिन दूना बढ़ता ही चला जायगा और फिर भी कभी सन्तोष नहीं होगा। खैर, साइकिल तो मैं इस बार खरीदे दे रही हूँ, आइन्दे अपनी इच्छा पर आप ही रोक लगाया करो।

लम्बा निश्वास फेंककर पञ्जाबी ने कहा—मैं बाबू के लिये ही यह काला घोड़ा ले आया हूँ। हमारे छोटे हुजूर कहाँ हैं?...वह हैं, वे? मैंने जब देखा था, तब छोटे-से थे। हमारा सलाम लिया जाय हुजूर, और कसूर माफ हो कि पहले मैं आपको पहचान न सका।

शिवनाथ ने रुककर कहा—अच्छा, तुम लोग यहीं खाओ-पीओ। नायबजी, इन लोगों के लिये आटे-दाल का इन्तजाम कर दें।

पञ्जाबी बोला—हुजूर की भी तो उम्र सवारी करने-लायक हो आयी। इस घोड़े को ले ही लीजिये। इसे आपके पिताजी के लिये ही लाया था।

शिवनाथ बोला—नहीं-नहीं।

नायबजी कहने लगे—शेखजी, बाबूजी अभी बच्चे हैं। वे इतना बड़ा घोड़ा लेकर क्या करेंगे? कभी गिर-विर जायँ...

पठान हँस पड़ा, बोला—हाँ छोटे हुजूर, गिर पड़ेंगे आप? तो एक छोटा...

तब तक शिवनाथ ने हुक्म दिया—काले घोड़े को ले आओ।

पठान चुप हो गया। शिवनाथ बगीचे के चौंतरे पर खड़ा हो गया। हाथ का इशारा करके बोला—घोड़े को यहाँ ले आओ।

हँसकर पठान ने नायबजी से कहा—जनाब, शेर का बच्चा आखिर शेर ही होता है! फिर उधर मुड़कर बोला—काले घोड़े को हुजूर की खिदमत में हाजिर करो।

एक लम्बे-तगड़े नौजवान ने घोड़े को वहाँ पहुँचाया। पठान बोला—देखिये हुजूर, यह है मेरा पोता। महज पन्द्रह की उम्र है, सवार होकर पञ्जाब से इतनी दूर यहाँ आ गया!

—कहकर पठान ने घोड़े की पीठ पर रकाब को सम्हाला, लगाम ठीक कर दी और गोद में लेकर शिवनाथ को सवार कराना चाहा। शिवनाथ पीछे हटकर बोला—चढ़ाने की जरूरत नहीं, मैं खुद ही चढ़ लूँगा। और चौंतरे से एक ही छलाँग में वह घोड़े की पीठ पर जा रहा।

ताली पीटकर पठान बोला—शाबाश हुजूर, शाबाश !

शिवनाथ बाग को खींच रहा था। पठान बोला—मिहरबानी करके जरा रुक जाइये हुजूर ! और अपने पोते से बोला—जरा घुँघरू तो ले आ।

घोड़े के घुँघरू बाँधकर कहा—रहमत फूँक तो बँसरी।

वंशी की धुन जो निकली, घोड़ा ताल-ताल पर नाचने लगा—घुँघरू कायदे से झन-झन बजने लगे।

नायबजी को शुबहा हो रहा था, पर अब तक बात करने का मौका नहीं मिला। जरा देर तो यह देखते रहे और झटपट शिवनाथ की माँ के पास जा पहुँचे। फूफी तो कई दिनों से खाट पर पड़ी थीं। ऐसे वक्त सिवाय माँ के शिवनाथ को दूसरा कोई रोक ही नहीं सकता।

सामने ही नित्तो मिल गयी। नायबजी बोले—नित्तो, माँ कहाँ हैं। उन्हें जरा जल्द बुला दो—बड़ी सख्त जरूरत है।

माँ बगलके भाण्डार में ही थीं। आप ही बाहर निकल आयीं—बात क्या है सिंहजी, ऐसे वक्त आये ?

बड़ी आफत आन पड़ी है, माँजी ! वह घोड़ेवाला पठान जो आता था न ? वही आया है। देखकर नन्हे बाबू तो बेताब हो उठे हैं। एक बहुत बड़ा काला घोड़ा खरीदने पर आमादा हो गये हैं, कोई दो-ढाई सौ रुपये मांग रहे हैं। और घोड़ा ऐसा है कि कभी उससे गिर-विर पड़ें तो खैरियत नहीं।

माँ ने चकित होकर पूछा—शिवनाथ घोड़ा खरीद रहा है ?

जी, माँजी ! रोकने का मौका नहीं मिला। बहुत बड़ा काला घोड़ा—

माँ ने पुकारा—नित्तो ?

जी ?

जरा शिवनाथ को बुला। कह दें, मैं उसी के लिये खड़ी हूँ, बहुत जरूरी काम है।

दाई चली गयी। नायबजी बोले—मैं खिसक पड़ूँ माँजी, मेरा रहना अच्छा नहीं होगा।

माँ कुछ नहीं बोलीं। उनका शुभ्र मुखड़ा रँग उठा। नायबजी चले गये। कुछ ही क्षण बाद अन्दर आकर शिवनाथ ने पूछा—क्या है माँ?

माँ ने गौर किया—शिवनाथ का श्याम मुखड़ा तमतमा उठा है।

माँ ने कहा—मैंने सुना, तुम शायद कोई घोड़ा खरीद रहे हो।

शिवनाथ ने बिना हिचकिचाहट के कहा—हाँ।

माँ ने उसी तरह कहा—नहीं, घोड़ा नहीं खरीदना होगा।

सिर झुकाये वह खड़ा रहा, पर माँ की आज्ञा मानने का कोई चिह्न उसमें नहीं दिया। कुछ क्षण माँ भी चुप रहीं। फिर बोलीं—जाओ, नायबजी से कह दो, पाँच रुपये देकर उन्हें विदा कर दें। यह दो-ढाई सौ रुपये का घोड़ा खरीदने की औकात अभी हमारी नहीं है।

शिवनाथ जाने के लिये मुड़ा। फिर न जाने क्या सोचकर माँ ने पुकारा—शिवनाथ, सुन जा बेटा!

शिवू वैसे ही लौट पड़ा। उसके माथे पर हाथ फेरते हुए माँ ने स्नेह से कहा—बेटा, मन की उमंग को भी कहीं ऐसा बेलगाम छोड़ा जाता है! याद रखो, भोग से प्यास नहीं जाती, बल्कि और बढ़ती ही है। और ज्यादा, और ज्यादा की कामना से बढ़कर अशान्ति इस संसार में और नहीं। जरा सोच देखो, तुम ढाई सौ रुपये का घोड़ा खरीदने चले हो और इस संसार में न जाने कितने ऐसे लोग हैं, जिन्हें खाने को ढाई पैसे भी नसीब नहीं। जाओ, पठान से कह दो, माँ मना करती हैं।

शिवनाथ ने आँखें पोंछ लीं। बलपूर्वक होंठोंपर हँसी की रेखा लाते हुए कहा—वैसा ही कह देता हूँ माँ!

किन्तु पठान को शिवनाथ से खुद यह कहते नहीं बना। किसी तरह

की लज्जा हो रही थी। नायबजी से कहकर वह अपने कमरे में चला गया। उसकी आँखों से आँसू की बूँदें टपक रही थीं।

बाहर नायब धीमे-धीमे क्या कह रहे थे, वह सुन नहीं पा रहा था। हाँ, पठान की ऊँची आवाज उसके कानों में पहुँची—सलाम दीवानजी, तो अब चल दिये हम।

—'घोड़े को लौटाकर मत ले जाओ। क्या कीमत है?'

शिवू जल्द-जल्द बाहर निकल आया। देखा, बरामदे से खड़ी-खड़ी फूफी कीमत पूछ रही हैं। उनकी रोग से धँसी हुई आँखों में एक अनोखी दीप्ति दमक रही है।

पठान पहचान गया। उस तेजोमयी मूर्त्ति को पहचानने में भूल हो भी नहीं सकती। जमीन तक झुककर सलाम बजाकर उसने कहा—सवा दो सौ रुपये माँजी।

नोटों का एक पुलिन्दा नायबजी के हाथों पर रखकर बोलीं—ये ढाई सौ रुपये हैं। मोल-तोल करके जो लगे, सो दे दीजिये।

शिवनाथ पास ही खड़ा था। उससे बोलीं—जरा सवार तो हो शिवू, मैं देखूँ तेरा चढ़ना।

चौंतरे पर से उछलकर शिवू घोड़े पर बैठ गया। लगाम थामकर एक पंजाबी ने घोड़े को राह धरा दिया। फिर तो घोड़ा गर्दन टेढ़ी कर पूँछ उठा रूरपट चाल से देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गया।

फूफी ने कहा—किसन सिंह, अस्तबल साफ करा दो। और अपलक आँखों से राह की ओर देखने लगीं। कोई बीस मिनट बाद शिवू लौटा। धूले से लथपथ शरीर, माथे के पीछे से पीठ पर लोहू टपक रहा है।

फूफी ने पूछा—कहीं गिर पड़ा था बेटा?

घोड़े से उतरते हुए शिवनाथ ने कहा—चोट नहीं आयी है फूफी! बस, सिर के पीछे जरा-सा कट गया है।

पठान बोला—लेकिन घोड़ा तो शैतान नहीं है माँजी।

शिवनाथ बोला—नहीं-नहीं, शैतान नहीं है। रास्ते में था एक गड्ढा, घोड़ा उसे फाँद गया। मैं ठीक अन्दाज नहीं कर सका, पीठ से अलग होकर लुढ़क गया। बालू थी, नहीं तो चोट आती। एक पत्थर से थोड़ा कट गया है।

नायबजी ने फूफी के सामने, खर्च पर निशान लगाने के लिये, बही खोल दी--

फूफी बोलीं—यह आपकी जमींदारी के नहीं, मेरे रुपये हैं।

शिवनाथ नन्हे बच्चे की तरह फूफी की ओर देख रहा था। बहुत दिनों के बाद, आज फूफी ने उसे गहरे आवेग से अपनी छाती से लगा लिया और चोट को सहलाने लगी।

शिवनाथ उनकी बाहुओं के नीचे हाँफ उठा। बोला—फूफी !

फूफी की आँखें बरस रही थीं !

नौ

शिवू को साथ लेकर फूफी हँसती हुई अन्दर पहुँचीं। आज कई दिनों के बाद उनके चेहरे पर हँसी देखकर सब के जी में जी आया।

उन्होंने कहा—देखो बहू, शिवू पर डाँट न पड़े! घोड़ा उसे मैंने खरीद दिया है। वह बेचारा तो वापस ही भेज रहा था।

माँ ने कहा—तुम्हारे किये पर मैं कब बोलती हूँ? शिवू तो तुम्हारा है; मगर जानती हो, मैं मना क्यों करती हूँ?

फूफी बोलीं—वह मैं खूब समझती हूँ। यह भी जानती हूँ कि इन बातों में तुम्हारी जानकारी मुझ से कहीं ज्यादा है। जब तक शिवू का पढ़ना जारी है, तब तक उसे घोड़े से कोई मतलब न होगा। हाँ, रोज एक बार सवारी करेगा, बस। क्यों?

अन्तिम प्रश्न शिवनाथ से किया गया। उसने भी भले लड़के की तरह गर्दन हिलाकर कहा—जी हाँ।

रतन बोल उठी—अभी की कुछ न कहिये। जो भी कहियेगा, वे सब में 'हाँ' करेंगे। घोड़ा मिल गया है, इस समय तो शिवू जैसा सुबोध लड़का देशभर में ढूँढ़े भी नहीं मिल सकता।

इस ढंग से उसने यह बात कही कि घरभर के लोग हँस पड़े। और तो और, शिवनाथ की माँ भी हँसने लगीं।

ऐसे ही वक्त पुज़ारी अक्षय मुखर्जी आ पहुँचे। बोले-अरे, मालकिनीजी कहाँ गयीं? क्या बात है कि कल से पूजा के बर्तन ही नहीं मले गये हैं?

अक्षय इसी गाँव के रहनेवाले हैं, गाँव के रिश्ते से नान्ती के दादा होते हैं, सो वे नान्ती को मालकिनी ही कहा करते हैं। इससे नान्ती मारे गुस्से के जल-भुन जाती है, उन्हें मजा आता है।

कहना भूल ही गया था कि उस दिन से बहू पर कुछ नयी जिम्मेदारियाँ दी गयी हैं, जिनमें से एक यह भी है—पूजा के बर्तन मलना।

आज हँसने में नित्तो को कोई डर नहीं था। बोली—फूफी जी, बहू तो खिड़कीवाली गली से रफूचक्कर हो गयी। मैंने भाभी, ओ भाभी कह कर बहुत पुकारा और वह यह ले, वह ले, पार हो गयी।

फूफी ने कहा—नित्तो, जाकर बुला ला बहू को। और फिर शिवनाथ की माँ से कहा—बहू ने तो अच्छी मुसीबत में डाला है!

उनके बजाय जवाब अक्षय ने दिया। यह उसका स्वभाव है, कुछ बोले बिना उससे रहा नहीं जाता। बोला—मुसीबत तो है, हुँः।

रतन ने अक्षय को खिसक जाने का इशारा किया।

नित्तो लौट आयी—अकेली। रूखाई के साथ फूफी ने पूछा—और बहू?

नित्तो ने कहा—वहाँ से आदमी आ रहा है, वही सब सुनायेगा।

फूफी ने कहा—उनके आदमी आ रहे हैं, तो अपनी कहेंगे। मैं तो तुम से पूछ रही हूँ, तुम्हारा क्या कहना है।

नित्तो बोली—भाभी नहीं आयीं।

—नहीं आयीं?

—जी नहीं।

—क्या कहा उसने?

—यह उनका ही आदमी……

'नित्तो !'—फूफी की आवाज की प्रतिध्वनि से सारा घर गूँज उठा। नित्तो चौंक उठी।

उसने उड़े हुए चेहरे से कहा—अब भाभी वहीं रहेंगी, सयानी हो जाने पर······

'हुँ' और क्या बातें हुईं ?

—पूजा के बर्तन मलते-मलते उनके हाथ छिल गये हैं।

—और क्या कहा ?

- और कहा कि फूफी जिस-तरह डाँटती-फटकारती हैं, वह क्या एक अबोध बच्ची से सहा जा सकता है।

नान्ती के ननिहाल की एक प्रौढ़ा स्त्री आकर बोली—नान्ती की नानीजी ने कहला भेजा है कि वह अब फिलहाल वहीं रहेगी। जरा और बड़ी हो जाय, तो आयेगी। इसीलिये कहा है कि उसके बक्स और सामान भिजवा दें।

फूफी कुछ कहने जा रही थीं, पर अपने को उन्होंने रोक लिया। बोलीं—वह शिवू की माँ बैठी हैं, उनसे कहो।

फूफी उठकर वहाँ से चली गयीं। शिवनाथ की माँ तक को कहने की नौबत नहीं आयी, तब तक खुद शिवू ने ही एक घटना खड़ी कर दी। उसने नान्ती के बक्स और सामान अपने से लाकर बरामदे में डाल दिये। केवल इतना ही नहीं, दहेज की घड़ी, चैन, अँगूठी, बटन, सोने की कलम, चाँदी की दावात—जितना कुछ था, सब को फेंककर कहा—ले जाओ सब।

जो औरत आयी थी, वह और वही क्यों, घर-पड़ोस के सभी लोग इस घटना से दंग रह गये। शिवनाथ की माँ की तो बोलती बन्द थी।

शिवनाथ ने कहा—मेरी फूफी की बात सहकर जो यहाँ नहीं रह सकती, उसका गुजारा मेरे घर में हर्गिज नहीं हो सकता। आप ले जाइये यह सब।

बाहरी दरवाजे से आवाज आयी—गौर दास को भेज रही हूँ, सब कुछ लिवा लाओ,—यह आवाज नान्ती की नानी की थी।

सहसा एक अप्रत्याशित घटना घट गयी। उस दिन सारा घर कैसा तो भारी-भारी-सा लगता रहा। शाम को फूफी कहने लगीं—अपने शिवू की हम फिर से शादी करेंगी।

शिवू की माँ हँसकर बोलीं—यह मुझ से क्यों कहती हो बहन, शिवू तुम्हारा है, तुम जानो। मगर यह जरा और बड़ा हो ले, कम से कम मैट्रिक पास तो कर ले।

जरा देर चुप रहकर फूफी फिर बोलीं—लेकिन नहीं, ऐसा नहीं होगा, वह चाहे जो करे, मगर है तो मेरे शिवू की बहू ही।

शिवनाथ की माँ कुछ नहीं बोलीं, चुपचाप हँसती रहीं।

फिर कुछ ठहरकर फूफी बोलीं—लगता है, गलती मेरी ही है। माँ ने कहा—नहीं-नहीं।

फूफी बोलीं—शायद शिवू को भी चोट लगी है। इसीसे मुझ पर क्रोध करके उसने···

माँ ने कहा—हर्गिज नहीं, शिवू तुम्हें गलत नहीं समझ सकता, तुम भी उसे गलत मत समझो।

फूफी बोलीं—बहू के बिना घर जैसे खाने को दौड़ रहा है।

दस

घटना तो बड़ी ही मामूली-सी घटी ; लेकिन वैशाख में आकाश पर तैरता हुआ मेघ का एक छोटा-सा टुकड़ा जैसे देखते-ही देखते फैलकर भयङ्कर तूफान ले आता है, कुछ ऐसा ही हुआ। एक ओर फूफी, दूसरी ओर नान्ती की नानी। फूफी के क्रोध का केन्द्र एकमात्र बहू थी। वह कहतीं, औरों को कुछ कहने का मेरा हक भी क्या है! और लोगों ने मेरा बिगाड़ा भी क्या है? इन सारे अनर्थों की जड़ तो बस बहू है।

और नान्ती की नानी का कहना था—वह घर तो मेरी नान्ती का है। यदि नान्ती की सास कुछ कहतीं, तो सहने की बात थी, लेकिन यह फूफी कहनेवाली कौन होती हैं?

शिवनाथ की माँने उनकी इस बात का दृढ़ता से बार-बार विरोध किया—नः, घर की मालकिन तो दरअसल ननदजी हैं। मैंने दस महीने, दस दिन शिवनाथ को गर्भ में धारण भर किया है, मगर पूरे पन्द्रह वर्षों तक शिवनाथ उन्हीं की छाती से लगकर पला है। जो वैसी बात कहते हैं, वे भूल करते हैं।

फूफी ने पुकारा—शिवनाथ!

शिवनाथ बगल ही में खड़ा था। उसने अपना बड़प्पन-सा महसूस किया, हृदय की तह से बोल उठा—मैं तुम्हारी आज्ञा को अपने पिता की ही आज्ञा मानता हूँ, फूफी!

फूफी लहमे में पिघलकर पानी-पानी हो गयीं। माँ स्नेहभरी आँखों से पुत्र को देखती रह गयीं—उनकी आँखें भर-भर आने लगीं। फूफी ने शिवू को अपनी छाती से लगा लिया और बोलीं—मालूम है तुम्हें, मेरे भैया क्या कहा करते थे? कहते थे बहन और जनेऊ में कोई फर्क नहीं।

उनके सन्तोष की सीमा न रही। हँसते ही दिन जा रहे थे। तीन-चार दिन बाद फूफी ने कहा—बहू, मैं बहूरानी को ले आऊँगी।

शिवनाथ उनके पास ही था। बोला—नहीं फूफी, यह हर्गिज नहीं हो सकता। जो लोग ले गये हैं, वही पहुँचा भी जायँगे।

शिवनाथ की माँ बोलीं—शिवू का कहना दुरुस्त है बहन।

फूफी चुप रह गयीं।

इतने में दाई ने कहा—एक बहुगुना गुड़ निकाल चुकी, और निकालूँ? फूफी ठठाकर हँस पड़ीं। उस हँसी में नित्तो की अधूरी बात दब गयी। फूफी बोलीं—मुँहजली की सूरत तो देखो।

नित्तो के चेहरे पर कई जगह गुड़ लगकर अजीब दिखाई दे रहा था। माँ और शिवनाथ मुस्कुरा कर ही रह गये।

बाहर से नायबजी ने नित्तो को आवाज दी। फूफी ने कहा—कमरे में बैठने को कोई आसन डाल दे मोती की माँ। आइये, नायबजी! और फूफी वहाँ से उठ गयीं।

नायबजी बोले—रैयत लोग धान के लिये आये हैं।

फूफी ने पूछा—धान के लिये?

—जी हाँ! इस साल ज्यादातर लोगों के घर खाने को कुछ नहीं है। पिछले साल उपज नहीं हुई।

—हूँ। और जितनी उपज हुई थी, सब जमींदार ही डकार गये!

इसके बाद उन्होंने खिड़की की राह आकाश को देखकर कहा—और

इस बार तो अनावृष्टि के आसार हैं। सावन के पन्द्रह दिन गुज़र गये, बारिश अभी तक नहीं उतरी।

नायबजी बोले—मैं भी वही सोच रहा था। सिर पर इतना बड़ा भार, इतनी बड़ी गिरस्ती का खर्च। धान भी हाथ से जाता रहे, यह अच्छा नहीं होगा।

—लेकिन ऐसे दुर्दिन में रैयतों के काम न आना भी अच्छा नहीं होगा, पाप लगेगा। कुछ सोचकर बोलीं—सुनिये, धान की एक मोरी तो गिरस्ती के लिये रख छोड़िये। बाकी दो तोड़कर रैयतों में बाँट दीजिये।

नायबजी बोले—सरकारी कर की किश्त है आश्विन में और··· फूफी ने कहा—नायबजी, सिर पर भगवान हैं। हाँ रे रतन, एक बार और भात पकाना होगा, बहुत से रैयत लोग आ गये हैं।

नायबजी जा रहे थे। फूफी ने कहा—हाँ, एक बात सुन लीजिये। उस टोले के चटर्जी बाबू के घर व्याह है। उन्हें आधा मन मछली और एक गाड़ी लकड़ी भिजवानी है। गुमाश्ते से कह दीजिये।

नायबजी चले गये। जलपान करके शिवनाथ फूफी के पास आकर बोला—मुझे थोड़ा-सा धान चाहिये फूफी।

—धान? धान तू क्या करेगा भला?

शिवनाथ बोला—हमलोग एक दरिद्र-भाण्डार खोलेंगे। सबसे थोड़ा-थोड़ा अनाज माँगेंगे—

फूफी ने अचरज से पूछा—माँग कर दरिद्र-भाण्डार करोगे?

—हाँ, सभी से माँगकर गरीबों के लिये जमा करेंगे।

कूट ढङ्ग से भाभी की ओर देखकर फूफी बोलीं—यह पाठ तुम्हारा पढ़ाया हुआ है बहू, क्यों?

हँसकर उन्होंने जवाब दिया—मगर यह पाठ कुछ बुरा तो नहीं है बहन।

फूफी ने कहा—बुरा नहीं, तो इस घर के लड़कों के लिये ऐसी शिक्षा अच्छी भी नहीं है।

उसके बाद फूफी ने शिवनाथ से कहा—शिवू, धान मैं तुम्हें देती हूँ। अपनी कचहरी में बैठ जाओ और अपने हाथों दान करो।

शिवनाथ बोला—लेकिन, अकेले हम कितनों के दुःख दूर कर सकेंगे फूफी? सुनो, तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ। एक खेतिहर के सात बेटे थे। सातों भाइयों में जरा भी मेल नहीं था। एक दिन उनके पिता बहुत-सी पतली लकड़ियाँ बीन लाये……

फूफी ने कहा—रहने दो, मुझे तुम्हारी यह कहानी मालूम है। लेकिन, हम जो हैं, वह कुछ ऐसे-वैसे पौधों के झाड़ नहीं हैं, हमारा वंश एक विशाल वृक्ष-सा है। जब तक यह खड़ा है, तब तक अकेले ही बहुतों को छिपा लेगा, अपने डाल-पत्तों में सैकड़ों पंछियों को शरण देगा।

शिवनाथ बोला—फूफी, अभिमान करना अच्छा नहीं होता।

—मगर मैं किसी गैर के पास तो दून की नहीं हाँक रही बेटा, महज एक सबक दे रही हूँ तुम्हें। हमारे वंश में कभी किसी ने खुलकर दान नहीं दिया। बाबूजी कहा करते थे, यश की इच्छा करके दान करने से फल नहीं होता। इसलिये हमारे यहाँ से मजदूर जरूरतमन्द के घर ढोकर अन्न दे आते थे और उनसे कह देते थे—तुम्हारे फलाँ सम्बन्धी ने भेजा है।

शिवनाथ चुप रहा।

फूफी बोलीं—खैर, धान मैं दिला देती हूँ। शर्त यह कि तुम्हें इन बातों में नहीं पड़ना होगा। दूसरे लोग जो चाहें, करें।

शिवनाथ बोला—लोगों ने मुझे ही जो मन्त्री बना दिया है।

माँ ने कहा— बना दिया तो क्या बिगड़ता है, कोई दूसरा बन जायगा। इस साल तुम्हारी परीक्षा है, पढ़ाई का बड़ा नुकसान होगा।

शिवनाथ को मानों यह बात रुचिकर नहीं हुई। वह परकाल की नोंक से दीवाल पर कोई बेसिर-पैर का चित्र खींचने लगा?

फूफी बोल उठीं—लोहे से निशान नहीं लगाना चाहिये, उससे कर्ज होता है।

नायबजी दूरदर्शी आदमी हैं। आखिरकार उनका कहना अक्षरशः सत्य निकला। आश्विन की किश्त के रुपये तो किसी कदर जुट गये, कार्तिकवाले रुपये नहीं जमा हो सके। पिछले वर्ष का मारा पड़ा, इस साल ज्यादातर खेत बाँझ और ऊसर-से ही पड़े रह गये। घर में जो धान था, वह भी रैयतों को बाँट दिया गया। फूफी गहरी चिन्ता में पड़ गयीं। उनके कपाल पर की रेखायें स्पष्ट दिखायी देने लगीं।

नायबजी बोले—कर्ज लेने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

शिवनाथ की माँ ने कहा—मेरे गहने बेचकर रुपयों का प्रबन्ध कर लीजिये।

फूफी ने तिरस्कार के स्वर में कहा—छिः बहू, मेरे सामने तुमने यह बात कही? तुम मेरे बड़े भाई की स्त्री, मेरे घर की लच्छमी हो। भगवान ने तुम्हें आभरणहीन बनाया, उसका तो कोई प्रतिकार मेरे हाथ नहीं। लेकिन तुम्हारे गहने मैं बेचूँ? छिः।

माँ ने हँसकर कहा—यह महज मिथ्या अपमान-बोध है बहन। कर्ज लेने से तो यह उपाय कहीं उत्तम है। कभी तुमने भी तो अपने गहने बेचकर आड़े वक्त में भाई की मदद की थी।

हाँ, की थी। मगर हमारी और तुम्हारी समता भी क्या! ईश्वर करे, मेरी बात का मूल्य कभी जाँचना न पड़े, नहीं तो यकीन मानो, मेरी बात का मोल है। खैर, सिंहजी, आप कर्ज का ठिकाना कीजिये। योगीन्द्र बाबू वकील को खत लिख दीजिये।

नायबजी बोले—उनका विवाह के वक्त का कुछ रह गया है और सूद की दर भी बड़ी कड़ी है। मेरा ख्याल था, बाबू के ममिया ससुर······

फूफी ने तीखी निगाह से नायब की ओर देखकर कहा—मैंने जो कहा, वही कीजिये। योगीन्द्र बाबू को पत्र दीजिये।

नायबजी बोले—एक बार बाबू से पूछ···

माँ ने कहा—नहीं।

नायबजी चले गये!

दोमंजिले पर शिवनाथ खाट पर बैठे 'टाम काका की कुटिया' पढ़ रहा था। यह पुस्तक उसे स्कूल से पुरस्कार में मिली थी। इस बीच में कभी पढ़ने की फुर्सत नहीं मिली। पूजा की छुट्टी में एक बार उसने पढ़ना शुरू किया था! पहली बार में पूरी तरह समझ नहीं सका। एक बार में उस कहानी से तृप्ति भी नहीं हुई। सो उसने दुबारे पढ़ना शुरू किया था।

अपने जीवन में पहला उपन्यास उसने 'आनन्दमठ' पढ़ा था। पढ़ा क्या था, सुना था कहिये। माँ ने पढ़कर उसे सुनाया था। फूफी उस दिन घर नहीं थीं, शायद कोई त्योहार था और वे गंगा नहाने गयी थीं। माँ के पास शिवनाथ को नींद नहीं आ रही थी।

माँ ने हँसकर पूछा—क्यों बेटा, नींद नहीं आती?

शिवनाथ ने कहा था—नहीं।

माँ बोलीं—तो एक कहानी कहती हूँ, सुन।

शिवनाथ ने जैसे ऊबकर कहा था—अब 'वह एक था राजा' भला नहीं लगता मुझे।

माँ आल्मारी से एक किताब निकाल लायी—तो एक किताब ही पढ़ती हूँ। यह बङ्किम बाबू की पुस्तक है—'आनन्दमठ'!

रात लगभग निकल गयी, तब किताब खत्म करके माँ ने पूछा था—कैसी लगी?

शिवू की आँखें सजल हो आयी थीं। उन दिनों वह नवें दर्जे का छात्र था। फिर वह एक-एककर बङ्किम बाबू की सभी पुस्तकें पढ़ गया।

रवीन्द्रनाथ की भी कुछ रचनायें पढ़ीं। लेकिन 'आनन्दमठ' उसके जीवन का आनन्द बन गया। आज, इतने दिनों के बाद 'टाम काका की कुटिया' पढ़कर उसे वैसा ही आनन्द मिला है।

इतने में कहीं सीटी बज उठी। चौंककर शिवनाथ ने चारों ओर देखा, कहीं कोई नहीं। सीटी फिर बजी। शिवनाथ ने फिर चारों ओर देखा। सीटी फिर बज उठी। किन्तु इस बार शिवनाथ की नजर रामकिंकर बाबू के आँगन तक गयी। नान्ती ही सीटी फूँककर शिवनाथ का ध्यान खींचने की चेष्टा कर रही थी। वह खुली खिड़की पर खड़ी-खड़ी हँस रही थी।

शिवनाथ को भी हँसी आ गयी। मगर तुरत ही गम्भीर होकर उसने खिड़की बन्द कर दी।

शिवू!—फूफी अन्दर आयीं।

खिड़की बन्द करके शिवनाथ खाट तक लौट नहीं पाया था। फूफी ने कहा—आखिर खिड़की क्यों बन्द कर दी? घर में प्रकाश आने दो।

शिवनाथ अस्त-व्यस्त-सा बोला—नहीं, बन्द ही रहे।

फूफी ने कहा—बस, तुझ में यही तो एक दोष है, मैं जो भी कहूँगी, तू नकार देगा—

वह खुद झरोखा खोलने चली गयीं। खोलने पर देखा, बहू खिड़की पर खड़ी है। पूछा—क्यों, वह बहू ही खड़ी है न?

शिवू ने कुछ नहीं कहा।

फूफी ने कहा—इसीसे बन्द कर दिया था, क्यों?

शिवनाथ ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

तबतक बहू भाग गयी। फूफी ने कहा—हाय-हाय, कैसी दशा हो गयी है बहूरानी की? सर के बाल उड़े जा रहे हैं, कपड़े गन्दे! कौन देखता है और जतन भी कौन करता है! नानी हैं बूढ़ी, खुद लाचार! उन्हीं की कौन करे! बस, केवल झगड़ सकती हैं।

शिवनाथ से क्या तो वह कहने आयी थीं, नहीं कह सकीं। नीचे जाते-जाते ही पुकार मचायी—नित्तो, अरी ओ नित्तो? जानती हो बहू, कहाँ गयी मुई।

नित्तो उधर से कहती जा रही थी—जी, आयी।

नित्तो आयी। फूफी ने कहा—सुन, तू ठाकुरवाड़ी के दरवाजे पर चुप बैठी रह। जब बहू उधर से गुजरे, तो मुझे बुला लेना।

और कोई दो ही घण्टे में बहू पकड़ में आ गयी। बेचारी जा रही थी खेलने। नित्तो तो इसी ताक में बैठी थी, फूफी को बुला लिया। जाते ही फूफी ने कहा—बहू, ठहरो।

नान्ती के दोनों पाँव जैसे जमीन में गड़ गये। उसके हाथ धरकर फूफी घर लिवा आयीं। वह मारे डर के काँप रही थी।

शिवनाथ की माँ, दालान में, सिलाई में लगी थी। फूफी ने बहू को उनके पास बिठा दिया। बोलीं—जरा सर की सूरत देखो, कपड़ों का क्या हाल है!

बहू टुकुर-टुकुर ताकती रह गयी। फूफी ने कहा--जरा इसके बाल सँवार दो और न हो तो अपनी ही एक साड़ी पिन्हा दो।

फूफी इतना कहकर चली गयीं।

उसके केश बाँधते हुए माँ ने कहा – देखो बेटी, तुम एक हिन्दू-परिवार की कन्या हो, तुम्हें अपने सास-ससुर को माँ-बाप के समान ही देखना चाहिये।

नान्ती में यह एक दोष था, वह उपदेश नहीं सुन सकती थी किसी का, उपदेश चाहे कड़ाई से दिया जाय या मीठे-मीठे। मगर आज तो कोई चारा ही नहीं था! पीठ पीछे बैठी थीं सास, सास के हाथों बालों का गुच्छा। निदान उसने गर्दन हिलाकर पालतू चिड़िये के समान कहा—हूँ।

शिवनाथ की माँ बोलीं—अरी थिर तो बैठो, इतनी हिलती-डुलती क्यों

हो ? माँग ही टेढ़ी हुई जा रही है ! अच्छा, सावित्री की कहानी तुम जानती हो ?

नान्ती ने कहा—जानती हूँ । लेकिन आप कहिये न । कहानी मुझे बहुत पसन्द आती है ।

सावित्री की कहानी शुरू और खत्म की गयी । बाल भी बँध गया । ढाका की एक साड़ी निकाल सास ने उसे पहनायी, मुँह पोंछकर सिन्दूर की बिन्दी लगा दी ।

कुछ क्षण के बाद फूफी लौट आयीं । इधर-उधर देखकर उन्होंने पूछा—-बहूरानी चली गयी ?

रतन बोली—-शायद । यहीं तो थी, पर अब दिखती नहीं ।

और इस बीच बहू पानवाले घर में चुपके-से घुसकर पान चुरा रही थी । फूफी की आवाज आते ही झट से दो बीड़े तो उसने दोनों गालों में दबा लिये, गाँठ में दो बीड़े बाँध भी लिये और ऊपर शिवनाथ के कमरे में जाकर चबाने लगी ।

पता नहीं सावित्री की कहानी सुनकर ऐसा हुआ कि ख्याल-वश, नान्ती ने सोचा—शिवनाथ के कमरे को बुहार देना चाहिये । उसे मालूम था कि झाड़ू ऊपर ही रहता है, सो निकाल कर उसने झाड़ू लगाना शुरू कर दिया । झाड़ू देने के बाद बिछावन और मेज को सँवार दिया । फिर एक बार चारों ओर देखा । देखा कि दीवाल पर टँगी तस्वीरों पर धूल जम गयी है । एक कुर्सी पर से उसने पोंछने की कोशिश की, पर हाथ नहीं पहुँचा । कोशिश करके थक गयी । बहुत दिमाग लड़ाने के बाद एक तरकीब सूझी । अरगनी से एक चादर उतारी । उसे लपेटकर तस्वीर पर फेंका । चादर फैलकर धूल लेती आयी । इस तरह गंगावतरणवाली तस्वीर पुँछ गयी । अहल्या उद्धारवाली तो साफ ही थी । शिवाजीवाली तस्वीर पर यह प्रयोग चलाया कि चादर के साथ-साथ तस्वीर भी नीचे आ रही । झन्‌झनाहट हुई ।

नित्तो ऊपर ही कोई काम कर रही थी। आवाज सुनकर दौड़ी, आयी। कमरे में जो गयी और देखा, तो चिल्ला उठी—दौड़ो-दौड़ो, चाची जख्मी हो गयी हैं, खून की गंगा बह रही है, दौड़ो।

नान्ती काठ की मारी-सी खड़ी थी। फूफी ऊपर आ पहुँचीं, अवाक् रह गयीं। नान्ती का आँचल खून से रंग गया था। शिवनाथ की माँ ने नान्ती को हिलाकर पूछा—बेटी, किस जगह कटा है कि इतना लोहू···

नान्ती काँप रही थी। बोली—यह लोहू नहीं, पान की पीक है।

चार-चार बीड़े उसने ठूँस लिये थे। उसी की लार टपककर कपड़ा रंग गया था। शिवनाथ की माँ बोली—खैर, लोहू नहीं है।

फूफी अपने ही कानों बहू की बात सुन चुकीं। कठोर स्वर में पूछा—यह तस्वीर कैसे टूट गयी?

नान्ती डर से चुप रह गयी। फूफी ने फिर पूछा—माथे में इतना जाला कहाँ से लग गया और मुँह-हाथ में इतनी धूल ही कहाँ लगी?

अब की डरते-डरते उसने कहा—झाड़ू लगा रही थी···

बहू की बात खत्म होते-न-होते फूफी बोल उठीं—यह पार्वती की तपस्या चल रही थी, पतिव्रता की स्वामि-सेवा का स्वाँग हो रहा था।

दिन शेष का अँधियारा, बाहर धरती की छाती पर, खड़ा था छायामूर्त्ति की तरह और कमरे में जैसे वह रूप ले रहा था। धीरे-धीरे कमरा भी रात की तरह गम्भीर-नीरव होता जा रहा था। किसी के मुँह में शब्द नहीं था, श्वास-प्रश्वास को छोड़कर जीवन का और कोई लक्षण ही नहीं था।

फूफी ने कहा—नित्तो, बहूरानी को उसके ननिहाल पहुँचा आ।

कई दिनों के बाद ही नान्ती को लेकर उसकी नानी कलकत्ते चली गयीं। वहाँ से उनका काशी जाने का विचार है। ससुराल के नाते शिवू की माँ या फूफी से उन्हें पूछ तो लेना चाहिये था, पर उन्होंने इतना भी न किया।

फूफी मारे क्रोध के जल उठीं। माँ हँसीं केवल।

लेकिन उसी साँझ को फूफी बोलीं—बहू, बहूरानी को यों जाने देना अच्छा नहीं हुआ। शिवू का जी नहीं लगेगा।

माँ ने हँसकर कहा—तुम पगली हो, पगली!

फूफी ने कहा—नहीं, नहीं, जरा गौर से देखो। कितना बड़ा हो गया शिवू, देखी है तुमने, कैसी मसें भींगी हैं उसकी।

माँ फिर हँसीं।

ग्यारह

रूफी की पैनी निगाह चूक नहीं सकती, इस बार भी नहीं चूकी। सच-मुच ही शिवनाथ देखते-देखते बड़ा हो गया है। उसके शारीरिक गठन के सहज परिवर्त्तन को देखकर ऐसा लगता है, मानों उसके बचपन के स्वरूप को कोई नये ढंग और नये सिरे से गढ़ रहा हो। देह की लम्बाई बढ़ गयी है, जिससे थोड़ा दुबलापन मालूम देता है। सभी अंगों की दृढ़ता का विकास, सूर्य की प्रारम्भिक किरणों के समान, निरन्तर गतिशील हो रहा है। बचपन और जवानी के इस संधिकाल में ऐसा रूपान्तर हर किसी में देखा जाता है; किन्तु, पाँच से पन्द्रह की उम्र में होने वाला परिवर्त्तन कभी किसी की पकड़ में नहीं आता। पन्द्रह पार करके, कुछ ही महीनों में, यह ऐसा स्पष्ट हो उठता है कि आस-पास के लोग भी चकित हुए बिना नहीं रह पाते।

शिवनाथ के आचरण में भी परिवर्त्तन दिखायी पड़ने लगा है। निगाह, चाल, बातों के ढंग, सब में धीरे-धीरे गम्भीरता जगह बना रही है। वर्षा के शुरू में, गँदले पानी से अधभरी नदी के साथ, यह रूप बहुत हद तक मिलता-जुलता है। उस नदी में हँस और खेलकर नहीं उतरा जा सकता, बल्कि हर स्थिति के लिये अपने को तैयार करके उतरना पड़ता है।

शिवनाथ की प्रवेशिका परीक्षा समाप्त हो गयी है। इस लम्बी फुर्सत के दिनों में वह फिर वंकिम, विवेकानन्द और रवीन्द्र में उलझ गया है।

उस दिन फूफी पूछ बैठीं—यह तो बता शिबू, तू निर्जन एकान्त में बैठा-बैठा क्या सोचा करता है ?

शिवनाथ बोला—यह तुमसे किसने कहा !

—कहे चाहे कोई, तू यह बता कि संगी-साथियों को छोड़, तू अकेले करता क्या है ?

करना क्या है, नदी, मैदान, आकाश, इन्हीं को देखता हूँ ।

—यानी ? क्या अब घोड़े की सवारी भी नहीं करता ?

—नहीं फूफी, अब उसमें जी नहीं लगता ।

फूफी का मुँह भारी हो उठा । इसी बीच माँ भी वहाँ आ पहुँची । शिवनाथ ने उनसे कहा—मेरा एक काम नहीं कर दोगी माँ ?

इधर फूफी बोल उठीं—रतन, तुम्हारे काम में बड़ी ढिलाई हो रही है । वही दो बजे दिन में तुम गयी हो और अब आ रही हो शाम को । ऐसा क्यों ?—यही कहती-कहती वह वहाँ से चली भी गयीं ।

रतन ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल इतना बोली—आज किसकी शामत आयी है ?

माँ बोलीं—हाँ रे शिबू, एकान्त में बैठा क्या आकाश-पाताल सोचा करता है, तुम्हारी फूफी शिकायत कर रही थीं ।

शिबू ने माँ की ओर देखकर कहा—अच्छा, वह स्थल तुम्हें याद है 'आनन्द मठ' का, जहाँ आया है कि 'माता क्या थीं और क्या हो गयीं' ? मैं वही देखने की कोशिश करता हूँ ।

माँ एकटक लड़के को देखती रह गयीं । उनकी आँखों में हँसी की उज्ज्वल दीप्ति खेल रही थी ।

शिवनाथ बोला—मगर मैं समझ नहीं पाता, उस मूर्त्ति की कल्पना भी नहीं हो पाती मुझ से । आकाश तो वही है, वही नदी है, खेत और फसल भी वही···

माँ बोली—आखिर देश मिट्टी थोड़े ही है बेटा। देश को देखना चाहते हो, तो गाँवों की आबादी में देखो, शहरों में देखो। अच्छा, हमारे यहाँ एक पटवा मुहल्ला था, देखा था तुमने? अब तो वे लोग रहे नहीं। सब मर गये, जो दो-चार बच रहे थे, भाग गये यहाँ से। अपने व्याह के बाद भी मैंने देखा था। ऐसा चला-बना था उनका कि पूछो मत। अच्छे-खासे जवान, पट दिखाकर गीत गाते फिरते थे। उनकी औरतें मिट्टी के खिलौने बेचा करती थीं। कभी जो स्थान आनन्द-कलरव से आठों पहर गूँजता रहता था, लच्छमी की कृपा से श्रीसम्पन्न था, आज वह वीरान पड़ा है। बस, इसी से समझो, माता कभी क्या थीं, आज क्या हो गयी हैं!

शिवू माँ की ओर ताकता रहा।

किसन सिंह ने आकर खबर दी—घोड़ा कसा गया है, फूफी बाहर कचहरी में इन्तजार कर रही हैं।

शिवनाथ ने रुखाई से उसे देखा और कहा—रिकाब खोल देने को कहो। माँ ने कहा—तुम जाओ किसन, पीछे से बाबू जा रहे हैं।

किसन चला गया।

शिवू ने कहा—फूफी भी कैसी पगली हैं!

माँ बोलीं—बड़ों के लिये श्रद्धा रखनी चाहिये शिवू। कुर्ता पहन ले और जा। तेरे लिये फूफी हमसे कहीं बड़ी हैं, उनका जी नहीं दुखाना चाहिये।

शिवनाथ ने फिर कुछ नहीं कहा। कुर्ता बदलने को चला गया।

रतन ने पूछा—हुआ क्या है भाभी जी?

यों रतन है तो इस घर की रसोईदारिन, मगर अपनी लड़की जैसी रहती आयी है। उसकी माँ भी यही काम करती थीं, उसके मरने के बाद से रतन भी यहीं रह गयी। रतन की माँ फूफी को जीजी और शिवनाथ के पिता को दादा कहा करती थीं। उसी रिश्ते से रतन इस घर की भाँजी है। शैलजा को वह मौसी और शिवनाथ की माँ को भाभी कहती है।

शिवनाथ की माँ बोलीं—हुआ कुछ नहीं है, बीच-बीच में जैसी धुन बहनजी के सवार हो जाती है। वही।

इस बात को उन्होंने थोड़ा घुमा-फिराकर कहा।

रतन बोली—लीजिये, फिर प्यादा आ धमका।

सतीश आकर खड़ा था। बोला—फूफीजी बाबू को बुला रही हैं। नायब और मुहर्रिर को फटकार रही हैं कि बाबू को बही-खाता क्यों नहीं दिखाते?

शिवनाथ ने कहा—अच्छा चलो, लेक्चर मत झाड़ो।

बैठक में फूफी, वास्तव में ही, नायबजी पर डाँट बता रही थीं और वह बेचारे हँसते हुए सब कुछ सुन रहे थे। शिवनाथ को देखकर बोलीं—तुम अब दूध-पीते बच्चे नहीं हो, अपनी धन-जायदाद को समझ-बूझ लो। मुझ से अब पार नहीं पड़ता।

शिवनाथ ने उनकी बातों पर कान नहीं दिया। बोला—कौन है? घोड़ा ले आ।

साईस घोड़ा ले आया। शिवनाथ ने कहा—देखोगी फूफी, घोड़े को नचाऊँ?

फूफी ने कहा—रहने दो। हाँ, कल से सुबह-शाम तुम्हें दफ्तर में बैठना पड़ेगा। समझ गये?

सतीश से बोलीं—सतीश, दफ्तर को झाड़-पोंछकर सँवार दो। कल से कागजों पर शिवनाथ का हस्ताक्षर होगा, तब सही माने जायँगे।

तब तक शिवनाथ घोड़े पर सवार होकर हवा हो गया था। फूफी ने कहा–अब यह भार आपका रहा नायबजी कि वह इस ओर काबिल हो जाय।

नायब ने कहा—काँटे की नोक पर धार चढ़ाने की जरूरत नहीं होती। आप ही सब ठीक हो जायगा।

दूसरे दिन फूफी ने खुद शिवनाथ को लाकर दफ्तर में बिठाल दिया।

दफ्तर साफ-सुथरा हो गया है। फर्श पर सादी चादर की जगह छपी रंगीन चादर शोभ रही है। तकियों के खोल बदल दिये गये हैं। तिपाई पर माँजी हुई चाँदी की गुड़गुड़ी झकमका रही है। मेज पर एक रंगीन चादर है। चौकी के बीचोबीच एक छोटा गलीचा शिवनाथ के लिये बिछा दिया गया है और सामने ही पुराने जमाने का लकड़ी का कैश बक्स। बक्स के दक्खिन एक अजीब शक्ल की दावातदानी है चाँदी की और उसमें दावात-कलम है। ठीक जगह पर बैठाकर फूफी ने कहा—देखो बेटे, दो बातें हर्गिज न भूलो, एक यह कि किसी के आगे माथा नहीं झुके और दूसरी कि पूर्वजों की कीर्ति-वृत्ति का लोप न हो।

फूफी वहाँ और खड़ी न रह सकीं, जल्द-जल्द चली गयीं। जाते वक्त किसी ने उनका चेहरा नहीं देखा। शिवनाथ गलीचे पर बैठकर चारों ओर देखने लगा। सामने से नायबजी ने झुककर सलाम किया। बोले—हुजूर इस पुर्जे पर सही बना दें।

पुर्जे में देवी-देवताओं की पूजा की लम्बी फिहरिश्त थी। कहा—अचानक ही इतना पूजा-पाठ कैसा?

नायब ने कहा—आज पहले-पहल आप दफ्तर में बैठ रहे हैं इसलिए।

किसन सिंह ने आकर, झुककर सलाम किया—दो सौ उन्नीस नम्बर के रैयत लोग आये हैं।

नायब ने पूछा—और उनसठ नम्बर के रैयत अभी तक नहीं आये?

—जी नहीं। मगर आ ही चले।

बाहर कुछ खटका हुआ। किसन सिंह दरवाजे तक जाकर लौट आया। बोला—हुजूर, वे लोग भी आ पहुँचे।

नायब बोले—सब को बुला।

शिवनाथ ने पूछा—तो ये रैयत लोग किस लिये आये हैं?

नायबजी कुछ उत्तर दें, इसके पहले ही दोनों नम्बरों की तौजी के

रैयतों ने आकर अभिवादन किया। हाथ उठाकर शिवनाथ ने प्रति नमस्कार किया।

योगीन्द्र मण्डल बोला—इस दफ्तर में आज बहुत दिनों के बाद अपने राजा के दर्शन हुए।

शिवनाथ के मन में जानें कैसी तो एक उत्तेजना-सी हो रही थी—उसका मुखमण्डल तमतमा रहा था, आँखें दमक रही थीं।

उनसठ नम्बर के नगेन्द्र ने कहा—अब तक हम पितृहीन-से थे, आज हमें अपना पिता मिला है।

और इसके बाद ही लोगों ने नजराना भेंट की।

शिवनाथ की शिराओं का सारा रक्त जैसे माथे पर चढ़ता जा रहा था। यह सब कुछ उसे केवल भला ही नहीं लगा, बल्कि उसका मन आत्म-प्रसाद से जो महज अहंकार का नामान्तर है, भर उठा। उसे लगा, वह सच-मुच ही राजा है, इतने-इतने रैयतों के भाग्य का स्वामी। उसकी हल्की-सी हँसी से ही इतने-इतने लोग कृतार्थ हो जाते हैं, शायद उनका कल्याण भी होता हो। उसने नायब से कहा—इन लोगों के लिये जलपान का प्रबन्ध करा दें।

नायब बोले—सतीश अंदर ही गया है।

शिवनाथ जरा हँसकर रैयतों से बोला—आज यहाँ भोजन करके तब जाना। यह घर तो तुम्हीं लोगों का है।

नायब बोले—बेशक हुजूर।

योगीन्द्र ने कहा—बस, सरकार का ही खाकर तो जी रहे हैं।

नगेन्द्र ने कहा—जन्म से ही आपकी मिट्टी की शरण ली है। यहाँ का प्रसाद मिल जाना तो परम सौभाग्य की बात है।

कोई दश बजे शिवनाथ अन्दर गया। चाल में संयम और गम्भीरता। मर्यादापूर्ण गम्भीरता के उस आवरण को, जिसका कि वह अभ्यासी नहीं था,

बड़ी सावधानता से निर्बाह कर रहा था ! पीछे-पीछे सतीश उस काले कैश बक्स को कन्धे पर लिये जा रहा था। शिवनाथ सीधे अपने कमरे में गया। मेज पर उसकी दो प्यारी पुस्तकें रक्खी थीं—'आनन्दमठ' और 'टाम काका' की कुटिया। वह मेज के सामने सहसा खड़ा हो गया, जैसे कोई चौंककर नींद से जाग गया हो। नीचे माँ कुछ कह रही थीं। उनकी बातें शिवनाथ के कानों में पहुँचीं।

बहन जी, तुमसे एक भीख माँगती हूँ मैं।

—भीख क्या बहू ?

—हाँ, शिवनाथ को अभी से गिरस्ती में न खींचो। उसे लिखने-पढ़ने दो।

शिवनाथ दम अटकाये कान लगाकर सुनता रहा—कुछ क्षण में फूफी बोलीं—इससे क्या पढ़ाई का नुकसान होता है बहू ?

—होता है।

—अच्छा, तो शिवनाथ पढ़ाई ही पूरी करे। तुम्हारे लड़के को मैं छीनना नहीं चाहती।

—फिर ऐसी बात क्यों कहती हो बहन, शिवनाथ मेरा नहीं, तुम्हारा है।

—मेरा !

अपनी कल्पना से शिवनाथ ने फूफी की उस विचित्र हँसी का अनुमान कर लिया, जैसी हँसी कि वह कभी-कभी हँसती हैं। फूफी बोलीं—बहू, खरीदा हुआ खिलौना मन-माफिक नहीं होता, क्योंकि वह दूसरों के हाथ का बना होता है।

शिवनाथ ने एक लम्बा निश्वास छोड़ा। उसके ऐसा करने का कोई खास कारण नहीं था, किन्तु माँ और फूफी की बातें सुनकर ऐसा किये बिना वह रह नहीं सका। कनवास की आरामकुर्सी पर वह आँखें मूँदकर पड़ रहा !

उसका किशोर मन मानों शरत् के शुभ्र आकाश में पंख फैलाकर उड़ते हुए हँस के समान किसी दूर, बहुत दूर की यात्रा को निकल पड़ा हो। और बार-बार ऊपर ही उठते हुए वह मानसलोक की खोज कर रहा हो। कभी-कभी किसी अज्ञात खिंचाव से वह आज के दफ्तर की ओर भी आकृष्ट हो रहा था।

एकाएक उसे गौरी की याद आ गयी। गौरी नान्ती का ही नाम था। आज कहीं वह होती, तो कितना अच्छा होता! श्रद्धा से झुकी हुई उसकी आँखें मेरे इस मर्यादामय रूप को निहारतीं। और सोचते-सोचते उनके मन का हंस फिर मानसरोवर की ओर चला।

स्वामी विवेकानन्द की तस्वीर पर उसकी आँखें गड़ी थीं। आलमारी से 'वीरवाणी' निकालकर वह उसी में डूब गया।

कल शिवू ने माँ से कहा था कि मेरा एक काम नहीं कर दोगी माँ। उसका मतलब इसी 'वीरवाणी' के कुछ वाक्यों को कार्पेट पर बुनवाने से था। किन्तु, फूफी के चलते कहने का अवसर ही नहीं मिला। वह खुद भी इस बात को भूल गया था, अभी एकाएक फिर याद हो आयी। माँ द्वारा बुनी हुई वाणियों को वह सदा आँखों-आँखों रखना चाह रहा था।

बारह

आखिर में शिवू की माँ की ही बात रही।

बनर्जी बाबुओं का दफ्तर एक दिन को खुलकर फिर बन्द हो गया। जमीन-जायदाद की पुरानी व्यवस्था ही रह गयी। दूसरे दिन नायबजी को बुलवाकर शिवू की माँ ने कहा—खरच-पत्तर के लिये हमारी और ननदजी की सही ही चलेगी, जैसे कि अब तक चलती रहती है। शिवू अब सही नहीं बनाया करेगा।

नायबजी न केवल विस्मित हुए, वरन् विरक्त-से हो उठे। एक युग से वे इसी दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब यहाँ का मालिक एक हो, वह भी कोई नारी नहीं, सबल, दुस्साहसी और उदार एक पुरुष, जिसके चारों तरफ ऐश्वर्य उमड़ता हो, पर जो फिजूलखच न हो, सब जिसके नाम से भय खायें, पर जो अविचारी न हो। शिवनाथ को अपनी इस आशा का केन्द्र बनाकर जाने कब से वह इसे वैसा ही बनाने की आकांक्षा पालते आ रहे थे। वे चाह रहे थे कि वह स्वयं उनके मन्त्री, उपदेशक और परिचालक हों। चूँकि फूफी के प्रयत्नों से उनके इस स्वप्न के रूप लेने की उम्मीद हो आयी थी, इसलिये उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। परन्तु आज शिवनाथ की माँ ने जब उलटा आदेश दिया, तब वे भर-से गये। उनकी वह विरक्ति त्योरियों में झलक आयी। भँवें सिंकोड़कर बोले—ऐसा क्यों, कल बाबू दफ्तर में बैठे, रैयतों ने जान लिया कि उनके मालिक ने जिम्मेदारी सम्हाल ली है···

माँ बोलीं—यह जिम्मेदारी ढो सकने की उमर शिवू की अभी हुई नहीं है—उसकी सारी की सारी पढ़ाई तो बाकी ही पड़ी है। इम्तहान का नतीजा निकलते ही उसे पढ़ने के लिये बाहर जाना पड़ेगा।

लम्बी साँस छोड़कर नायबजी ने पूछा—तो क्या आप बाबू को अभी और पढ़ायेंगी ?

हँसकर माँ ने कहा—और क्या ? पढ़ेगा नहीं तो आदमी कैसे बनेगा ? मैं उसे एम० ए० तक पढ़ाना चाहती हूँ, जिससे कोई उसे अपढ़ जमींदार न कह सके।

अब अपने मन की बात उनसे रोके नहीं रुकी। बोले—ऐसी दशा में जायदाद को बचाना भार हो जायगा।

—भार क्यों हो उठेगा ?

—जैसे बुरे दिन आये हैं कि जरा कड़े मालिक न हों, तो सम्पत्ति किसी की भी नहीं रह सकेगी।

माँ ने हँसकर कहा—क्या इसलिये आप डर रहे हैं कि हमलोग स्त्री हैं ? सिर खुजलाते हुए नायब बोले—झूठ क्या कहूँ, इसका भय तो थोड़ा-बहुत है !

फूफी बड़े ध्यान से रामायण के एक ही पन्ने को इतनी देर से पढ़ रही थीं। अब उनसे रहा नहीं गया। रामायण बन्द करके उठ आयीं। बोलीं —नायबजी बहुत ठीक कह रहे हैं बहू, तुम समझतीं नहीं। यह इतनी बड़ी जायदाद, वंश की इज्जत, कीर्त्ति-वृत्ति, यह सब क्या स्त्रियों के बूते सम्हाला जा सकता है, नौकरों के भरोसे रखा जा सकता है ?

उसी स्वाभाविकता से शिवू की माँ बोलीं—तुम फिक्र न करो, सब कुछ रहेगा।

शैलजा ने अचरज से बहू को देखा और बोलीं—तुम सब बचा लोगी, इतनी हिम्मत है तुम में ?

दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया—बेशक, वह हिम्मत है मुझ में।

एक ही लहमे में फूफी का रूप विचित्र ढंग से बदल गया। क्रोधभरी दृष्टि से शिवनाथ की माँ को ताककर वह बोलीं—तो यह कहो कि आज तक मैंने तुम से सब कुछ छीन रखा था।

शिवू की माँ ने नायब से कहा—नायबजी, चूँकि हम स्त्री हैं, इसलिये आपको डर-डरकर काम करने की जरूरत नहीं है। ननदजी हैं, मैं हूँ—दायित्व हमलोगों पर है। आप जाइये, अपना काम देखिये।

नायबजी को आशंका हो रही थी कि इस तुच्छ घटना का बड़ा कटु अन्त होगा और उनका दम जैसे घुटने लगा था। अनुमति मिलते ही वे वहाँ से चलते बने। जान बची, लाखों पाये।

इस बार फूफी ने कठोरता से पूछा—मेरी बात का जवाब दो बहू।

शिवू की माँ ने कहा—देती हूँ अब। सिंहजी के सामने भला मैं जवाब दे सकती हूँ!

गो कि वे हमारे नायब हैं! यह सारी जायदाद तुम्हारे पिता की है और शिवू तुम्हारे बाप का वंशधर है। इसलिये इस पर मुझ से तुम्हारा अधिकार कहीं ज्यादा है। भला तुम्हें छीनकर रखने की जरूरत क्यों हो? तुमने अपने ही भार उठाया था। अब यदि तुम्हें कोई हिचक हो, तो मदद के लिये तुम्हारी पीठ पर मैं रहूँगी, यही मेरा कहना है।

बहू के मुँह की ओर कुछ क्षण देखती रहने के बाद, फूफी ने कहा—बातें करना तो कोई तुम से सीखे। खैर, मैं जो कहती हूँ, सुनो। यह जायदाद कभी मेरे बाप की थी जरूर, पर आज तुम्हारे बेटे की है। यही कारण है कि आज तुमने मेरी बात काट दी है।

लेकिन मैंने कुछ बेजा तो कहा नहीं बहन। केवल इतना ही तो बोली कि शिवू के लिये लिखना-पढ़ना जरूरी है। वह देश में सम्मानित हो, पण्डित हो, क्या तुम ऐसा नहीं चाहतीं?

मैं क्या चाहती हूँ और क्या नहीं, यह जानने की तुम्हें जरूरत भी क्या ? मैं तो इस घर की महज एक टुकड़े तोड़नेवाली हूँ ।—कहते-कहते वह वहाँ से चली गयीं । यह अभिमान ही उनका अचूक अस्त्र था । उनके सर्वहारा जीवन में यह अभिमान ही एक अक्षय-अटूट सम्पत्ति था । किसी दिन उनके पिता और भाई भी हजारों नुकसान उठाकर इसकी रक्षा करते रहे थे । और आज उनके उस अभिमान की रक्षा शिवू की माँ सारी सम्पत्ति उनके हाथों सौंपकर करती आ रही हैं । लेकिन अपने बेटे के भविष्य के नाते आज वह अपने अधिकार की वलि न दे सकीं । ननदजी चली गयीं—वह भी निर्विकार भाव से भाण्डार के काम-काज में लग गयीं ।

एक कटोरा हाथ में लेकर अन्दर आती हुई, रतन बोली—भाभी !

—कौन ? रतन ! तेल चाहिये ?

—थोड़ा-सा मिल जाय, तो अच्छा ही हो और न भी मिले तो हर्ज नहीं ।

भाभीजी, एक बात कहनी थी ।

—बोल ।

—यही कि मना-मनू कर ही कुछ करतीं । शायद···

—क्यों रतन, क्या मैं शिवू की माँ नहीं हूँ ?

रतन अप्रतिभ हो गयी, बल्कि विस्मित भी हुई । हलका हँसकर बोली—तो देखती हूँ भाभीजी के भी गुस्सा है ।

शिवू की माँ मौन रहीं । चुपचाप थोड़ा-सा तेल निकालकर रतन के कटोरे में डाल दिया । ठीक इसी वक्त घबराकर नित्तो चीख उठी—फूफीजी, फूफीजी !

किसी ने उत्तर नहीं दिया । शिवू की माँ ने बाहर निकल कर पूछा—बात क्या है ?

नित्तो ने कहा—किसन सिंह और नायब बाबू में जोरों की ठन गयी है।

—कौन! किससे लड़ाई हो रही है!—अब की फूफी बाहर निकल कर बोलीं।

—जी, नायब बाबू और किसन सिंह में।

—लड़ रहे हैं? क्यों लड़ रहे हैं? क्या उन्होंने यह समझ रखा है कि इस घर का कोई माँ-बाप नहीं?

फूफी गम्भीर होकर बाहर निकलीं—आदत के मुताबिक नित्तो भी पीछे लग गयी।

कचहरी पहुँचकर फूफी ने देखा, लज्जा से सर झुकाये नायब और किसन सिंह बैठे हैं। बरामदे की एक कुर्सी पर क्रोध से तमतमाया शिबू बैठा है। फूफी सारी बातें ताड़ गयीं। खुश होकर पूछा—बात क्या थी शिबू?

गम्भीर होकर शिबू बोला—कुछ नहीं फूफी, तुम अन्दर जाओ। जो करना चाहिये, मैं कर रहा हूँ।

झगड़ा एक नन्ही-सी बात पर ही हो गया था।

असल में नायबजी कुछ खिन्न-से बैठे सोच रहे थे कि यहाँ अब काम करना ठीक नहीं। रहते हुए भी जहाँ मालिक न हो, वहाँ काम करना क्या है, मुसीबत मोल लेना है। कहीं कोई दंगा-फसाद हो जाय, तो अपनी इज्जत पर आन पड़े। औरतों के हाथों बागडोर होने से सदा खटका लगा ही रहता है और कहीं किसी को घुड़क भी दिया जाय और वह आँखें रंगाकर चला जाय, तो उसके प्रतीकार का यहाँ कोई उपाय भी नहीं है। ऐसी दशा में यहाँ से छुट्टी पा जाने में ही कुशल है।

वह सोच ही रहे थे कि किसन सिंह पहुँचा। बोला—नायब बाबू, हुक्म दीजिये, मैं रूपलाल बागदी को गले में कपड़ा डालकर घसीट लाऊँ। मारे क्रोध के वह फनवाले साँप-सा फुफकार रहा था।

नायबजी का चेहरा विरक्ति से बदरंग हो गया। जी में आया, अभी ही नौकरी को आखिरी सलाम कर बैठूँ!

गर्म होकर किसन बोला—खबर मिली, कम्बख्त रूपा सुबह-सुबह हमारे काली पोखर से दस सेर मछलियाँ मार ले गया। मैं गया, तो उसके घर बड़े-बड़े छिलके पड़े थे। मैं उसे पकड़े ला रहा था कि वेणी ने कह दिया—तुम पकड़कर ले जानेवाले होते कौन हो? अगर इसने चोरी की है, तो थाना खुला है! बस, आप हुक्म तो दीजिये, साले को गले में अँगोछा डालकर मैं खींच लाता हूँ। और हमारे किस खलिहान में तो वेणी का पेड़ है, बताइये, मैं कटवा दूँ?

नायबजी ने कहा—भैया, ऐसा हुक्म मैं तो नहीं दे सकूँगा। तुम मालिक के पास जाओ।

—अच्छा तो मैं नन्हे बाबू के पास जाता हूँ, कहाँ होंगे वह?

उनके पास नहीं, माँ या फूफी के पास जाओ। कल का सिलसिला तोड़ दिया गया है। बाबू अब पढ़ने के लिये कलकत्ते जायँगे—काम पहले जैसे चलता था, वैसे ही चलेगा।

किसन बोला—अच्छा तो मेरा अन्तिम नमस्कार ले लीजिये। मुझ से अब काम नहीं होगा। मेरा हिसाब कर दीजिये।

इस पर नायबजी चीख उठे—तो यह मुझे क्या धौंस दिखाते हो, मालिक के पास जाओ—उन्हीं को कहो।

किसन ने भी बिगड़कर कहा—मालिक के पास मैं नहीं जाता। मैं चपरासी ठहरा, आप नायब हैं, मैंने तो आपसे कह दिया। अब चाहे मालिक के यहाँ जाना हो, चाहे जज साहब के यहाँ, आप जानिये। मेरा हिसाब चुका दीजिये। बस।

तमककर नायबजी ने कहा—मैं भी इस नौकरी से छुट्टी लेता हूँ। तुम मुझ पर क्या लाल-पीले हो रहे हो?

किसन बोला—यह मुझे क्यों सुना रहे हैं आप! मालिक से कहिये।

इसी बीच नित्तो घाट गयी थी। उसने हल्ला-गुल्ला सुनकर झाँका। ये दोनों दो लड़ाकू जानवर की तरह लाल-लाल आँखें किये जुझने पर आमादा हो रहे थे। और, उसने अन्दर जाकर खबर कर दी।

नायब ने चौकी पर हाथ मार कर कहा—आखिर मुझ से यह कहने की तुम्हारी क्या जुर्रत है? तुम एक मामूली दरवान हो, मैं नायब ठहरा!

सतह पर अपनी लाठी ठोंककर किसन बोला—बेशक कहूँगा। एक नहीं, एक हजार बार कहूँगा। मुझे कहा जायगा, तो चुप नहीं रह सकता।

ठीक इसी समय वहाँ शिवनाथ पहुँच गया। चेहरे पर चिन्ता की गहरी रेखायें, जरूरत से ज्यादा गम्भीर चाल, आँखों में स्वप्न की-सी छाया; जीवन का रथ जिस अन्तर्वासी सारथी के इशारे पर राह चुनकर आगे बढ़ता है, वह सारथी मानों मनरूपी घोड़े की बागडोर थामे कहीं एक जगह स्थिर होकर खड़ा है। सुबह ही वह अपनी समाज-सेवक-समिति की बैठक में शामिल हुआ था। चूँकि पिछले साल नाम को भी पानी नहीं पड़ा, इसलिये उपज नहीं हुई थी; तालाब सूख गये हैं। वैशाख के आरम्भ में ही निदाघ की कठोर ज्वाला से सारा देश जैसे झुलसने लगा है। एक अर्से से समिति ने दरिद्र-भाण्डार खोलने का संकल्प किया है, परन्तु उसके लिये सक्रिय रूप से वैसा कुछ किया नहीं गया है। इस साल अकाल के आसार देखकर कुछ वयस्क कार्यकर्त्ताओं ने आज की बैठक बुलायी थी।

वहाँ से लौटते समय शिवू पाठ्य पुस्तक की एक कविता के बारे में सोचता आ रहा था। कविता अंग्रेजी से अनूदित थी। एक माँ, जिसके लड़का खो गया था, एक भ्रमणकारी से अपने बेटे की बड़ी व्यग्रता से खोज कर रही है। माँ कहती है, मेरा बेटा कुछ ऐसा-वैसा नहीं। संसार के लाखों-करोड़ों मनुष्यों के मेले में भी वह सहज ही पहचान लिया जा सकता है।

भ्रमणकारी उत्तर में बड़े-बड़े लोगों, वक्ताओं के नाम लेकर पूछता है। यही माँ कहती है—नहीं, मेरा बेटा वह नहीं।

भ्रमणकारी फिर कहता है—महायुद्ध में मैंने एक वीर पुरुष को देखा है, वह ?

'नहीं-नहीं, वह नहीं।'—माँ कहती है।

—एक संन्यासी, ध्यान में लीन, मुखमण्डल पर स्वर्गीय प्रकाश—?

—नहीं, वह भी नहीं।

तब कौन है ?—पर्यटक ने कहा—एक टापू में मैंने कोढ़ियों का एक आश्रम भी देखा। उसमें एक महत्प्राण पुरुष दिखायी दिये, जिन्होंने अपना जीवन उन पीड़ितों की सेवा के लिये उत्सर्ग कर दिया है। रोग उन्हें भी चपेटे में लाने से बाज नहीं आया, मगर वह हैं कि उन्हें कोई फिक्र नहीं, थकावट नहीं, ऊब नहीं। आपका मतलब इनसे तो नहीं ?

माँ ने गद्गद् होकर कहा—हाँ-हाँ, वही है, मेरा बेटा वही है।

समिति की बैठक में एकाएक कविता याद आ पड़ी। उसे इच्छा हुई कि हेडमास्टर महोदय से उसके मूल लेखक का नाम जानकर उसे एक बार पढ़ जायँ। किन्तु कचहरी में पाँव पड़ते ही शोरगुल से उसकी चिन्ता-धारा टूट गयी। पलक मारते ही मानों वह अपने में आ गया—जैसे किसी ने मन के घोड़े को चाबुक की चोट दी और घोड़ा हवा हो गया !

पूछा—माजरा क्या है नायब बाबू, और किसन, क्या बात है कि जामे से बाहर हुए जा रहे हो ?

नायब और दरवान दोनों चुप होकर सोचने लगे, सच तो, आखिर इस बकवाद की वजह क्या रही !

भँवें सिकोड़कर शिवू ने कहा—आखिर आप लोगों का क्या इरादा है, क्या इस घर की इज्जत पर पानी फिर जाय ?

सतीश ने जल्द-जल्द दफ्तर खोलकर एक कुर्सी बाहर डाल दी।

बोला—सरकार, मामला क्या है, वही जानें। नायबजी भी कह रहे हैं, मुझे नौकरी नहीं करनी है और किसन भी कहता है, मैं जवाब देता हूँ।

शिवू ने पूछा—क्यों ?

सब के सब चुप रह गये। इतने में फूफी ने आकर शिवू को जो देखा, तो खुश होकर बोलीं—क्या बात है बेटा ?

शिवू बोला—कुछ नहीं फूफी, तुम अन्दर जाओ। जो करना चाहिये, मैं कर रहा हूँ।

नायबजी बोले—बात कुछ नहीं है माँजी, योंही कुछ कहा-सुनी हो गयी। आदमी का मन ही तो ठहरा, कभी ऐसा हो जाता है।

बीच ही में जाने कब तो रतन आ पहुँची थी। बोली—शिवू, नायबजी और किसन सिंह—दोनों ही यहाँ के पुराने कर्मचारी हैं। इनके मामले का फैसला फूफी पर ही छोड़ दो। चलो, तुम अन्दर ही चलो, इसमें तुम्हारा पड़ना ठीक नहीं होगा !

सभों का ध्यान रतन की ओर खिंच गया। हकीकत में यह बात रतन अपनी ओर से नहीं कह रही थी, उसके पीछे ही घूँघट काढ़े शिवू की माँ खड़ी थीं।

तेरह

फैसला फूफी ने ही किया। बागी रैयत—वेणीमण्डल और रूपलाल बागदी—के दुर्व्यवहार के लिये भी उन्होंने व्यवस्था की। लेकिन जब अन्दर गयीं, तो वह उस ज्वालामुखी-सी हो रही थीं, जिसके अन्दर आग-ही-आग भरी हो। लपटें जरूर नहीं निकल रही थीं, लेकिन चारों ओर उसकी तीखी आँच फैल रही थी। जिस चतुराई से शिवू की माँ ने उनके मत्थे कर्तृत्व का काँटोंवाला मुकुट पहना दिया, उससे भीतर ही भीतर जल-भुन जाने पर भी, जबान से उस क्षोभ, उस क्रोध को जाहिर करने का कोई उन्हें उपाय नहीं था।

तीसरे पहर उन्होंने शिवनाथ की माँ से कहा—कुछ दिन हुए, मैंने एक बात तै की है। किन्तु आज तक तुम से कही नहीं है, कही नहीं जा सकी। यों तुम बुद्धिमती तो थी ही, पर थीं छोटी, थी इस घर की बहू। लेकिन अब तुम जरा भारी-भरकम हुई हो और हुई हो शिवनाथ की माँ। अब तुम मजे में अपनी जमीन-जायदाद की देख-भाल कर लोगी। भई, मुझे तो दो अब फुर्सत, मैं काशी चली जाऊँ।

ज्योतिर्मयी—शिवू की माँ—जरा देर चुप रहकर बोलीं—तो मुझे भी अपने साथ लिवा चलो, मैं भी जाऊँगी।

भँवें सिकोड़कर शैलजा बोलीं—तुम भला कहाँ चलोगी मेरे साथ!

मन्द हँसकर ज्योतिर्मयी ने कहा—साथ न जाऊँ, तो यहाँ रहूँगी किसके भरोसे?

'ऐं-ऐं, यह क्या कहा तुम ने बहू ?'—शैलजा चीत्कार-सी कर उठीं—ऐसी अशुभ बात कैसे बोल गयी ? भला तुम और भरोसे की बात ! सौ सन्तान के समान तो अकेले तुम्हारा शिवू है। ईश्वर करे, उसकी उम्र सौ साल की हो ! तुम यह क्या कह रही हो कि किसके भरोसे रहोगी ?

—एक तो शिवू अभी कुछ दिन का लड़का है, फिर अभी सात-आठ वर्षों तक उसे बाहर ही रहना है। ऐसे में तुम भी न हो, तो सम्पत्ति की देख-भाल मेरे बूते की नहीं।

—है क्यों नहीं ? कल तुम ने खुद इसे कबूल किया है और आज मैंने देखा भी कि तुम में वह दम है।

ज्योतिर्मयी चुप लगा गयीं। ननद के स्वभाव से वह खूब परिचित थीं। वह भाँप गयीं कि बस अब ज्वालामुखी लपटें लेगा और जब सारी आग चुक जायँगी, तो शान्त हो जायगा।

शैलजा बोलीं—केवल अपना हठ रखने के लिये तुम खुद कचहरी में जाकर हाजिर हो गयी। राम-राम ! तुम्हें जरा सब्र भी नहीं रहा ! आज कहीं भैया होते, तो जानती हो कि क्या होता ?

ज्योतिर्मयी ने नरम स्वर में कहा—मैं अपनी गलती कबूल करती हूँ।

कोई जब दोष मान लेता है और खासकर जब अपराधी की तरह सिर नवाकर मान लेता है, तब उस दोष के लिये किसी को सजा नहीं दी जाती। लेकिन शैलजा के मन का क्षोभ इतने से न मिटा। कुछ क्षण ठहरकर वह फिर बोलीं—दोष तुम्हारा नहीं बहू, सारा दोष मेरा है। मेरा ही दोष है कि तुम्हारे घर, तुम्हारी बातों में मैं दखल देती हूँ। मैं बेहया, बेशर्म हूँ कि आज नायब-दरवान के झगड़े में पूछ-ताछ करने चली गयी। तुम ने शिवू को वहाँ से बुलवा लिया। आखिर क्यों ? मैं जब वहाँ मौजूद थी, तब तुम्हें यह खौफ क्यों हुआ कि शिवू गलत फैसला देगा ? पढ़ाई-लिखाई ! पढ़ाई-लिखाई न होने से मानों—

अचानक उनकी बात में बाधा पड़ी। हाथ में एक लाल लिफाफा लिये नायबजी ने कहा—फूफीजी!

ज्योतिर्मयी की नजर उस पर पहले ही पड़ चुकी थी। उन्होंने पूछा—वह क्या कोई तार है नायबजी?

—जी, माँजी! मैं तो पढ़ सकता नहीं। तब तारवाले ने कहा कि बाबू फर्स्ट डिविजन में पास कर गये हैं, यही खबर है। तारवाला इनाम के आसरे बाहर खड़ा है।

सुनते ही शैलजा ने बहू को छाती से लगा लिया—मेरी भली भाभी! तुम घर की लक्ष्मी हो। शिवू ने कुल का मुँह उज्ज्वल किया है।

ज्योतिर्मयी की आँखें सजल हो आयीं। गीली आँखों, ओंठों में हँसकर बोली—शिवू है कहाँ?

नित्तो झटपट ऊपर दौड़ी गयी—भैया को यह खुशखबरी सुना आऊँ, इनाम लूँगी उनसे।

इनाम का नाम आते ही ज्योतिर्मयी को तारवाले की याद आ गयी। बोलीं—इस तारवाले को क्या दे दिया जाय? दीवानजी, तारवाले को एक रुपया दे दीजिये।

धम-धम करते हुए शिवू सीढ़ी से नीचे उतर आया और झपटकर तार को लेकर पढ़ने लगा—पास्ड इन दि फर्स्ट डिविजन, माइ बेस्ट ब्लेसिंग्स—रामरतन।

शिवू की खुशी और भी बढ़ गयी। फूफी, यह तार मास्टर साहब ने किया है, मास्टर साहब ने। लिखा है, रामरतन।

—मास्टर साहब ने? वह कलकत्ता कैसे पहुँचे?—फूफी ने पूछा।

ज्योतिर्मयी ने कहा—गये होंगे किसी काम से।

फूफी ने कहा—रुपये देने से तो मास्टर साहब नहीं लेंगे। इस खुशी

में मैं उन्हें एक घड़ी और सोने की जञ्जीर दूँगी। गरीब होते हुए भी बेचारे ने गाँठ के पैसे से तार तो कर दिया है।

शिवू ने कहा—मैं यह खबर गोसाइं बाबा को दे आऊँ फूफी! मेरी साइकिल कहाँ है? नित्तो कचहरी में कह दे, मेरी साइकिल निकाल दे।

शिवू ऊपर चला गया।

शैलजा ने कहा—देवी-देवताओं को पूजा देनी होगी। बाबा बैजनाथ की मनौती के रुपये कपड़े बदलकर अभी ही निकाल दूँ। और देवताओं की पूजा तो समय पर ही हो सकेगी।

ज्योतिर्मयी ने कहा—वैशाख का महीना है, गाँव के सभी देवी-देवताओं को शाम का भोग दिलाने का प्रबन्ध करो।

—खूब याद दिलायी बहू, मुझे तो याद ही नहीं थी। मैं साफ स्वीकार करती हूँ कि सूझ में मैं तुम्हें नहीं लगती।

शिवू कुरता पहनकर आया। बोला—मेरे दोस्तों को लेकिन दावत देनी होगी। सब ने हिसाब जोड़ रखा है, तीस-एक रुपये लगेंगे। इतना कहकर शिवू चला गया। फूफी पूजा का रुपया निकालकर बाहर आयीं। बोलीं—संयोग से आज पगली बहूरानी यहाँ नहीं है। वह भी आज इस-उस चीज के लिये मचलती खुशी के मारे।

ज्योतिर्मयी स्नेह से मन्द-मन्द हँसकर रह गयीं। रतन आगे आकर बोली—मामी, अब बहू के बिना घर सूना-सूना लगता है। उसे ले आना चाहिये। वह अब निहायत छोटी भी तो नहीं रही, शायद ग्यारह पार कर गयी।

शैलजा ने कहा—बहू, एक खत तो लिख दो कि इसी वैशाख में वे बहू को विदा कर दें।

स्वाभाविक ढंग से हँसकर ज्योतिर्मयी ने कहा—अब कल लिखा जायगा।

शैलजा ने खिझकर कहा—तुम्हारी इस हँसी से जी जल जाता है बहू ! कल क्या लिखना, आज ही लिखो तो क्या बिगड़ जायगा ?

ज्योतिर्मयी बोलीं—अभी शिवू के पढ़ने के दिन हैं और बहू भी छोटी बच्ची है। और कुछ दिन मैके ही रहे। फिर यह भी तो एक बात है कि उसे हमलोगों ने भेजा भी कहाँ है, वही लोग जबर्दस्ती ले गये हैं। खुद से वही भेजें।

शैलजा ने कहा—बात तो ठीक है—लेकिन—पूरी बात कहे बिना ही वह चुप लगा गयीं। थोड़ी देर के बाद फिर बोलीं—अच्छा, तो शिवू के पास होने की खबर तो बहूरानी को दे दो। लिख दो कि वह बाबा विश्वनाथ को पूजा चढ़ाये। पचीस रुपये भी भेज दो यों उसकी नानी के कमी नहीं है, मगर हमारी भी तो बहू ही ठहरी !

सच पूछिये तो आज सचमुच ही नन्ही नान्ती के लिये फूफी के प्राण व्याकुल हो उठे हैं। अचरज ही है यह। नान्ती जब सामने थी, तो उसकी छोटी-सी भूल पर फूफी बिगड़ खड़ी होती थीं। किन्तु; आँखों की ओट होने पर बहूरानी के लिये उनकी ममता का अन्त नहीं है। उन्हें लगता है, शिवू की बहू अगर जरा ढींठ न हो, तो शोभेगी कैसे और जिद्दी तथा अभिमानी न हो तो शिवू को वश में ही कैसे करेगी ?

ग्रीष्म की धूप की तेजी अभी पहले-सी ही बनी है। लगता है, हवा आग के पारावार में नहाकर बहती है। वैसी ही धूप में शिवू चला जा रहा था। साइकिल जोर से चल रही थी, उसपर भी उसे जैसे तृप्ति नहीं मिल रही थी। रेसमें जैसे सवार घोड़े पर बैठते हैं, वैसे ही झुक-सिँकुड़कर शिवू मार-मार पैडिल कर रहा था। यों भी साइकिल या घोड़े पर वह धीमे नहीं चलना चाहता, खुले मैदान में तेज-से-तेज घोड़े को दौड़ाने या बार-बार एक ही घेरे में घूम-घूमकर चलने की उसे आदत है। उस पर आज खुशी की इस अतिशयता से मन की गति बेरोक हो उठी है।

उसे हेडमास्टर साहब की बात याद आ रही थी। जिस दिन लड़के परीक्षा देने के लिये विदा हो रहे थे, उन्होंने कहा था, वेल् माइ ब्यॉज, आइ विश यु सक्सेस इन दि एक्जामिनेशन, गुड लक इन लाइफ ! पिछले दस वर्षों से तुमलोग इस विद्यालय में पिंजड़े के पंछी जैसे बन्द पड़े थे। अब तुम्हारे डैनों में बल आया है, स्वर में लय-तान मिली है, इसीलिये हम तुम्हें पृथ्वी के विस्तृत आँगन में मुक्त किये देते हैं। विश्वविद्यालय जाकर तुमलोग सफल-मनोरथ होओ ! अब तक तुम गाँव को जानते रहे, अब देश और दुनिया को जानो, अपने-अपने जीवन के लिये उपयुक्त पथ का निर्माण करो। अब तुम लड़के नहीं—जेंट्लमैन—जेंट्लमैन एट लार्ज होगे।

अब वह बालक नहीं, किशोर नहीं—एक सज्जन है, जिसके लिये हर जगह सम्मान का स्थान सुरक्षित है। साइकिल तेज जा रही थी, अगल-बगल की वस्तुएँ तेजी से पीछे भागती जा रही थीं। शिवू को लग रहा था, सब लोग प्रशंसा की आँखों से उसे देख रहे हैं। यकायक आप-ही-आप उसकी गति धीमी हो आयी। एक दर्दभरा श्वास छोड़कर वह साइकिल पर सीधे बैठ गया। उसे अपनी बहू याद आ गयी—नान्ती, गौरी। आज वह होती तो अचरजभरे कौतुक से घूँघट की ओट में बार-बार हँसती हुई उसे देखती। वह जरूर कह बैठती—अरे, उससे क्या पास करते बनता, यह तो मेरे भाग्य से पास हो गया। सोचा, उसे आज एक खत लिखूँगा। मन फिर चौकन्ना हो उठा—केवल उसे ही नहीं, बहुत-बहुत को पत्र लिखना पड़ेगा। जहाँ जो-जो—

'हो हरी गाड़ी के सवार !'—पीछे से किसी की आवाज तैरती आयी—

शिवू ने ब्रेक लिया। कमलेश के सिवा यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। दोनों की साइकिलें एक साथ ही खरीदी गयी थीं। कमलेश की साइकिल का रङ्ग चाकलेट था, शिवू का हरा। जब कभी कमलेश पीछे छूट जाता, तब यही कहकर पुकारा करता। बेचारा ! नान्ती को लेकर अनबन हो जाने के बाद

से शिवू के घर नहीं गया है कभी। उसके जी में भी कचोट-सी होती है।

कमलेश की साइकिल पास आकर रुक गयी। शिवू ने हँसकर पूछा—खबर मिल गयी?

—बेशक। ऐसा नहीं होता, तो किसी भागते हुए आदमी को पकड़ने के लिये कोई इतना क्यों दौड़ता? खैर, इस तरह बेतहाशा जाना कहाँ हो रहा है?

—मन्दिर। जरा देवी को प्रणाम कर आऊँ, गोसाईं बाबा को यह समाचार कह सुनाऊँ।

—चलो।

जाते-जाते कमलेश बोला—चलो न, कुछ दिनों के लिये। एक बार घूम आया जाय। मामाजी आये हैं न, बोले, शिवू के साथ दो-चार दिन को काशी से घूम आओ।

शिवू ने दीर्घ निश्वास फेंककर कहा—अभी वायदा नहीं कर सकता।

—इसमें फिर सोचने की कौन-सी बात है?

—बहुत है। वह पीछे देखा जायगा। मन्दिर आ पहुँचा था। दोनों साइकिल से उतर पड़े।

आश्रम चारों ओर से घने जङ्गलों से घिरा है—तन्त्र साधना का बड़ा ही पुराना स्थान। सदा जलती रहनेवाली धुनी के सामने एक आसन पर रामजी बाबा बैठे थे। मन्दिर के कई पुजारी पास बैठे वार्तालाप कर रहे थे। शिवू आँधी के समान जाकर बोला—गोसाईं बाबा, मैं फर्स्ट डिविजन में पास कर गया।

साधु आसन से उठ बैठे और जैसे किसी मासूम बच्चे को कोई गले लगाता हो, वैसे ही शिवू को गले लगाकर बोले—शाबाश, जीते रहो बेटा।

शिवू ने कहा—जरा छोड़िये भी तो, आपके पाँव छूकर प्रणाम करूँ, देवी को प्रणाम कर लूँ!

संन्यासी ने उसे आशीर्वाद देते हुए देवी के गले की माला भेंट दी। बोले—बस, अब राज करो बेटे, बाप-दादे की गद्दी सम्हालो। दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करो।

कमलेश मंद-मंद हँस रहा था। शिवू ने कहा—मैं तो अभी और भी पढ़ूँगा बाबा!

—और पढ़ोगे बेटा! वाह, वाह! यह तो और भी अच्छी बात है! लेकिन; तुम्हारी सम्पत्ति की देखभाल कौन करेगा?

—तो क्या जमींदारी सम्हालने की उम्र मेरी हो गयी?

बाबा जोर से हँस पड़े—अरे, बाप रे बाप, अब भी तुम बच्चे ही हो! जानते हो, अकबर बारह वर्ष की उम्र में बादशाह बना था। लिखना-पढ़ना भी नहीं जानता था। तब भी जानें कितनी लड़ाइयाँ जीतीं। तुम्हारे सारे हिन्दुस्तान को जीत लिया था।

कमलेश ने कहा—छत्रपति शिवाजी भी लिखे-पढ़े नहीं थे।

नाम सुनते ही बाबा ने हाथ जोड़कर उनके प्रति नमस्कार किया। बोले—बाप रे बाप, शिवाजी महाराज—वह तो भवानी के वरपुत्र थे और जिजाबाई भवानी मैया की सहचरी थीं—जया या विजया, क्या कोई होंगी! उन्होंने तो हिन्दूधर्म की डूबती नाव को बचा लिया। जब हमारी फौज पूने में थी भैया, मैंने उनकी कीर्ति देखी थी।

शिवू ने कहा—आज शाम को आपको आना पड़ेगा—लड़ाई की कहानी सुनानी होगी।

संन्यासी फौजी ढङ्ग से छाती फुलाकर खड़े हो गये, बोले—टननशन। कमलेश ने हँसकर कहा—एटेनशन।

शिवू मुड़े बिना ही बोला—मालूम है। वह मुग्ध नेत्रों से संन्यासी के वीर रूप को देख रहा था। उन्होंने फिर कहा—राट बाट ट्रन। और कहने के साथ राइट एबाउट टर्न होकर हँसते हुए कहने लगे। अच्छा, शाम को हम

क्विक मार्च करके जायँगे। तुमलोग अब क्विक मार्च करो। लो, बिगुल बजा। मुँह से वे बिगुल की हू-बहू नकल कर लेते थे—किन्तु बिगुल बजाने का मौका न मिला। अचरज से किसी की ओर देखकर वे बोले—अरे रे, तू रो क्यों रही है माई?

शिवू और कमलेश, दोनों ही ने मुड़कर देखा, पीछे खड़ी छोटी जाति की एक प्रौढ़ा स्त्री चुपचाप आँसू बहा रही थी। कमलेश ने घबराकर पूछा—फेकू की माँ, रोती क्यों है?

फेकू कमलेश का नौकर है—गाय-गोरू का सेवा-जतन करता है। कमलेश को देखकर वह फूट पड़ी—ओह, भैयाजी, फेकू तो पास ही मैदान में बेहोश पड़ा है। संन्यासी बाबा से कह दीजिये, अपनी गाड़ी जरा दे दें।

बहुत पूछताछ के बाद यह पता चला, फेकू मालिक के ही काम से कुमारबाड़ी गया था, जो वहाँ से कोई तीन कोस पर था। लौटते समय देवीमन्दिर के पास ही अस्वस्थ हो गया। बेहोश पड़ा है। जब यह खबर मिली, तो उसकी विधवा माँ और स्त्री, दोनों दौड़ी आयीं। किन्तु; उतने बड़े जवान को उठा ले जाना उन दोनों के वश की बात नहीं थी। इसीलिये बहू को उसके पास छोड़कर माँ यहाँ दौड़ी आयी है। उसने कमलेश के पाँव धरकर रोते हुए कहा—भैयाजी, गुंसाई बाबा से आप कह दो, कह दो भैया।

मगर कमलेश को कहना नहीं पड़ा। बाबाजी खुद बोल उठे—अरी दईमारी, रोती क्यों है? चल, मैं तेरे लड़के को देखता हूँ चलकर और अपने से ही बैलों को खोलकर उन्होंने गाड़ी जोती।

शिवू ने कहा—जरा रुक जाइये, थोड़ा पुआल बिछा दूँ। बाँस निकल आये हैं—पीठ में गड़ेंगे।

जैसे अभी-अभी कोई पेड़ काटा गया हो, ऐसी दशा में वह लम्बा-तगड़ा जवान जमीन पर पड़ा था। सिरहाने के पास भय और उद्वेग से जवान

बहू मिट्टी के पुतले-सी बैठी थी। बीच-बीच में रोगी नकियाकर पानी माँग रहा था।

लाल रोड़ियोंवाला सपाट मैदान जैसे धू-धू कर रहा था। वैशाख की तीखी लू, खासकर इस साल की, शरीर के जलीय अंश को जैसे सोखती जा रही थी। आस-पास कहीं पानी की एक बूँद न थी। संन्यासीजी ने पूछा—माई, पानी कहाँ से ले आयी?

बहू चुप रही। माँ ने ही कहा—पानी कहाँ से लाऊँ बाबा!

शिवू ने झिड़ककर कहा—तो वहीं कहना चाहिये था न कि पानी माँगता है। जाता हूँ, साइकिल से ले आता हूँ जाकर।

संन्यासीजी ने अँगुली के इशारे से दिखाकर पूछा—तब वह पानी कहाँ से आया? मिट्टी जो भींगी है; वह?

वह तो उल्टी की है बाबा। ऊख का रस पी गया था, इस धूप में खौल उठा पेट में और कै कर बैठा। कई बार टट्टी भी गया है।

निश्चेष्ट पड़े-पड़े शिवू ने कहा—चाँर बाँर। और उसने हाथ उठाकर अँगूठे को मोड़कर चारों अँगुलियाँ दिखायीं। दूसरे ही दम उसका हाथ खुद झूल-सा पड़ा।

—उल्टी भी हुई है! एक दीर्घ निश्वास छोड़कर संन्यासीजी बोले—हाय-हाय, ऐसा जवान, एक ही धक्के में—आह!

इतने में शिवू की साइकिल आकर रुकी। उसने कहा—पाँनी ले आया। व्याकुल होकर फेकू ने हाथ पसार कहा—पाँनी, दो, पाँनी दो।

माँ के हाथ से उसने पात्र को छीन लिया और गटगट पानी पीने लगा। उसकी वह प्यास जैसे बुझने की नहीं, इस जलते हुए प्रांतर की तरह मानों वह एक मेघ को ही पी लेगा!

फेकू की माँ ने पूछा—अब उठ सकेगा बेटा? धीरे-धीरे गाड़ी तक चल तो। संन्यासीजी ने रोक दिया—ठहरो, मैं गाड़ी पर चढ़ा देता हूँ।

उन्होंने फेकू के विशाल शरीर को एक बच्चे की तरह उठाकर गाड़ी पर रख दिया। पूछा—फेकू की माँ, तू गाड़ी ले जा सकेगी ?

जरा संकोच के साथ वह बोली—जी हां, ले जाऊँगी। हम छोटी जात की औरत हैं।

संन्यासीजी ने गम्भीर होकर शिवू और कमलेश से कहा—अपने घर चले जाओ। उसको मत छूना।

—क्यों ?

—उसको हैजा हो गया है बेटा !

—हैजा ? मगर आपने तो छुआ ?

हँसते हुए उन्होंने उत्तर दिया—हः-हः, मैं संन्यासी जो ठहरा। मैं मर भी जाऊँ तो किसी का क्या नुकसान होगा, मेरे लिये दुःखी भी कौन होगा ?

शिवू की आँखें भर आयीं। उसने अपना मुँह फिरा लिया और और साइकिल के पैडिल पर पाँव रखा। संन्यासीजी ने पुकारा—बेटा, जरा सुन ले, सुन।

शिवू मुँह उसी ओर किये खड़ा हो गया। संन्यासीजी ने कहा—मैं भी इसका उपाय करूँगा बेटा ! गरम पानी से सारा बदन धोकर खूब चूना मलूँगा, फिर भसम मलूँगा।

शिवू और कमलेश अचम्भे में आ गये। उन्हें स्वास्थ्य-विज्ञान की बातें याद हो आयीं।

शिवू ने गर्दन हिलाकर कहा—गुँसाई बाबा, आप जरूर झूठ कहते हैं कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं !

संन्यासीजी 'हो-हो' करके हँस पड़े—अरे बेटा, मैंने न क ख पढ़ा, न ए० बी० सी०। यह सब तो मैंने फौज में सीखा है, फौज में।

साइकिल पर चढ़ते हुए शिवू ने कहा—शाम को आइये जरूर।

—आज तो बस क्षमा कर दो बेटा, आज अब न जा पाऊँगा।

शिवू संन्यासीजी की बात पर एतराज करने जा रहा था, किन्तु, कमलेश बोल उठा—आज शाम को समिति की एक बैठक फिर से नहीं बुलायी जा सकती?

ठीक ही तो। शिवू का मन उत्साह से लबालब हो गया। उसने संन्यासीजी से कहा—खैर, आज नहीं तो कल ही सही।

छुट्टी पाकर उन्होंने सन्तोष की साँस ली। उन्होंने काल का स्पर्श किया है, उसका कौन ठिकाना, शायद कहीं एक-आध कण छिपा रह जाय! वहाँ जाते ही तो शिवू लपककर लिपट जायगा।

मन्दिर पहुँच कर उन्होंने आवाज दी--भोला, थोड़ा-सा चूना तो ले आ—और एक घड़ा पानी उबाल दे।

दाँत पीसकर भोला मन-ही-मन कह उठा—जरा इनकी सुनिये, इस सिद्दत की गरमी में घड़ा भर गरम पानी चाहिये!

किसी दूसरे को सम्बोधित करके संन्यासीजी ने कहा—अरे ओ सिरपत, एक चिलम गाँजा तैयार कर।

चौदह

दूसरे ही दिन तड़के खबर मिली—फेकू डोम गुजर गया। यही नहीं, रातोंरात दो दूसरे आदमियों ने भी खाट पकड़ी—एक तो फेकू की नवजवान बीबी, दूसरा एक और कोई।

केवल इसी गाँव में क्यों, जिलेभर में महामारी शुरू हो गयी। इस ग्रीष्मकाल का इतिहास एक दर्दनाक कहानी बनकर आज भी लोगों के मन में जड़ा है। भोर होते-न-होते द्वादश सूर्य का उदय हो जाता, लगता, मारे धूप के धरती फटकर चौचीर हो जायगी। जहाँ भी देखिये, हरियाली का नाम नहीं, सुदूर दिगन्त तक फैला हुआ प्रांतर—कहीं घास नहीं, गेरुआ मिट्टी तपकर जैसे और लाल हो उठी है। ऐसा लगता है, किसी प्यासी राक्षसी ने प्यास से तड़पकर अपनी विशाल जीभ बाहर फैला दी है।

सारा इलाका अनाज और पानी से खाली है। यह महामारी जैसे आग की लपट के समान प्रांतर की सूखी घास को जलाती हुई एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गयी है।

फेकू की माँ जार-बेजार रो रही थी। ओसारे में एक ओर हैजे की शिकार उसकी बहू तकलीफ से छटपटा रही थी और अपने कपड़े की कोर से फड़वी फाँकते हुए फेकू का छोटा भाई कह रहा था—और इस साली की नकल देखो, तमाम घर को घिना दिया। टट्टी के लिये हरामजादी घाट क्यों नहीं जाती?

इतने में शिवू जाकर आँगन में खड़ा हो गया। सुबह का स्कूल था, समाज-सेवक-समिति के दूसरे सदस्य स्कूल गये हुए थे। शिवू को देखते ही फेकू की माँ फुक्का फाड़कर रो उठी—अब मेरी कौन-सी गत होगी बाबू ? यह पापी पेट कैसे चलेगा ?

शिवू ने दिलासा दिया—फेकू की माँ, डरती काहे को हो ! भगवान के हाथ बड़े लम्बे हैं।

—मगर आज तो घर में एक भी दाना नहीं। इस खाली पेट में क्या डालूँगी मैं ?

आज का भी दाना नहीं ! शिवू दंग रह गया। इन बेचारों के पास एक दिन के लायक भी दाना नहीं है।

रोते-रोते ही फेकू की माँ सारा ब्योरा बताती जा रही थी—घर में अनाज थोड़ा-सा था जरूर, मगर वही बेचकर तो फेकू की लाश ढोनेवालों को दो रुपये दिये गये। महज चार आने रह गये थे, जिसके दो आने तो फेकू के बड़े भाई ने झटक लिये, दो आने छोटा भाई ले गया। यह उन दोनों का हिस्सा था। फिर जब घर ही में हैजा है, तो विना शराब के वे जियेंगे कैसे ?

शिवू ने डाँटकर लड़के से कहा—अबे लौण्डे, पैसे अपनी अम्मा को दे दे। दाने नसीब नहीं होते हैं, हरामजादा शराब पीने चला है !

वह लौण्डा कूदकर भाग गया। उधर बहू की करुणाभरी चीख सुनाई दी—पानी, पानी ! उसकी आवाज अभी नकियायी नहीं थी। हाथ में एक खाली चुक्कड़ था। पानी खत्म हो चुका था

शिवू बोला—फेकू की माँ, थोड़ा पानी उसे दे।

वह बोल उठी—अरे बाबा, मेरे हाथ-पाँव तो पेट में जा लगे हैं। मैं खाऊँगी क्या ?

—खाने की फिकर छोड़। मैं कर दूँगा तेरे लिये चावल का इन्तजाम।

'शिवू !'

शिवू ने चौंककर देखा, पीछे फूफी खड़ी हैं। साथ में किसन और नायबजी।

शिवू बोला—नाहक तुम क्यों आ गई ? फूफी, मैं चलता हूँ।

—चलता हूँ नहीं, बस मेरे साथ चल।

शिवू ने कुछ भी आपत्ति नहीं की, उनके साथ हो लिया। रास्ते में एक आदमी बड़बड़ाता आ रहा था—डेढ़ कौवे बोल रहे हैं—खा-खा-खा। अरे बाबा, खा ही ले। खा। और वह अजीब ढंग से हँस उठा—हा-हा-हा !

यह उस मुहल्ले का ही एक भले घर का लड़का है। गँजेड़ी है। दिमाग ठिकाने नहीं। हैजे का फैलना सुनकर खुशी से पागल हो उठा है। इसी से चारों ओर चीखता-चिल्लाता चल रहा है। शिवू को देखकर तो उसका कौतूहल जैसे और भी बढ़ गया। जब शिवू और लोगों के साथ आगे निकल गया, तब वह फिर चिल्ला उठा—खा, इन बाबुओं को खा। ऐसा खा कि इनका नाम-निशान न रहे।

फूफी की एड़ी-चोटी सिहर उठी, पर शिवू हँस पड़ा। फूफी बोलीं—अरे, तू हँसता है ! किसन, बुला तो जरा इस कमीने को।

शिवू ने रोककर कहा—रहने दो। कोई कहता है, तो कहे। किसी के कहने से दुनिया में थोड़े ही कुछ होता है ?

—मगर यह बता कि तू उसके घर क्यों गया ?

—उसके घर जाने से बिगड़ा ही क्या ? रोग के पाँव थोड़े ही हैं कि दौड़कर पकड़ लेगा ?

—तुझे मालूम है ?

—मालूम है। मैंने पढ़ा है। जी चाहे गोसांई बाबा से पूछ देखो। आदमी रोगी को छुए भी तो कुछ नहीं होता, बशर्ते कि वह सावधान हो।

डर से जैसे काँप उठीं फूफी। बोलीं—तो तू ने रोगी को छुआ तो नहीं है?

मैं क्यों छूने लगा! कल गोसाईं बाबा ने फेकू को गोद उठाया था। फिर चूना मलकर गरम पानी से सारे शरीर को धो डाला। यह सब उन्हें फौज में सिखाया गया था न!

फूफी और कुछ न बोलीं। चलते-चलते कहने लगीं—जरा यह अशुभ पुकार तो सुनो—खा-खा-खा! भले घर का लड़का है और और…।

देखो माँ जी, एक वह भले घर का लड़का है और एक हमारे बाबू हैं। ईश्वर करे, ये जुग-जुग जियें, सोने की दावात-कलम हो। इनकी तरह गरीबों के दुःख में कौन खड़ा होगा, बोलो।—पीछे लगी फेकू की माँ कहती आ रही थी।

फूफी ने पूछा—तू कहाँ चली?

—जी, बाबू ने चावल के लिये कहा है।

—तेरे चलने की जरूरत नहीं, मैं भिजवाती हूँ अभी।

फेकू की माँ लौट गयी। फूफी ने कहा—शिवू, तेरे लिये या तो मैं गले में फाँसी डालूँगी या पत्थर पर सिर पटक लूँगी।

शैलजा जिद पकड़ बैठीं—अच्छा बोल, मेरे पैरों पर हाथ रखकर बोल कि फिर तू किसी रोगी के घर नहीं जायगा।

शिवू चुप रहा। उसके कानों में अभी भी वे बातें गूँज रही थीं—जुग-जुग जियें, सोने की दावात-कलम हो, इनकी तरह गरीबों के दुःख में कौन खड़ा होगा? आखिर इन बेचारों की जान क्या इसी तरह जायगी? उफ़, यह मौत कितनी खौफनाक है, कितनी कठोर!

शैलजा बोलीं—तू बोल, मेरे पैरों पर हाथ रखकर बोल।

अबकी शिवू कह उठा—तुम यकीन मानो फूफी, इससे कुछ नहीं होता। कहीं जाने से ही कुछ नहीं बिगड़ता है।

फूफी बहुत ही आक्रोश-भरे स्वर में बोलीं—उह, महान पुरुष की माँ बनने की साध है, महान् पुरुष की माँ! बड़ी आयी हैं रत्नगर्भा। जाओ बाबा, मैं कुछ नहीं जानती, तुम माँ-बेटे के जो जी में आये, करो।

फूफी और भी कुछ कहतीं कि नायबजी आ धमके—आपने क्या आफत कर दी है बाबू? वहाँ कोई सौ आदमी आ जुटे हैं—उन्हें चावल चाहिये। कहते हैं, गाँव में कहीं मजूरी नहीं मिली। बाबू हमें खाने को देंगे।

फूफी ने शिवू से कहा—सुना तू ने? उनके मुहल्ले में हैजा हुआ है। इसी से किसी ने उन्हें मजूरी भी नहीं दी। और तू उन्हीं के घर जाने को तैयार है?

शिवू, कुछ बोला नहीं, बाहर चला गया। फूफी ने नायबजी से पूछा—यह तो बड़ी मुसीबत आ गयी सिंहजी, क्या करूँ मैं, इसे कैसे रोकूँ?

नायबजी बोले—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ माँ जी, बड़ी मुसीबत है! रोग भी जो-सो नहीं, महामारी!

शैलजा ने कहा—खैर, आप यहाँ का प्रबंध करें। मैं शिवू और बहू को लेकर कुछ दिनों के लिये कहीं चली जाऊँगी। न होगा तो, पास ही शहर में किराये पर रहूँगी।

नायबजी इस पर राजी हुए। बोले—जी, यह अच्छी तरकीब है।

इतने में ज्योतिर्मयी आ पहुँचीं। फूफी ने कहा—देखो बहू, तुम इसे नकार न देना कहीं। शिवू को लेकर कहीं चले नहीं जाने से मुसीबत है।

—ठीक है। जब तुम्हारी ही हिम्मत छूट रही है, तो मेरी क्या बिसात! मगर अभी ये जो मदद के लिये जमा हो गये हैं, इनका···

बात पूरी तो नहीं हो पायी, पर इशारे से आशय पूरा हो गया।

शैलजा बोलीं—उन्हें तो कुछ देना ही पड़ेगा। जब वे द्वार पर आ गये हैं और वे शिवू के भरोसे आये हैं, तो टालने का उपाय भी क्या है? सौ एक आदमी होंगे, सिंहजी? ढाई मन चावल उनमें बाँट दीजिये।

फूफी ने सतीश और नित्तो को चावल ढोने के लिये कहा। वे खुद कचहरी में उपस्थित हुईं। देखती क्या हैं कि वहाँ सिर्फ मुसीबत के मारे गरीबों की ही भीड़ नहीं है, बहुत-से लड़के भी शिवू को घेरकर बैठे हैं। कमलेश भी है, और तो और, यात्रा-थियेटर के पीछे पागल रहनेवाला वह बड़े-बड़े जुल्फोंवाला कायस्थ का लड़का भी है। दस-बारह वर्ष का श्यामू, वह भी उसमें मौजूद है। लम्बी जुल्फोंवाला वह लड़का ही उस समय कह रहा था—तो इसके लिये कोई गीत-वीत तै करो, हरे राम से भीख थोड़े माँगी जायगी!

—भीख माँगी जायगी? भीख किस बात की शिवू?

—इन गरीबों को खिलाने के लिये हम भीख माँगेंगे फूफी।

—भीख नहीं माँगनी पड़ेगी, मैं चावल दिलाती हूँ।

—वह तो आज दे रही हो न? मगर एक दिन से क्या होता है? जाने कितने दिनों तक ऐसा करना पड़े। इसलिये हमलोगों ने घर-घर मांगने की सोची है।

सतीश और नित्तो चावल ले आये, रखने की जगह पूछी।

शिवू ने अपनी धोती का अगला हिस्सा पसारकर कहा—इसी में डाल दो फूफी। पहली भीख तुम्हीं दो।

यह कुछ वैसी बात तो थी नहीं, पर पता नहीं क्यों, फूफी के मन में यह एक असाधारण रूप ले बैठी। भावावेश में उनका गला रुँध गया। उन्होंने मौन होकर काँपते हाथों सारा चावल शिवू की धोती पर उफ्ल दिया।

नन्हा-सा श्यामू, उसे भी उस भावावेश की जैसे हवा लग गयी। तालियाँ बजाकर बोल उठा, जय, फूफी की जय!

फूफी एक अजीब दशा लिये अन्दर गयीं, जैसे एकान्त असहाय, अवसन्न हो पड़ी हों; लेकिन उनके मन में न तो कोई क्षोभ था, न क्रोध।

बोलीं—बहू, मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि शिवू कहीं चलने को राजी होगा।

—जरूर जायगा। तुम कहो और वह न जाय, ऐसा हो नहीं सकता।

—यही होगा भाभी। तुम भी कहोगी तो वह जाने का नहीं। मगर मेरा शिवू कोई बुरा काम नहीं कर रहा है। आज लक्ष्मी जनार्दनका पादोदक और प्रसाद लाकर रखना, आज स्नान के बाद उसके माथे से छुला दूँगी।

तीसरे पहर तक गाँव की दशा और खौफनाक हो उठी। और भी चार आदमी रोग के शिकार हो गये। रोग डोमों के मुहल्ले से मोची और बावरी मुहल्लों में भी फैल गया। शिवू छिपा-छिपा एक बार गाँव में घूम गया। तमाम सन्नाटा! लोग चुपचाप कल के खिलौने की तरह अपना काम कर रहे थे। मोची टोले में दो, बावरी टोले में एक और डोमटोली में और एक नया आदमी शय्याशायी हुआ है। फेकू की बहू अभी भी बच रही थी। पीड़ा के मारे छटपटाती हुई पानी-पानी चिल्ला रही थी।

घर में दूसरा कोई न था। फेकू की माँ अपने दोनों लड़कों के साथ कहीं भाग गयी। वह बेचारी नौजवान औरत छटपटाती हुई बरामदे की धूल में आ गयी थी, सारी देह धूल से सन गयी थी, बिखरे केश मिट्टी से धुमैले हो गये थे। उसकी दशा देखकर शिवू की आँखें सजल हो गयीं।

वह बोल उठी—बाबूजी, थोड़ा पानी, पानी। उसने अपनी प्यासी जीभ बाहर निकाल दी। शिवू सोचने लगा, इसे पानी कहाँ से लाकर दूँ, कि किसी ने पीछे से कहा—बाबू, आप यहाँ से निकल चलो, नहीं तो मैं फूफी को खबर दूँगी।

यह थी उसके चरवाहे शम्भू की माँ। शम्भू की तीन पुश्तें इस घर की

नौकरी में रही हैं। शम्भू की माँ भी उसके यहाँ जूठन उठाती है। शिवू को यहाँ देखकर उसे लिवा जाने को वह चली आयी है। शिवू को एक सहारा-सा मिल गया। बोला—शम्भू की माँ, कहीं से थोड़ा पानी तो ला दे।

—नहीं, तुम घर लौट चलो, नहीं तो मैं फूफी से कहती हूँ जाकर।

—तू पहले पानी ला दे, फिर मैं चलता हूँ।

—तो क्या तुम उसे छुओगे ?

—नहीं रे पगली, तू ला तो पानी।

शम्भू की माँ कहीं से एक चुक्कड़ पानी ले आयी। खुद ही कुछ बढ़कर पानी रखती हुई बोली—पी, यह रहा। उसके बाद शिवू से कहने लगी—अब तुम चलो बाबू !

शिवू ने पानी के पात्र को रोगी के और नजदीक कर दिया। जाते-जाते शम्भू की माँ से बोला—भला इतनी दूर रख देने से वह पानी कैसे पीती ?

—आप ही लुढ़ककर आ जायगी बाबू ! तुम भी मगर क्या जीव हो ! दैया रे दैया, डर-भय तो छू नहीं गया है ! अरे, रुक क्यों गये फिर ?

फेकू की बहू पशु की तरह पात्र में मुँह रोपकर पानी पीने लगी।

शिवू ने शम्भू की माँ से कहा–देख, फूफी से यह सब मत कहना, हाँ ?

शिवू भी पोखरवाले रास्ते से अपनी कचहरी में दाखिल हुआ। देखा, सदर दरवाजे से एक पुलिस और उसके पीछे-पीछे दो नौजवान अन्दर आ रहे हैं। सिपाही ने सलाम करके शिवू से कहा—आपकी खोज में ये दो सज्जन आये हैं, दारोगा बाबू ने इन्हें भेज दिया है।

दोनों नौजवानों में एक, जो दूसरे से उम्र में कुछ बड़ा था, बोला—आप ही शिवनाथ बाबू हैं ?

उत्सुक होकर शिवनाथ बोला—जी हाँ, शिवनाथ मेरा ही नाम है। आप ?

—हमलोग डाक्टरी के छात्र हैं। आपके यहाँ हैजे के इलाके में सेवा करने के लिये स्वयंसेवक होकर आये हैं।

—मेडिकल वालण्टियर! आशा, उत्साह और साहस से वह भर उठा।—कहाँ से आ रहे हैं?

—अभी तो सिउड़ी से, मगर आये हैं हमलोग कलकत्ता से। जिला बोर्ड के चेयरमैन महोदय ने हैजे के इलाके में सेवा के लिये एक अपील छपवायी थी। उसी को देखकर हमलोग आये। आज सवेरे इस इलाके के बारे में खबर लगी। दारोगा बाबू ने आपका नाम लेकर बताया—उन्हीं से सारी बातों का पता चलेगा। हाँ, यह तो बताइये, यहाँ कितने मरीज हैं?

—अभी कुल छः, एक रात ही चल बसा।

—चलिये, जरा देख आया जाय।

—मैं तो देखकर ही लौटा आ रहा हूँ।

—खैर, हमलोगों को दिखा दीजिये।

—कुछ नाश्ता तो कर लीजिये, कम से कम एक प्याला चाय?

—नाश्ता करूँगा, लेकिन एक बार उन्हें देख आऊँ। हाँ, हमलोग रहेंगे भी आप ही के यहाँ। थाने में रहना अच्छा नहीं लगता।

शिवू गद्गद् हो गया। सिर्फ गद्गद् कहना भी सही नहीं होगा, जरा देर पहले जो आशा-उत्साह उसमें समाया था, वह दूना हो गया। उसने पूछा—सच, आप लोग यहीं ठहरेंगे?

—हाँ, यहीं ठहरेंगे। दो आदमी भेज दीजिये; नहीं-नहीं, सिपाहीजी तो खड़े ही हैं—आप जरा दारोगा बाबू से कह देंगे कि वे हमलोगों का सामान यहाँ भिजवा दें। हमलोग यहीं रहेंगे।

सिपाही चला गया। वे लोग भी गाँव में निकल पड़े, घर-घर घूमकर देखते रहे। वे अन्तमें जब फेकू की बहू को देखने पहुँचे, तो देखा, वह बेचारी लुढ़ककर जाने कब आँगन में गिर पड़ी है।

अचम्भे में आकर डाक्टर ने पूछा—और इस घर के लोग-बाग कहाँ हैं?

—कोई नहीं है, सभी भाग गये।

डाक्टर चुप हो गया। मिट्टी में लथपथ उस तरुणी को उसने उठाकर एहतियात से बिस्तर पर सुला दिया और अपने साथी से कहा—सुई तैयार करो।

वे सुई देने लगे और शिवू रोगी के सिरहाने बैठकर उसके मुँह में पानी देने लगा। डाक्टर ने कहा—देखिये, रोगी को छू रहे हैं, वह हाथ भूलकर मुँह में न डालें। इतनी सावधानी जरूरी है। घर जाकर दवा से हाथ को धोना होगा, कपड़ों को भी।

शिवू जब लौटा, तो फूफी कचहरी में गम्भीर खड़ी थीं। उसने उन पर ध्यान नहीं दिया। हँसकर बोला—फूफी, ये डाक्टर हैं, कलकत्ता से हैजे के मरीजों की चिकित्सा और सेवा करने को यहाँ आये हैं। उफ, अभी जिस जतन से इन्होंने रोगियों को देखा··· किस कदर ये मरीजों को छू रहे थे कि तुम देखतीं तो···

—और इनके साथ-साथ तुमने भी रोगियों को छुआ?

शिवू से पहले ही डाक्टर कह उठा—डरने की बात नहीं फूफी, दवा से हाँथ-पाँव धो लिया जायगा—यहाँ तक कि कपड़ों को भी दवा में बोर देंगे। आप निश्चिन्त रहें।

फूफी को थोड़ा भरोसा हुआ। बोलीं—यह बड़ा शरीर है बेटा! खैर, तुम लोगों को देखकर जी-में-जी आया। हाँ बेटा, तुम्हारा नाम क्या है भला?

—मुझे सुशील कहते हैं, उसका नाम पूरन है, और आप हुईं हमलोगों की फूफी। हमलोगों को बहुत-सा गरम पानी चाहिये।

फूफी जल्द-जल्द अन्दर चली गयीं। सतीश और किसन उनके पीछे हो लिये।

पन्द्रह

सुशील मेडिकल कालेज का छात्र है। अपनी अन्तिम परीक्षा वह दे चुका है, नतीजा अभी नहीं निकला। पूरन कैम्पबेल मेडिकल स्कूल में पढ़ता है, अभी एक साल की पढ़ाई उसकी बाकी है। पूरन बड़ा ही शान्त, सुशील लड़का है, बहुत कम बोलता है, बात-बात में हल्की हँसी हँसकर रह जाता है। सुशील है ठीक उसका उलटा, गजब का लड़का, जीवन की राह पर जैसे उसके लिये कहीं-कोई रुकावट ही नहीं, किसी भी बात के कहने में उसे कोई हिचक नहीं होती। जब उसे यह मालूम हुआ कि शिवनाथ का व्याह हो गया है, तो बोला—एँ, शिवनाथ बाबू की शादी हो गयी है? राम-राम, यह आप क्या कह रही हैं?

शिवनाथ कुछ शर्मिंदा हुआ। पूरन ओंठों पर हँसी की रेखा लिये खड़ा था। ज्योतिर्मयी भी हँसने लगीं। किन्तु फूफी बिगड़ उठीं। बोलीं—क्यों बाबा, इसमें राम-राम की क्या बात! व्याह ही तो किया है शिवू ने? व्याह इस दुनिया में किसका नहीं होता?

किन्तु सुशील इस बात से अप्रतिभ नहीं हुआ। उसने कहा—इतना जल्द शादी? अभी तो शिवू की पढ़ाई भी खत्म नहीं हुई, कमाने की बात तो बड़ी दूर है!

—शिवू नहीं भी कमायेगा तो बहू का भरण-पोषण मजे में होगा। और इस नये जमाने की पुरखिन बहू हमलोगों के घर नहीं चल सकती।

—कहने को आप चाहे जो कह लें फूफी, बाल-विवाह किसी भी हालत में अच्छा नहीं होता। डाक्टरी के हिसाब से भी वह खराब कहा गया है।

—लेकिन कविराजी शास्त्र में तो इसकी मुमानियत नहीं है। उसमें तो गौरीदान ही उचित लिखा है।

सुशील खिलखिलाकर हँस पड़ा—तर्क में फूफी कभी परास्त नहीं हो सकतीं। खैर, जाने भी दीजिये, दिखाइये कहाँ है बहू। उन्हें तो शायद अन्दर आपने बुर्के में बन्द रखा है?

फूफी का मन इससे ठण्डा नहीं हुआ। बोलीं—क्या हम लोग बुर्के में हैं बेटा, या खिड़की-दरवाजा बन्द करके किरणों की राह रोक रखी है, कि बहू को बन्द रखूं?

ज्योतिर्मयी को सन्देह हो रहा था। वह झटपट बोल उठीं—बहू यहाँ होती तो जरूर दिखाती बेटा! वह तो काशी में है।

विवाह काशी में हुआ है?

नहीं-नहीं, बहू की नानी काशी गयी हैं, तो बहू को भी साथ ले गयी हैं। उनका मैका तो यहीं है, इसी गाँव में। वह जो पक्के की छत दिखायी दे रही है न, वही।

ऐं, यह क्या कह रही हैं आप? यह तो खूब है! बहू मैके भी जायगी तो खिड़की से शिवू बाबू बातचीत कर लेंगे!

मितभाषी पूरन ने कहा—भई, दिन चढ़ आया, चलो एक बार मरीजों को देख आयें। इसकी भी खोज लेनी है कि कोई नया आदमी तो बीमार नहीं पड़ा।

कचहरी में सुशील की नजर घोड़े पर पड़ी। कहने लगा—वाह, बड़ा ही खूबसूरत घोड़ा है यह। है किसका?

साईस घोड़े को फेर लाया था, टहला रहा था। शिवू नियमित रूप से सवारी नहीं करता। घोड़ा बैठा रहे, तो बिगड़ जाय। इसलिये ऐसा ही

बन्दोबस्त करना पड़ा था। सुशील के पूछने पर शिवू कुछ लज्जित होकर बोला—अपना ही है। उसे लग रहा था कि जब विवाह के बारे में सुशील ने ऐसी आलोचना की, तो घोड़े पर भी वह जरूर कुछ छेड़-छाड़ करेगा।

सुशील ने अचरज में भरकर पूछा—यह घोड़ा आपका है? आप इस पर सवारी कसते हैं?

शिवू को हँसी आयी। बोला—जी हाँ!

ओह् हो! आप तो बहुत बड़े आदमी हैं साहब, और क्या-क्या है?

शिवू कुछ कहे, इसके पहले ही अहङ्कार से किसन बोल उठा—साइकिल है, पालकी है।

पालकी! वोंडरफुल! लगता है, हम मुगल सल्तनत में आ निकले हैं—इन दि लैण्ड ऐण्ड पिरियड ऑफ दि ग्रेट मुगल्स।

सुशील की बातों में एक आघात की बू शिवू महसूस कर रहा था। इस बार जरा रुखाई से ही बोला—मगर वह जमाना फिरङ्गियों के इस जमाने से कहीं बेहतर था सुशील बाबू! वी हैड आवर इण्डिपेण्डेन्स इन दि लैण्ड ऐण्ड पीरियड ऑव दि ग्रेट मुगल्स।

अबकी पूरन भी बोला—बहुत खूब कहा है भैया शिवनाथ! सुशील भैया, दीजिये अब जवाब।

सुशील ने कहा—देर ही होती जा रही है। चल, पहले मरीजों को देख आयें। हाँ, शिवनाथ बाबू, आपके और सब सङ्गी-साथी नहीं दिखायी देते, अकेले आप ही क्या सेवक-समिति हैं?

'शिवनाथ भैया, मैं आ गया हूँ।' दफ्तर के कमरे से नन्हा श्यामू बाहर निकल आया। बोला—तस्वीरें देख रहा था।

शिवू खुश होकर बोला—मैं जानता था कि तू जरूर आयेगा। खैर, जाकर औरों को भी खबर कर दे, कहना, चावल बटोरना है।

श्यामू का जी जैसे छोटा हो गया—मैं क्या आप लोगों के साथ न जाऊँ?

सुशील ने उसकी पीठ ठोंककर कहा—सिपाही का सबसे बड़ा काम सेनापति का हुक्म बजाना है। सेनापति ने जो कहा है, पहले वही करो।

कहीं रोना-धोना जारी था। कोई मर गया शायद! इसके सिवाय सारे का सारा टोला निस्तब्ध। अपने-अपने बैठक में लोग फीका चेहरा लिये गुमसुम बैठे थे। टोले के शुरू में ही शम्भू का घर है। शिवनाथ ने शम्भू की माँ से पूछा—क्या हाल है तुम्हारे मुहल्ले का?

उसने काँपती आवाज में कहा—क्या बताऊँ बाबू, कहा भी तो नहीं जाता। रात फिर छः आदमियों को रोग ने पकड़ा है।

शिवनाथ सिहर गया—छ आदमी को?

सुशील ने पूछा—कोई मर भी गया है क्या? लोग-बाग उधर रो रहे हैं!

तीन आदमी मर चुके हैं, मोचियों में से एक, एक बावरी और वह डोम छुकरा। लाश छोड़-छाड़ कर ही डोमड़े भाग गये। कुत्ते घर के अन्दर ही लाशों की दुर्गत कर रहे हैं। देखिये न, गिद्ध मँड़रा रहे हैं।

शम्भू की माँ काँपकर रो उठी—क्या होगा बाबू, कहाँ जाऊँ?

चिन्तित-सा होकर शिवनाथ ने कहा—शम्भू की माँ, डर लगता है, न? तो एक काम कर, बगीचे में कालीमन्दिर की बगल में जो घर हैं, बाल-बच्चों को लेकर उसी में रह जाकर।

पूरन ने आसमान की ओर नजर उठायी, गिद्धों का झुण्ड मँड़रा-मँड़रा कर नीचे उतर रहा था। घृणा से मुँह बनाकर बोला—कैसा घिनौना दृश्य है—वीभत्स!

सुशील ने पूछा—वह डोम औरत अकेली पड़ी है बेचारी, कहीं उसे जिन्दा ही तो न खा जायँगे, सबसे पहले उसी को देख लिया जाय।

गाँव में न कहीं आदमी, न आदमजाद। दूर से शायद मोचीटोले से रोने की आवाज उठ रही थी। उस आवाज से भी भयङ्कर आवाज आ रही थी इस टोले के किसी घर से—गिद्ध और कुत्तों की खौफनाक आवाज। फेकू के आँगन में भी कई गिद्ध बैठे उस औरत के मरने की जैसे राह देख रहे थे। मारे डर के वह बेचारी तो जाने जीते-जी ही मर गयी है।

सुशील कूदकर ओसारे में पहुँचा। नाड़ी जाँचकर देखा, उसके अभी जान बाकी थी। बोला—शिवनाथ बाबू, वाटर-बॉट्ल से पानी दीजिये। खबरदार, वह छू न जाय।

पास के बर्तन में पानी ढालकर उस तरुणी की आँख और मुँह पर छींटे दिये गये। उसकी चेतना लौट आयी, लेकिन बेबस, अर्थहीन दृष्टि।

उसे कुछ खाने को देना चाहिये। पूरन, थोड़ा ग्लूकोज।

बाबू! डाक्टर बाबू!

पाँच-छ आदमी आये। किसी दूसरे रोगी के घर के थे।

जरा हमारे घर चलिये।

—अच्छा, आप थोड़ा-थोड़ा ग्लूकोज मिला पानी देते रहिये। हालत अच्छी है। बच जायगी। पूरन, तबतक हमलोग दूसरे मरीज को देख आयें, चलो। तो शिवनाथ बाबू, पानी के साथ वह बुकनी दे दीजियेगा।

दोनों चले गये।

वहाँ अकेला बैठकर शिवनाथ उसके मुँह में रह-रहकर पानी देने लगा। सामने ही सुदूर प्रसारी प्रांतर, इस प्रातःकाल में ही क्षितिज धुमैला हो उठा है। पृथ्वी से आकाश तक फैला हुआ वायु-प्रवाह धूल से लद गया है। अचानक अपने पैर में ठंडे स्पर्श से वह चौंक उठा। देखा, वह नवयुवती कातर आँखों से उसे देख रही है, दोनों आँखों से आँसू बह रहा है। उसी ने अपने ठंडे हाथ से शिवनाथ का पाँव पकड़ लिया है।

शिवनाथ बोला—रोती क्यों हो ? तुम तो अब बिल्कुल अच्छी हो गयी।

बड़ी मन्द आवाज में वह बोली—बाबू, मुझे क्या जीते-जी इनके पेट में डलवा देंगे ?

वह फफककर रो पड़ी। सामने ही आँगन में एक गिद्ध उसकी ओर घुरता दिखायी पड़ा।

शिवनाथ बोला—उसका बन्दोबस्त अभी हो जाता है। न हो तो तुम्हें अन्दर सुला जाऊँ ?

वह सिहर उठी। बोली—जी नहीं, नहीं। घर के किसी अँधेरे कोने में कहीं वह न बैठा हो !

—कौन बैठा हो ?

—वह,…वह।

—ओ।' जब शिवू ने समझा, उसका मतलब अपने पति फेकू से है। बहुत सोच-विचार के बाद उसने पूछा—क्या तुम्हारे बाप, भाई—कोई कहीं नहीं है ?

है तो। मगर सौतेली माँ बाप को आने नहीं देगी !

—तब उपाय ? खैर, लो, इस दवा को पी जाओ—हाँ करो।

शिवनाथ सोचने लगा कि इसका क्या किया जाय। यहाँ इसे जोगते रहना सम्भव नहीं है, न घर ही ले जायी जा सकती है।

मेरा क्या होगा बाबू ?—तरुणी की आँखें फिर छलक आयीं।

—ईश्वर का नाम लेती रहो। उससे भूत पास नहीं फटकता।

कुछ भरोसा पाकर वह बोली—अगर चण्डी-स्थान का फूल ला दो बाबू, तो मैं रह लूँगी।

शिवू को थोड़ी शान्ति मिली। बोला—फूल मैं ला दूँगा। अभी एक कागज में रामनाम लिखकर सिरहाने के नीचे रख देता हूँ। चलो, तुम्हें अन्दर सुला दूँ।

कमरे के अन्दर सुलाकर शिवू ने जेब से पेंसिल निकाली। एक कागज पर रामनाम लिखा, उसे उसके माथे से छुलाकर सिरहाने के नीचे रख दिया। तरुणी ने आँखें मूँद लीं। वह थक गयी थी। शिवू ने उठाया तो उसे बहुत ही हिफाजत से था, फिर भी हिलने - डुलनेभर में ही वह थककर चूर हो गयी। कमरे के किवाड़ भिड़ाकर शिवू बाहर निकल आया।

उस औरत ने फिर आवाज दी—बाबू !

शिवू ने पूछा—फिर डर लगने लगा क्या ?

नहीं बाबू, बड़ी भूख लगी है। थोड़ी-सी फड़वी दोगे ?

अरे राम, इस हालत में फड़वी ? शाम को न होगा तो बार्ली ला दूँगा।

वहाँ से निकलते ही शिवू की भेंट हो गयी उस बिगड़े दिमाग गँजेड़ी बाबू से। पड़ोस के घर में बैठे हुए गिद्धों को ढेले फेंककर वह उड़ा रहा था और खुश हो रहा था। जैसे ही वह ढेला मारता कि डैने फैलाकर गिद्ध थोड़ा सरक जाते और वार के खाली जाते ही गर्दन बढ़ाकर उसे खोदने लगते थे।

शिवू ने हँसकर पूछा—हो क्या रहा है ?

अपना मुँह बनाकर वह बोला—अरे भैया, इनके तो भोज लग गया है। देखिये न, किस कदर खा रहे हैं कम्बख्त ! पेट में सूराख कर दी है और उस सूराख में गर्दन डुबोकर खा रहे हैं—हरे-हरे !

वास्तव में वह नज्जारा बड़ा पुरदर्द था, बड़ा ही खौफनाक ! शिवनाथ कुछ चिन्तित होकर बोला—लेकिन किया क्या जाय, सारा गाँव ही जब भसम्न हो गया है !

वह बोला—अगर कोई चीं-चपड़ न करे तो मैं तो जवान लाश को उठाकर फेंक दे सकता हूँ।

आप ?

जी हाँ, टाँग में रस्सी लगाकर खींचते हुए उसे वहाँ लाघाटा तक छोड़ आऊँ।

आप ऐसा कर सकेंगे ?

—खूब कर सकता हूँ। कहिये तो गड्ढा खोदकर आँगन में ही गाड़ दूँ—रहे यहीं पड़ा, मगर बाद में गाँव के लोग अगर अजाति कर दें तब ?

—लेकिन मैं यदि आपकी तरह अजाति होकर रहूँ, तब ?

—सो देखिये साहब, अच्छा, जनेऊ छूकर खाइये तो कसम !

हँसते हुए शिवनाथ ने जनेऊ छूकर कसम खायी। पगला बड़ा उत्साहित हो उठा। बोला— चलिये, तब थोड़ी-सी रस्सी ले आई जाय।

बावरी टोले में ही सुशील और पूरन से भेंट हो गयी। उनके साथ श्यामू भी आ जुटा था। बस, अकेला श्यामू ही। सबसे पहले शिवनाथ ने श्यामू से पूछा—और लोग कहाँ रह गये ?

सुशील ने हँसकर कहा—आपकी फौज पीठ दिखा गयी।

श्यामू ने कहा—लगभग सभी गाँव छोड़कर भागे जा रहे हैं। जाकर देखिये न, कमलेश और उनके मामा आपके यहाँ जमे बैठे हैं, आपको भी काशी ले जायेंगे।

श्यामू भी जरा व्यङ्ग्य की हँसी हँसा।

शिवनाथ थोड़ा गर्म हो उठा, लेकिन उस ताप को मन में जब्त करके सुशील से उसने पूछा—उधर का क्या हाल है ?

चिन्तान्वित होकर सुशील ने कहा—हालत तो धीरे-धीरे बदतर ही होती जा रही है। अब रोक-थाम का प्रबन्ध जल्दी करना जरूरी हो गया है। जिसके घर रोग है, उससे सारा सम्बन्ध तोड़ना होगा। सब से पहले तो पानी को बचाना है, जिससे वे पोखर के पानी को रोग के वीजाणु से न भर दें। हर तालाब पर पहरा बैठाना होगा। पहरुए ही रोगी के

घरवालों के पात्र में अपने पात्र से पानी उँड़ेल दिया करें। चिकित्सा के लिये स्लाइन जरूरी है।

शिवू सोच में पड़ गया। संगी-साथी खिसक पड़े। अकेला वह कहाँ तक क्या करेगा? उसकी छाती का बल घटने लगा। इतने-इतने लोगों के खाने का प्रबन्ध, उनके जीवन-मरण की समस्या का समाधान वह अकेला कैसे करेगा?

पागल ने रोका—रस्सी दीजिये न बाबू।

सुशील ने पूछा—रस्सी क्या होगी?

—टाँग में रस्सी लगाकर उस लाश को वह फेंक देंगे।

—मगर गाँजे के लिये चार पैसे चाहिये। कसकर एक कश खींचूंगा और घसीटकर साले को गाँव से बाहर फेंक आऊँगा।

जैसे लड़ाई का घोड़ा बेताब हो उठता है, पगला भी वैसा ही बेचैन हो उठा।

सुशील ने ताज्जुब से पूछा—आप गाँजा पीते हैं?

—गाँजा, शराब, भंग, चरस—सब कुछ। मिले तोगें हुअन का जहर भी।

अच्छा!—सुशील के अचरज का ठिकाना न रहा।

हाथ कंगन को आरसी क्या, देकर देख ही लीजिये। कोट, कमीज, जूते पहनकर बाबू तो खूब बन बैठे हैं। एक रुपया निकालिये तो जानूँ, आज जी भरकर पी लूँ।

वही सही। दिया एक रुपया। शर्त यह रही कि पीना हमलोगों के सामने ही पड़ेगा।

कचहरी में शिवू को नायबजी ने खबर दी कि बाँटने के लिये गोसाईं बाबा ने तीन मन चावल भेज दिया है।

लम्बी जुल्फोंवाला वह थियेटर-पसन्द दोस्त भी वहाँ बैठा था। बोला—क्यों भई, हमलोगों को कोई काम बताओ।

शिवू को थोड़ा बल मिला। नायबजी फिर बोले—आपके ममिया ससुर साहब राह देख रहे हैं।

शिवू ने कहा—उनसे कह दीजिये, मैं काशी नहीं जाऊँगा।

सिर खुजलाते हुए नायबजी बोले—लेकिन चले जाते तो अच्छा ही होता बाबू, इस महामारी—

—नहीं-नहीं, मैं नहीं जाता।

—लेकिन उनसे मेरा कहना क्या ठीक होगा? आप खुद ही—

शिवू बोला—मैं अभी रोगियों के बीच से आया हूँ—अन्दर कैसे जाऊँ?

लाचार नायबजी ही खबर लेकर अन्दर गये। सुशील ने कहा—भई, आपकी श्रीमतीजी नाराज हो जायँगी!

शिवू को इस समय इस बात की फिक्र थी कि और आदमी कैसे मिल सकते हैं। सो मजाक तो शिवू के कानों में पैठा, पर न तो उससे उसे खुशी हुई, न लज्जा। इतने लोगों की भीड़ और शोर-गुल में नन्ही-सी गौरी घूँघट काढ़कर शिवनाथ के मन के किसी अँधेरे कोने में ठुकराई हुई-सी सो पड़ी है! उसने सुशील का हाथ धरकर कहा—चलिये न, एक बार थाने से हो आया जाय। चौकीदारों की मदद के बिना पोखरों पर पहरा बैठाना मुश्किल है।

जुल्फवाले यार ने कहा—कोई गाना-वाना बनाया क्या? तब तक लय-वय ठीक कर लेता।

शिवू सुशील के साथ बाहर निकल पड़ा। पगले ने ऊबकर कहा—मजा देखिये, पुकारूँगा तो कहेंगे कि पीछे से टोककर यात्रा बिगाड़ दी। लेकिन; मैं अब रस्सी कहाँ से लाऊँ?

उस पगले की बात को सबने अनसुनी कर दिया। यकायक पगला उठ बैठा और गौशाले की तरफ चला गया—शायद कोई पगहा मिल जाय।

तीन दिन बाद का वाकया।

शिवू को यह देखकर अचरज हुआ कि मृत्यु की इस दारुण विभीषिका के बावजूद, मनुष्य का स्वरूप नहीं बदला। वह जैसा था, वैसा ही रह गया है। एक रत्ती भी परिवर्तन नहीं। किसी गली होकर जा रहा था कि उसे सहसा किसी की बात सुनाई पड़ी—वैसे तो कहावत है कि रस्सी जल जाती हैं, ऐंठन नहीं जाती। मैं कहे रखती हूँ, गाँठ बाँध रखो, शैलजाजी बहू के भाग से खेल रही हैं। एक तो लड़का है इकलौता, ममिया ससुर काशी ले जाना चाह रहे थे, क्या बेजा कह रहे थे बेचारे? लेकिन इस मौत के मेले में उसने लड़के को रख छोड़ा, पर जाने नहीं दिया—इसलिये कि बहू से मेल न हो जाय!

फूफी का नाम सुनकर उसने खड़े-खड़े सब कुछ सुना। ऐसे आज उसका जी अच्छा था! इस खौफनाक खतरे के बीच आज सभी कामों का एक सिलसिला-सा बँध सका था। चौकीदारों की मदद से पोखरों का पानी बचाना सम्भव हो गया है, श्यामू और बालवाला बन्धु चावल जमा करने में लग गया है। और वह निकम्मा और घिनौना पागल तो सबसे बड़ा काम कर रहा है। उसने एक नहीं, तीन-तीन लाशों का किनारा कर दिया है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से एक सज्जन भेजे गये हैं, जो मैजिक लालटेन के सहारे हैजे के बारे में लोगों को बताया करते हैं। सबसे बड़ी बात यह हुई है कि शिवू की माँ और फूफी ने इस सेवा-कार्य के महत्त्व को समझा है। उन्होंने अभयदात्री के समान उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया है।

फूफी के बारे में जो आलोचना हो रही थी, उसे सुनकर शिवू हँसा। यह आलोचना करनेवाली बड़ी कठिन औरत थीं—यह थीं दुर्गा देवी। सच कहने में कभी पीछे नहीं हटतीं। कोई लाख युक्ति पेश करे, मगर अपनी राय से वह टस से मस नहीं होतीं। यहां तक कि उनकी बात के चिथड़े उड़ा

दीजिये, तो भी नहीं। अपनी बात वह बदल ही नहीं सकतीं। कोई कुछ भी कहे, उनकी अपनी एक ही रट रहती। और आज की बात में थोड़ी-बहुत सचाई भी थी। जब कमलेश और रामकिंकर बाबू ने शिवनाथ को काशी ले जाने की बात उठायी, तो फूफी ने कह दिया—यह बात शिवनाथ से ही कहिये। मैंने तो बारहाँ कोशिश की कि उसे लेकर कहीं चली जाऊँ, पर वह किसी तरह राजी ही नहीं हुआ। आप कह देखिये।

रामकिंकर बाबू ने कहा—यह भी कहने की बात है? आपलोग कहें और फिर भी शिवनाथ न जाय, यह नहीं हो सकता। इस बीच क्या वह ऐसा स्वतन्त्र हो उठा है?

बात उन्हें कुछ लगी। ध्वनि यह थी कि हकीकत में तो भेजने की राय आप ही लोगों की नहीं है, शिवनाथ की बात तो एक बहानाभर है। लेकिन; इस बात को वह पी गयीं और उत्तर दिया—स्वतन्त्र नहीं भी हुआ हो, पर अब वह अनबूझ लड़का नहीं रहा। उसकी राय अब ठुकरायी नहीं जा सकती। फिर लड़का चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा, अगर वह कोई अच्छा काम करता है, तो उसे कैसे रोका जाय! शिवू ने कोई बुरा काम तो किया नहीं है?

दबे हुए क्रोध से रामकिंकर बाबू भीतर-ही-भीतर फूल उठे। बोले—काम बुरा तो नहीं है, लेकिन खतरे से खाली नहीं। उसकी जिन्दगी से अब आपलोग मनमाना खिलवाड़ नहीं कर सकतीं।

एक ही लहमे में सिर ऊँचा करके अचरज से उन्होंने कहा—खिलवाड़! हमलोग शिवू की जिन्दगी से खिलवाड़ कर रहे हैं!

इस अप्रत्याशित और अकल्पित दोषारोपण का कोई उत्तर उनको ढूँढ़े नहीं मिला। सिर ऊँचा करके, उद्दीप्त आँखों से अपनी अकलङ्क महिमा की मौन घोषणा करती हुई वह रामकिङ्कर बाबू की ओर देखती रह गयीं।

उनकी बात का उत्तर कमरे की ओट से आया। ज्योतिर्मयी ने

कहा—खिलवाड़ ही समझिये। एक ऐसा समय आता है, जब आदमी खिलौनों से खेलता है। और जब गुड़ियों से खेलने की उम्र बीत जाती है, तब ईश्वर लोगों को रक्त-मांस के पुतले खेलने को देते हैं। उस खिलवाड़ में रोक-थाम करने का अधिकार तो किसी का नहीं होता।

रामकिंकर बाबू कुछ ऐसे आदमी हैं कि उनका प्रभुत्व अदम्य और अहम्मन्यता के पागलपन से भरा है। अपनी बात पर बाधा पाकर वे अपने जामे में नहीं रहते और हिंसक-से हो उठते हैं। ज्योतिर्मयी की बात से उनकी आँखों में शोले लहक उठे—उन्होंने कहा—आपको इस बात की खबर है कि शिबू पर एक दूधपीती बच्ची की जिन्दगी निर्भर करती है?

फूफी बोल उठीं—यह बात हमें नहीं मालूम है? हम हिन्दू घर की ललना होकर वैधव्य भोग रही हैं और इस बात को नहीं समझ सकतीं। शिबू पर यह जो अधिकार है, सो उस बालिका का ही है, आपका नहीं। उस हक के लिये लड़ाई वही लड़ सकती है, केवल वही।

इतने में गला खखारते हुए नायबजी अन्दर आये और बोले—बाबू ने कहला भेजा है कि मैं काशी नहीं जाऊँगा। डाक्टर के साथ वे कहीं काम से निकल गये। मैंने बहुतेरा कहा—

गम्भीर होकर रामकिंकर ने कहा—रहने दीजिये। चलो कमलेश! वह कमलेश का हाथ धरकर चल पड़े। शैलजा ने कहा—केवल शिबू पर तुम्हारा अधिकार है, यही तो नहीं, बहू पर हमलोगों का भी अधिकार है, भेजोगे बहू को?

मुड़कर रामकिंकर बाबू बोले—उस पर जो अधिकार है, वह अकेले शिबू का है। अपने हक के लिये शिवनाथ जिस दिन जायगा, उस दिन बहू आयगी।

कमलेश का हाथ पकड़कर क्रोध से भारी पैर पटकते हुए राम बाबू

चले गये। फूफी कुछ क्षण मौन रहीं, फिर बोलीं—हम अपनी बहू को इसी महीने घर लायेंगी, देखें, कौन रोकता है हमें।

ज्योतिर्मयी ने कहा—इतना हो चुकने के बाद अब वैसा नहीं हो सकता बहन, हर्गिज नहीं।

दुर्गा देवी अपने घर इसी की चर्चा कर रही थीं। उन्होंने ज्योतिर्मयी को भी नहीं छोड़ा। सब-कुछ सुनकर भी शिबू नाराज नहीं हुआ, हँसा। आश्चर्य है, कामों की इस इतनी बड़ी भीड़ में वह अनुभव करने लगा, मनुष्य के प्रति दया, घृणा, आक्रोश, यह सब जैसे वह भूल ही गया है!

ठाकुरबाड़ी में जगह ठीक करनी थी। रात को वहाँ मैजिक लालटेन दिखाने की बात थी।

सदर रास्ते से ढाक पीटकर कोई कुछ घोषणा करता जा रहा था। शायद कोई सामाजिक सूचना होगी। क्योंकि सरकारी घोषणा में तो डौंढ़ी पीटी जाती है। मगर यह घोषणा हो किस बात की सकती है? इस दुरवस्था में अचानक समाज सचेत कैसे हो उठा?

घोषणा रक्षाकाली पूजा की थी। परसों अमावस के दिन पूजा होगी। चन्दा दीजिये, चावल दीजिये।

ऐलान सुनकर दुर्गा देवी बाहर निकल आयीं। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने देवी के प्रति प्रणाम किया और बोलीं—अब जाकर लोगों को यथार्थ कर्त्तव्य सूझा है। अब तो काली मैया रातोंरात महामारी को मार भगायेंगी! यही उस गाँव में हैजे ने एक महीने तक जो गजब ढाया कि पूछो मत। जिस दिन रक्षाकाली की पूजा हुई, उस रात को भी गाँव में रोने-धोने की आवाज से कान रखना मुश्किल था। लेकिन; भोर होते न होते एक काली-कलूटी स्त्री बगल में चटाई दबाये गाँव से बाहर निकल गयी।

शिवनाथ ने हँसकर पूछा—और यह देखा किसने था?

अहहा, तो यह मजाक शुरू हो गया! देखो भैया, तुम लोग आज के

लड़के हो, तुम्हारे लिये बस तुम्हारे ही काम सब-कुछ हैं, बाकी जो है सब मजाक, झूठ। खैर, मजाक ही सही। तुम लोग बड़े आदमी ठहरे, बड़े हो इसलिये विद्वान, उपकारी, सब-कुछ हो। हम हैं गरीब, सो हम पाजी, छुछुंदर, मूरख और जो कहो, सो सब हैं। हो गया तो?

शिवू काठ का मारा-सा उनके मुँह की ओर देखता रह गया। दुर्गाजी वहाँ से अन्दर को चलती हुई। जाते-जाते कहा और विजय के दम्भ से कहा—जरा इनकी तो सुनो, कहते हैं, जो-कुछ किया, इन्होंने किया। मैं पूछती हूँ, अरे भैया, तू होता कौन है, हस्ती ही क्या है तिहारी?

शिवू खिन्न होकर चल पड़ा, अचानक उसे फिर हँसी आ गयी। दुर्गा देवी के पैंतरे बड़े गजब के हैं। बलिहारी!

सोलह

धन-जायदाद पर शैलजा की कैसी सावधान नजर रहती है, यह सब को मालूम है। क्या मजाल कि एक तिनका भी नुकसान हो! लेकिन सामानों में भी घर की दरी और बर्तन, ये तो जैसे उनके प्राण ही हैं। लोग कहा करते हैं, ये चीजें तो जैसे सोने की डिबिया की भौंरा-भौंरी हैं, उसी में फूफी के प्राण हैं। भरसक तो ये चीजें वह किसी को नहीं देतीं।

सो शिवू कुछ चिन्तित-सा होकर दरी के लिये अन्दर गया। फूफी चूल्हे के पास खड़ी थीं। कड़ाही में कुछ पक रहा था। फूफी ने पूछा—देख तो शिवू, बार्ली और गाढ़ी होगी?

—बार्ली? तुम क्या खुद बार्ली बना रही हो?—शिवू को अचरज हुआ कि फूफी रोगियों के लिये अपने ही बार्ली बना रही हैं।

—हाँ बेटा, कुछ तो तेरा हाथ बँटा दूँ कि यह हाथ धन्य हो!

इधर फूफी में सचमुच ही परिवर्तन आ गया है। जब से शिवनाथ बाधा-विघ्नों की परवा न करके विपत्तियों के घेरे में कूद पड़ा है, तब से फूफी ने अपने भाग्य को धिक्कारते हुए अपना कदम संस्कारों की दीवार के बाहर बढ़ा दिया है। और फिर रामकिंकर से जो कहा-सुनी हो गयी, उस जिद से शिवू को प्रोत्साहित करने में लग गयी हैं। किन्तु; आगे कदम जो बढ़ाया, तो वे संसार को नयी निगाह, नये ढङ्ग से देख पायीं। पीड़ितों की जबान पर शिवनाथ का जय-जयकार, उसकी कार्यक्षमता तथा सुशील

और पूरन की अदम्य सेवा-परायणता ने उन्हें मनुष्य के और ही रूप के दर्शन कराये। ज्योतिर्मयी से आकर उन्होंने कहा—बहू, बाप के राज में जो देखने से रही, सो लड़कों ने अपने पौरुष से दिखाया! क्या बताऊँ कि क्या देखा और शिवू का जैसा जय-जयकार सुना कि कुछ न पूछो! आज तुम्हें भी दिखालाऊँ, चलो।

और उन्होंने इस घर के बद्ध संस्कार के दायरे को सचमुच ही तोड़ दिया, नाम को भी न हिचकीं। सात-आने के जमींदार घर की बहू को आम रास्तों से घुमाती हुई वह उन्हें मुहल्ले के बीच ले गयीं। बोलीं—अपने शिवू के करतब देखो!

ज्योतिर्मयी की आँखों में पानी भर आया। शिवनाथ की फूफी और माँ को देखकर कुछ लोग बटुर आये। हाथ बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और चुप हो रहे। उनकी कृतज्ञता मूक थी। एक उनमें से बोला—हमारे शिवू बाबू के सोने की दावात-कलम होगी माँ जी, हजार साल की आयु होगी।

फूफी के भी आँखें भर आयीं। उन्होंने पूछा—शिवू वगैरह कहाँ गये?

उत्तर मिला—माँजी, रोगी देखकर डॉक्टर तो लौट गये। बाबू गये हैं उस डोम की बहू की खोज लेने।

वह डोम-स्त्री चंगी हो उठी है। अभी पूर्ण स्वस्थ तो नहीं हुई, किन्तु उसके जीवन का कोई खतरा अब नहीं रहा। फूफी ने कहा, चलो, हम भी देख आयें।

डोमड़े के आँगन में शिवनाथ जैसे महा मुश्किल में पड़ गया था। बहू ओसारे में दीवाल से टिकी बैठी है और बच्चे की तरह नकियाती हुई मचल रही है—नहीं-नहीं, मैं अब यह नहीं खाती। राम-राम, लेई-जैसा लस-लस पानी। आज मैं फड़वी लेकर ही रहूँगी।

शैलजा और ज्योतिर्मयी के जाते ही उसका मचलना बंद हो गया

शर्म से उसने जल्द-जल्द माथे पर कपड़ा खींच लिया और माथा झुकाये बैठ रही। शिवनाथ ने हँसकर कहा—फड़वी के लिये रो रही है!

ज्योतिर्मयी हँसने लगीं! फूफी ने कहा—तू क्या नादान बच्ची है कि फड़वी खाने को रो रही है?

शिवनाथ ने हँसकर कहा—चलो-चलो। आज पाँच दिन से एक ही जिद किये बैठी है, फड़वी खाऊँगी। रोज कहती गयी, कल से तो बार्ली किसी तरह भी नहीं खाऊँगी, बड़ी-बड़ी मुसीबत से तो किसी प्रकार मैंने खिलाया। खैर, कल थोड़ी फड़वी ही दूँगा। आज भर खा लो।

फूफी और शिवू की माँ जैसे ही चलने को मुड़ीं कि उस तरुणी ने गर्दन हिलाकर अस्वीकृति जताते हुए कहा—नहीं-नहीं-नहीं।

शैलजा को शिवू के इन सेवा-कार्यों में सहायता करने का न केवल आनन्द मिल रहा था, बल्कि आन्तरिक प्रेरणा का भी अनुभव हो रहा था। यही कारण है कि वह खुद बार्ली बनाने में लगी थीं। शिवू का अन्तर यह देखकर गर्व से फूल उठा। वह दरी माँगने के लिये डरता-डरता आया था, फूफी को प्रसन्न करने के लिये स्तुति-वाक्य भी चुन-चुनकर गढ़ रखे थे, किन्तु यहाँ एक ही पल में सब भुला बैठा। बिना किसी भूमिका के बोला—दो-एक दरी चाहिये थी फूफी, बड़ी हो, तो दो ही से काम चल जायगा।

—दरी? दरी का क्या होगा?

आज शाम को ठाकुरबाड़ी में हैजे पर व्याख्यान होगा। सब दिखाया जायगा—हैजे के कीड़े कैसे होते हैं, कैसे वे पानी में फैलते हैं—सब आँखों देखोगी।

जो वस्तु अधिक प्यारी होती है, उसकी ममता सहज ही नहीं जाती। उनके ललाट पर सिकुड़न दिखायी दी। बोलीं—दरी निकाल देने पर फिर खैरियत नहीं। परसों ही मसान में रक्षाकाली की पूजा है। वे लोग भी माँग बैठेंगे।

हर्ज क्या है, उन्हें भी देना।

उसके बाद? दरी फट जायगी तो कौन देगा?

कोई भी चीज क्या सब दिन रहती है फूफी? एक न एक दिन तो वह बर्बाद होगी ही।

बार-बार नकारती हुई गर्दन हिलाकर वह बोलीं—नहीं बेटे, तीन-चार पुश्त से उनमें इस कुल के जाने कितने ही काम हुए हैं। यदि यह कहूँ कि वह लाखों ब्राह्मणों की चरण-धूल में पवित्र हुई हैं, तो अत्युक्ति नहीं। उन्हें मैं ऐसे बर्बाद न होने दूँगी। उनमें इस घर का मंगल है, बड़े मान-सम्मान की हैं वे। और इसी तरह बार-बार नकारकर उन्होंने बात खत्म कर दी।

शिवू जरा देर चुप रहकर बोला—तो दरी के लिये मुझे पराये का दरवाजा खटखटाना होगा!

फूफी भी कुछ क्षण मौन गम्भीर रहकर बोलीं—तो जो जी में आये, करो। मेरा क्या? चीज रहेगी तो तुम्हारी रहेगी, जायगी तो तुम्हारी जायगी। बाद में मांगे कोई न देगा, याद रखो।

शिवू बोला—बाली को अब उतार दो। ज्यादा गाढ़ी ठीक न होगी। कड़ाही चूल्हे पर से उतारती हुई फूफी बोलीं—हाँ, दरी भली तरह धुलवाकर लौटानी पड़ेगी? और दूँगी भी मैं वही दरी, जो इधर-उधर थोड़ी-बहुत फटी है, अच्छी वाली नहीं दूँगी—यह मैं पहले ही कहे रखती हूँ।

शिवू के जी में जी आया—खैर, उसीसे काम चल जायगा। तो मैं किसन को और नायबजी को भेजूँ?—शिवू खुश था। फूफी जैसी एक अक्खड़खाँ के लिहाज से यह ना-नू कुछ नहीं के बराबर ही था। फूफी ने कहा—बाली ले जाने के लिये तो किसी को भेज दे।

शिवू बोला—बस, फौरन श्यामू को भेजता हूँ।

बैठक के सब लोग जरूरत से ज्यादा अधीर हो उठे थे। श्यामू ने

पुलकित होकर कहा—ओह, ढेर का ढेर चावल जमा हो गया है शिवू भैया !

हँसते हुए सुशील ने कहा—शिवू बाबू, बस, आपका ही जय-जयकार है। आज आपकी ससुराल से बारह मन चावल आनेवाला है। रामबाबू की तरफ से नौ मन, कमलेश का तीन मन। यू हैव वोन दि बैट्ल। अब उन्हें जरूर ही आपके कार्यों का मूल्य मालूम हो गया है।

जुल्फीवाले लड़के ने कहा—अरे बाबा, यह सब चाल है, बड़प्पन की चाल। इसके मानी यह कि मैंने सब से ज्यादा दिया। समझे ?

सुशील ने भँवें सिकोड़कर कहा—आपका यह कहना वाजिब नहीं। किसी के दान को इस प्रकार छोटा बता देना अन्याय, बल्कि नीचता है।

वह लड़का गरज उठा—मैं फिर कहूँगा, यह बड़प्पन की धौंस जमाने की चाल है, जरूर कहूँगा। यह रुपयों से यश खरीदना है। ऐसी हरकतों को हमलोग खूब समझते हैं। जान बचाने के लिये तो सब कबके भाग खड़े हुए। अलबत्ता, मानता तब, जब ये भाग नहीं जाते या जाकर भी इस काम की महत्ता समझकर लौट आते।

वह पगला भी वहीं बैठा था। प्रशंसाभरी निगाह से उस लड़के की ओर देखकर बोल उठा—हाँ, तब मानते। मुर्दा तो मैं अकेले फेंकता रहा, कौन बाबू-भैया पहुँचा ? ये सब खा-पकाकर साफ कर देंगे—सब। हें-हें, तभी तो कहता हूँ—ले बाबा, सब खा ही ले। वह हो-हो करके हँस पड़ा।

पूरन बोला—शिवनाथ बाबू , आपकी एक चिट्ठी आयी है।

सुशील भी एक जीव है। पलक मारते वह इस गरमागरम बहस की बात छोड़कर मजाक कसते हुए शिवनाथ से बोला—ए ब्यूटीफुल एनवेलप कमिंग फ्राम बेनारस। और जेब से उस पत्र को निकाल लिया। बोला—जरा सूँघ देखूँ ? अरे न-न, सूँघने का मतलब आधा भोजन है। इसका रूप, रस, गंध, सब का सोलहो आना अकेला आपका है। इसमें हिस्सा नहीं बाँटा जा सकता। यह लीजिये।

चिट्ठी! काशी की चिट्ठी! गौरी की चिट्ठी! शिवनाथ का चेहरा लाल हो उठा। शिराओं के रक्त-प्रवाह में उत्तेजना खेल गयी। मगर लोगों पर यह जाहिर न हो जाय, इस विचार से उसने पत्र को अपनी जेब में डाल दिया। बोला—परसों रक्षाकाली की पूजा भी है, खबर है? फिर एक आफत, लोग रात भर जगेंगे, मांस-मदिरा चलेगी।

'मांस-मदिरा चलेगी, तो क्या होगा?'—उस जुल्फीवाले ने कहा। अचानक प्रसंग बदल देना उसे खल गया था। आखिर वह इतना तुच्छ आदमी है क्या? अभी सुयोग जो मिला, तो कह उठा—मांस-मदिरा चलेगी तो क्या होगा?

पगले ने उसकी ताईद की—ऐ जो कहा आपने; उससे क्या होगा? मद्य-मांस न हो, तो फिर काली की पूजा क्या? काली-काली भद्रकाली!

पगले की बात पर तो नहीं, पर उस जुल्फीवाले के कथन से सुशील अवाक हो गया। हो-हो करके हँस उठा। वह बालवाला लड़का अभिनय के ढंग से खड़ा होकर बोला—देखिये, जहाँ धरम की लानत-मलामत होती है, वहाँ मैं काम नहीं कर सकता। मैं जाता हूँ।

पूरन ने कहा—सुशील भैया, वास्तव में आप लोगों पर कड़ी चोट करते हैं।

सुशील बोला—आप अपने खत को पढ़ जाइये शिवू बाबू, मेरा तो जैसे प्राण हाँफ उठा है। व्यर्थ में प्राणायाम का कोई मानी नहीं होता।

पगला बोला—गाँजे का पैसा बाबू? या वही हाल है कि 'गँजेड़ी यार किसके, दम लगाये खिसके'?

शिवू ने बड़े ही एकांत में निश्चिन्त होकर चिट्ठी को खोला। डोमबहू को उसने बार्ली पिला दी और चिट्ठी लेकर बैठ गया। चिट्ठी बड़ी लम्बी थी। उसे निराशा हुई कि वह गौरी की नहीं, कमलेश की लिखी थी। उसमें बहुत-बहुत बातें थीं, ज्यादातर गौरी ही के बारे में। उसने लिखा है,

जब दरवाजे पर गाड़ी से उतरा तो गौरी छिपकर खड़ी थी। उसे खयाल था कि तुम आये हो, इसलिये वह दौड़कर बाहर नहीं आयी। लेकिन; जब मैं ही अकेला अन्दर दाखिल हुआ, तो एक बड़ी ही सूखी हँसी हँसकर उसने मुझे प्रणाम किया और वही जो कहाँ जा छिपी सो घंटों पता नहीं चला। मैं नानी से बातें करने में भूल गया, उसकी वैसी याद भी नहीं रही। इतने में महरी ने आकर खबर दी, गौरी बहिन रो रही हैं, उनके शायद सिर दुख रहा है। महरी शायद इस रोने का मतलब नहीं समझ सकी, मगर मैंने समझा। उसी दम मैं ऊपर गया। आँखें पोंछती हुई वह विस्तर उठा रही थी। विस्तर उसने लगाया भी अपने ही था, आप ही उसे उठा रही थी।

गौरी,—गौरी अब वह नन्ही नटखट बालिका नहीं रही। व्याह के दो साल बीत गये। इस अर्से में वह काफी बड़ी हो चुकी है। दो साल से भी कुछ महीने ज्यादा हो गये। तब की उस गौरी ने सीटी बजाकर उसे बुलाया था और अब की यह गौरी उसके लिये रोयी। एक ही क्षण में उसका अन्तर जैसे गौरीमय हो गया। गौरी ने अपने जीवन में खुद से यह पहली बार बिछौना लगाया था, जिसे उसीने अपने हाथ से उठा भी दिया।

बात क्या है बाबू, आपकी आँखें, आपका चेहरा तमतमा क्यों उठा? वह क्या है?—डोम-बहू अचरज से शिवनाथ की ओर देख रही थी।

शिवनाथ कोशिश करके हँसा और बोला—चिट्ठी है, चिट्ठी!

चिट्ठी? वही जो डाकघर से आती है, न? वही चिट्ठी है? क्या है उसमें?

ऐसे ही है। तू क्या करेगी सुनकर?

बीमार औरत के सूखे पीले चेहरे पर मानों एक हल्की लालिमा दौड़ गयी। कौतुक से दमकती हुई आँखों उसने पूछा—यह चिट्ठी गौरी जीजी ने भेजी है, है न बाबू? इसी से आँख-मुँह लाल हो उठा है।

यह औरत की जात ही अजीब होती है। आँख-मुँह लाल देखकर ही समझ बैठती है कि कोई प्रेम-पत्र है। और मौत के सताये हुए मुँह पर भी लाली फूट उठती है, आँखें उल्लास से थिरक जाती हैं!

डोम-बहू ने कहा—गौरी जीजी तो मेरी ननद होती हैं बाबू। मेरा 'वो' तो उन्हीं के घर काम करता था। मैं अब से आपको दुलहा बाबू कहा करूँगी।

शिवनाथ चिट्ठी को उलटकर पढ़ने लगा। लिखा था—दुनिया में जैसे समाज के प्रति कर्त्तव्य होता है, स्त्री के प्रति भी वैसा ही कर्त्तव्य होता है। आखिर गौरी ने ऐसा कौन-सा कसूर किया है कि तुम उसे इस प्रकार भुला बैठे हो? उसके यहाँ आये कोई एक साल हो गया, इस अवधि में तुमने उसे एक भी पत्र नहीं दिया। और कुछ नहीं, तो कम से कम अपने पास होने का समाचार तो लिख दिया होता।

शिवनाथ ने एक लम्बा निःश्वास फेंका। अपने तईं दोष मान लेने के सिवाय उपाय नहीं था। वास्तव में उतना तो चाहिये था। और इसे ही क्या यह इच्छा नहीं थी? मगर स्वयं गौरी और उसकी नानी ने ही तो इस दोष की जमीन तैयार की है।

ओः दुलहा बाबू, गौरी जीजी ने तो बड़ा लम्बा-चौड़ा लिखा है। उसमें गीत नहीं लिखा है? गाइये न, सुनूं!

शिवनाथ उसकी हरकत से खिजला उठा, कम्बख्त को अपनी हस्ती की सीमा नहीं मालूम। उसने कड़ी निगाह से एक बार उसे देखा और बाहर निकल पड़ा। उसका मन, उसका शरीर एक असह्य कष्ट से पीड़ित हो उठा, किसी गहरे उद्वेग की तरह एक आवेग छाती की धड़कन को तेज करने लगा, चित्त असीम व्याकुलता से अधीर हो उठा।

सेवा का ऐसा पागलपन, यह जयजयकार! मानों उसका घर-द्वार उसमें डूब जाने को है। गौरी—गौरी! वह काशी जाने

के लिये अधीर हो उठा। उसकी साँस जलने लगी, हाथ-पाँव में जैसे आग की आँच!

'बाबू!' एक जरा-जर्जर बुढ़िया हाथ बाँधकर सामने खड़ी हो गयी।

'क्या है?' रुखाई से भौंह सिकोड़ कर शिवनाथ ने पूछा—क्या चाहिये?

कोई फटा-पुराना कपड़ा।

नहीं, नहीं, नहीं। वह जैसे जल उठा और जोर से चिल्ला पड़ा। डरकर बुढ़िया राह छोड़कर अलग जा खड़ी हुई। उफ, संसार के इन सारे अभागों की जिम्मेदारी जैसे मेरे ही कन्धों पर है। उनके जीवन-मरण, भरण-पोषण का सारा भार मानों अकेले मुझी को ढोना पड़ेगा।

उसकी ऊँची आवाज सुनकर पास के पोखरे का चौकीदार आ पहुँचा। बोला—बाबू, जरा आप ही चलिये। लाख मना करने पर भी भोला मोची ने पानी में उतर कर बिछौना धो दिया। एक नहीं सुनी उसने। पागल-सा हो गया है।

क्या? जबर्दस्ती उतरकर उसने रोगी का बिछौना पानी में फींच लिया? क्रोध से वह आपे में न रहा। सीधे भोला मोची के घर को चल पड़ा। माथे से जैसे आग लहक उठी!

छड़ी—एक छड़ी तो तोड़ लाओ,—रुककर उसने चौकीदारसे कहा।

भय से झुकी हुई आवाज में वह बोला—जी, उसकी स्त्री—निर्दयी की तरह कठोर स्वर में वह बोला—तुम छड़ी ले आओ।

क्रोध से हनहनाता हुआ वह भोला के यहाँ पहुँच गया। पुकारा—भोला!

सामने ही बरामदे पर भोला अपनी गोद में स्त्री की लाश लिये बैठा था। शिवनाथ को देखते ही वह फूट-फूटकर रो पड़ा—बाबू, इसे बचा नहीं सके बाबू? मेरी सावित्री चल बसी! और लाश को गोदी से उतार

कर वह शिवू के पैरों पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा। शिवू को लगा, किसी ने उसके चाबुक मार दी। वह सिर नवाकर वहाँ से जल्द-जल्द भागा और अपनी कचहरी में पहुँच गया।

सुशील मोहित होकर आकाश की ओर देख रहा था। रक्तसंध्या के कारण सारा आसमान लाल हो उठा था, कहीं-कहीं तैरते हुए मेघ। शिवनाथ की ओर देखकर शंकित होकर उसने पूछा—क्यों शिवनाथ बाबू, बात क्या है? आपका चेहरा—

भोला मोची की औरत मर गयी। ओह, कितना जो रोया.........
शिवनाथ रो पड़ा। रोने से कुछ शान्ति-सी मिली।

पूरन ने अचरज में भरकर पूछा—शिवनाथ बाबू, आप रोते हैं!

सुशील ने मुड़कर शिवनाथ को देखा। बोला—रोना संसार में शर्म की बात है, वह चाहे आप अपने दुःख में रोयें या पराये। इस दुःख को मिटा सकना ही सबसे बड़ी बात है। रोने से क्या होता है? इट इज चाइल्डिश एण्ड फूलिश एट दि सेम टाइम।

शिवनाथ बोला—न तो मेरा मन ठीक है, न शरीर। मैं अन्दर जाता हूँ।

हाथ-पाँव धोकर जाइये। यह न भूलिये।

शिवू अन्दर जाकर सो गया जो कि अभी शाम ही हुई थी। उसकी नींद टूटी, तो ठाकुरबाड़ी में मैजिक लैंटर्न शुरू हो चुका था। मन बहुत-कुछ हलका हो गया था। फिर भी तुरन्त भूली हुई एक उतनी बड़ी वेदना की निशानी थी और आवेग से काँपती हुई साँस-जैसा दीर्घ निश्वास उसके अजानते ही कभी-कभी निकल पड़ता था।

उसे देखते ही सुशील बोला—आप आ गये? तबीयत ठीक है तो?

कुछ लजाकर शिवनाथ बोला—हाँ!

इट इज एसेनशियल टु बि इनडिफरेण्ट। दुःख को जीतने की यही

एक तरकीब है। वह बोला—एक आदमी का मर जाना, दूसरे का वह हृदयविदारक रोना—

अजी, जो मर गया, उसने तो बाजी जीत ली। याद है आपको, एक दिन आपने कहा था, इस युग से मुगल-युग कहीं अच्छा था ; क्योंकि तब हम स्वतन्त्र थे? इस गुलाम देश में कुत्ते-बिल्ली जैसा जीवन लेकर कौन-सा सुख वह पाती? उसके लिये रोकर क्या करना है?

शिवनाथ अचरज से उसके मुँह की ओर देखता रहा। उस समय व्याख्यानदाता कह रहा था—जानते हैं हमारे देश में हैजे से हर साल कितने लोग मरते हैं? वह तादाद हजार में नहीं आती, लाखों-लाख कहिये। लाखों-लाख आदमी कुत्ते और बिल्ली की तरह मरते हैं। आखिर इसका कारण?

सुशील अजीब-सा हँसकर शिवनाथ से बोला—गुलामी।

वक्ता ने कहा—इसका कारण है हमारा कुसंस्कार, हमारी मूर्खता।

सुशील ने कहा—बस, अब उठ चलिये, यहाँ अब झूठ का आरम्भ हो गया। इसे सुनकर क्या होगा? आप ही कहिये, गुलाम जाति पंडित कब होती है? पराधीनता का तो धर्म ही लोगों को ज्ञान-विज्ञान से वंचित रखना है।

महामारी का प्रकोप थम चला था। उसकी महानाशकारी गति रुक गयी थी, तोभी ऐसी दशा में जिस आडम्बर के साथ मसान में रक्षाकाली की पूजा का आयोजन हुआ, उसे देख सुशील और पूरन दंग रह गये।

सुबह से ही ढाक बज रहा था, दोपहर को शहनाई और ढोल भी आ गये। बीच-बीच में वाद्य-समूह के शोर से होनेवाली पूजा की सूचना हो जाती। दिन को महापीठ में वलि हो चुकी। तान्त्रिक अक्षय ने लाल कपड़ा पहन लिया है, ललाट पर सिन्दूर का बड़ा-सा टीका लगाया है और घर-घर से अरवा चावल, मिठाई, सुपारी, जनेऊ, सिन्दूर, पैसा आदि जमा

करना चल रहा है। कहा जाता है, इस तरह संग्रह करने से पूजा की एक विधि सम्पन्न हो जाती है। घर-घर एक आदमी ने निर्जल उपवास किया है। रात को जब पूजा और वलि हो जायगी, तब कहीं वे भोजन करेंगे! जिन्होंने उपवास किया है, उनमें से अधिकांश या तो घर की मालकिन हैं, या कोई प्रौढ़ा स्त्री। शिवनाथ के यहाँ उपवास किया है उसकी फूफी ने। इस पूजा की धूम में वह पगला भी, जैसे उत्साह से मस्त हो उठा है, आज सुबह से ही लापता है।

कोई तीन बजे होंगे। धूप में अभी भी आग की लहर थी। धरती जैसे जली जा रही हो। पता नहीं किस गाँव से वह पगला एक काले पाठे को कंधे पर लादकर ले आया। उसका चेहरा सूखकर विवर्ण हो गया था, आँखें गड्ढों में धँस गयी थीं, सारा शरीर पसीने से लथपथ! कचहरी से सुशील ने उसकी यह दशा देखी। वह सिहर उठा। घबराकर उसने आवाज दी—अरे ओ बाबू साहब, सुनिये, सुनिये। थोड़ा सुस्ता लीजिये।

हाथ हिलाकर पगले ने जवाब दिया—नहीं, पूजा का बकरा है!

पूजा का है तो क्या हुआ! जरा विश्राम कर लीजिये। पानी-वानी पीकर जाइये।

उहूँ। आज उपवास है, उपवास।—कहकर पगला चला गया।

सुशील बोला—विचित्र जीव है! देखी आपने पगले की भक्ति!

शिवनाथ ने कहा—कितना भी गया-बीता क्यों न हो, है तो आखिर भले वंश की सन्तान। उसीका वंश तान्त्रिकों का है। जमीन्दारी भी है।

आपके यहाँ बहुत-से तान्त्रिक हैं, क्यों? इस तन्त्र में एक भयावना रोमांटिसीज्म है। मुझे बहुत अच्छा लगता है। घोर अन्धकार, मौत के सन्नाटे में ढँका मसान, लाश पर बैठे हुए···उफ्, देखिये न, मेरे रोंगटे खड़े हो आये।

हमारा देश हकीकत में तान्त्रिकों का ही देश है! एक समय था,

जब तन्त्र-साधना की यहाँ बड़ी धूम थी ।—शिवनाथ गौरव की हँसी हँसा ।

सुशील बोला—चलिये, आज आपके यहाँ की काली पूजा देख लूँ। वहाँ तो बहुत-से तान्त्रिक होंगे ?

शिवनाथ बोला—हाँ, होंगे क्यों नहीं, लेकिन वे साधक थोड़े ही हैं ? साधक तो गुप्त रूप से साधना करते हैं। उसकी बात ही कुछ और है।

खैर, जो भी हो, तो भी जाऊँगा ।

उस दिन संध्या का अँधेरा गहरा हुआ कि गाँव में घर-घर के किवाड़ बन्द हो गये। सारा गाँव सन्नाटे में डूब गया, गाँव के बाहर नदी—किनारे मसान में चहल-पहल। कहते हैं, आज क्या तो महाकाली पीट-पीटकर महामारी को बेदम बना निकाल देती हैं और महामारी जार-बेजार रोती हुई मारी-मारी चलती है! भय के एक अनोखे वातावरण में सारा गाँव शिशु के समान आँख मूँदकर निर्जीव-सा पड़ा है।

सुशील बोला—अब जाया जाय ।

इधर कई दिनों से शिवू सुशील और पूरन के साथ कचहरी में ही सो जाया करता। उसने कहा—चुप-चाप चलिये। कहीं किसन और नायबजी जग गये, तो वे बड़ी चिल्ल-पों मचायेंगे ।

अमावस का घटाटोप अँधेरा। ऊपर आसमान के आँगन में तारों की ज्योति भी मलीन पड़ी थी। काफी दिनों से धरती पानी से नहायी न थी, उसके चारों ओर धूल की एक परत-सी पड़ गयी थी। उसी परत की आड़ में तारे बदरंग और मद्धिम दीख रहे थे। इस घने अंधकार में तीन किशोर चुपचाप ही जा रहे थे। किसी खौफ़नाक घटना के सामने आ जाने की आशंका से वे सतर्क और कौतूहल से आतुर थे ।

एक धीमी, लेकिन क्रोधभरी, गुर्राहट सुनायी पड़ी—गों-गों। कुत्ता था। कहीं से मुर्दे का कोई हिस्सा उठा लाकर खाने में लगा था। आदमी की आहट पाकर बाधा के ख्याल से नरमांस का चसका पाया हुआ पशु गुर्रा

उठा। वे और कई डग आगे गये। वह, वहाँ आदमी के समान उठँग कर कतार में क्या बैठा है? ओ, गीध हैं गीध, कुत्ते के मुँह में लोथड़े को देख ताक लगाये बैठे हैं। कहीं दूर पर स्यारों का शोरो-गुल—मुर्दे के लिए छीना-झपटी! मैदान की पगडंडी घने जंगल में पहुँच गयी! दोनों ओर घने और ऊँचे सेमल और अर्जुन के पेड़—ऊपर का आसमान तक नहीं दिखाई देता। यों मावस की घोर अन्धियारी में आँखें काम करती हैं, पर यह तो जैसे अंधकार का लोक ही हो, जिसकी अथाह गहराई में सब-कुछ बूड़ जाता है, शायद अपने आपका अनुभव भी संभव नहीं। इसी अंधकार से बहकर एक नाला नदी में जा मिला है। नालेपर एक पुल-सा बना है। उसके पाये के पास बड़ा बड़ा-सा क्या है वह? तीनों ठिठक गये। हाँ, कोई लंबा-तगड़ा आदमी ही तो है चुपचाप खड़ा। उसके साथ में जाने क्या है।

सुशील ने पूछा—कौन?

वह आदमी हो-हो करके हँस पड़ा। बोला—डर लग गया बच्चे? कौन हो तुम?

—गोसाईं बाबा! कहकर शिवू उनसे लिपट गया।

—शिवू! इत्ती रात गये तू यहाँ काहे को बेटे! और ये कौन हैं, डाक्टर बाबू?

वह वास्तव में गोसाईं बाबा ही निकले।

हमलोग पूजा देखने जा रहे हैं। मगर तुम यहाँ ऐसे क्यों खड़े थे!

बहुत खूबसूरत अँधेरा है बेटा! मिसर की लड़ाई में एक दिन जंगल में मैंने ऐसा ही अँधेरा देखा था। एक खत लेकर मैं दूसरे पड़ाव को जा रहा था कि दुश्मन हमारे पीछे पड़ गये। उस दिन तो अँधेरे ने ही मेरी जान बचायी। तब से यह अँधेरा मेरे मन में बैठ गया है। चुप हो

कर संन्यासीजी ने फिर एक बार उस गहरे अँधकार को देखा! बादमें बोले—अच्छा, तो चलो बेटे!

सुशील धीमे से कुछ बोला, शिवनाथ उसे समझ नहीं सका। उसने पूछा—क्या कहा?

सुशील बोला—यही, सैनिक अनुशासन की बात कह रहा था।

अंधेरे-अंधेरे कुछ ही दूर जाने पर म ान मिला। मसान में दीपों की माला और मनुष्यों का मेला लगा था। जहां-तहाँ भक्तों के दल गोल बनाकर बैठे थे। बीच में शराब की बोतल! कही गाँजा! बीच में मिट्टी के चँतरे पर काली की मूर्ति। सामने ही हाथ में जवा का एक फूल लिये पुजारी ध्यानमग्न! गोसाई बाबा पुरोहित की बगल में जप करने के लिये बैठ गये।

मूर्ति की ओर देखते हुए सुशील बोला—काली माई के लायक ही यह पूजामण्डप है। मसान के बीचोबीच, ऊपर खुला आकाश, चारों ओर स्यार और कुत्तों का कोलाहल; ऐसा न हो तो शोभे ही नहीं।

पूरन मुग्ध होकर बोला—गजब की मूर्ति है! ऐसी कल्पना किसी भी देश, किसी भी युग में नहीं की गयी होगी।

शिवनाथ को याद-सा हो आया। बोला—काली—अंधकार समाच्छन्ना कालिमामयी। सब कुछ छिन गया है, इसलिए नंगी हैं। आज देश में जहाँ देखो, मसान ही मसान है। इसलिए माँ ने कंकालों की माला पहनी है। अपने शिव को अपने पैरों रौंद रही हैं—आह, क्या रूप हो गया है!

सुशील ने कुछ अजीब ढंग से शिवनाथ की ओर देखा। शिवनाथ को जरा अचरज तो हुआ, पर बोला—आपने आनन्दमठ नहीं पढ़ा?

—क्यों नहीं?

—फिर भी इस तरह ताक रहे हैं!

सुशील ने कहा—बड़ी अच्छी बात याद आ गयी है। माँ को प्रणाम कीजिये।

तीनों ने मूर्ति के आगे माथा टेका। सुशील ने पूछा—और प्रणाम का मन्त्र ?

बीच ही में शिवनाथ बोल उठा—जयंती मंगलाकाली—बचपन ही में वह सीख चुके हैं हमलोग।

हँसकर सुशील कहने लगा—बस-बस, छक गये आप। इस मंत्र द्वारा आनंदमठ की देवी को प्रणाम नहीं किया जा सकता।

शिवनाथ ने कहा—वंदे मातरम्।

सुशील बोला—हाँ, यह रहा—वंदे मातरम्।

पूरन ने कहा—अब घर जाया जाय। रात बहुत निकल गयी।

फिर वही अँधेरी रात शुरू हुई। सुशील बोला—शिवनाथ बाबू, अगर आप का व्याह हो नहीं गया होता...

हँसकर शिवनाथ ने पूछा—तो ?

तो अपनी बहन दीपा से आपका व्याह कराता। खासी लड़की है और उससे देश की जाने कितनी सेवा कर सकते आप !

शिवू ने कुछ नहीं कहा। तीनों चुप हो गये। चुप ही चुप तीनों कचहरी में आ पहुंचे। अब सुशील ने हँसकर कहा—अरे, यह तो भूल ही बैठा था शिवनाथ बाबू, राह में इस हैजा-सुन्दरी के तो कहीं दर्शन ही नहीं हुए।

वास्तव में, किसी को भी इसकी याद नहीं आयी। एक भावावेश में ही वे इतनी दूरी तै करके चल आये।

सत्रह

एक महीना निकल गया। जेठ का पहला हफ्ता बीत चला। प्रकृति शांति-सी हो आयी।

बवंडर की तरह गाँव पर जो आफत टूट पड़ी थी, वह जाती रही। महामारी रुक गयी। लगातार कई दिन अंधड़-पानी भी आता रहा। वर्षा से नहाकर प्रकृति का रूप भी निखर आया है। धूप के उत्ताप में अब आग जैसी जलन नहीं रही। मैदान या रास्तों में अब गर्द का बवंडर नहीं उठता, रेगिस्तान की तरह धू-धू करनेवाली धरती की छाती पर हरियाली दिखायी दी। दूर-दूर जहाँ तक नजर जाती, हरा-भरा दिखायी देता। पास पहुँचने पर वह हरियाली मरीचिका के समान गायब हो जाती, केवल अभी-अभी उगी हुई घास के अंकुर छिट-फुट दिखायी देते ; कुछ यहाँ, कुछ वहाँ। खेतिहर हल-बैल लेकर खेतों में जुट पड़े हैं, भदई धान के बीए बोने के दिन आ गये हैं, अब तो साँस लेने की भी फुर्सत नहीं !

नायबजी बीज का हिसाब कर रहे थे—घर के हलवाहों पर किसन ने रौब गाँठना शुरू कर दिया है—अरे, कै कट्ठा खेत तुमने तैयार किया है और खाद ही कितनी डाली है कि, मछली की तरह हा बाये भत्ते के लिये हाजिर हो गये ?

हलवाहों का अगुआ बहारुद्दीन शेख बोला—यह बात पूछने की है।

पूछना वाजिब भी है। मगर इस साल कैसा-क्या गुजरा, यह तो आप से छिपा नहीं है। फिर इतना जल्द किया क्या जा सकता है, आप ही बतायें।

एक दूसरे ने कहा—अरे बाबा, आज तो लोगों के चेहरे पर हँसी दिखायी दी है, कंठ से बात फूटी है—अब तक तो क्या नाम है कि हाथ-पाँव तक जैसे पेट में जा रहे थे। हाँ, यह तो हमारे बाबू साहब थे, अल्लाह की दुआ से वह बादशाह बनें, कि जान बची और आज खेती के लिये हाजिर हुए। समझ नहीं आता कि आप कैसे ऐसा कहते हैं सिंहजी!

राखाल सिंह ने कहा—तो तीस बीघे के लिये भदई धान का बीज एक ही मुश्त निकाल दो। और हाँ भैया, तुम लोग सुन लो, भत्ता पाँच दिन से ज्यादा नहीं दिया जायगा—हुक्म ही नहीं है। इतने से न बने तो फूफीजी से कहो।

शिवनाथ बड़ा ही बेमना-सा, थका-माँदा-सा कचहरी में आया। सुशील और पूरन चले जा चुके हैं। वह अकेला पड़ गया है। इस अटूट और कड़ी मिहनत के कारण उसका शरीर पहले से थोड़ा दुबला हो गया है, कुछ लम्बे हो जाने का भ्रम हो आता है। बाल बनाने का मौका नहीं मिला। साज-सँवार न पाने की वजह से वे रूखे और बिखरे हैं—हवा के हल्के झोंके से फुरफुर उड़ रहे हैं। आँखों में चिन्ता की छाप!

उसे देखते ही बहारुद्दीन तथा और-और हलवाहे अदब के साथ खड़े हो गये। बहारुद्दीन बोला—हुजूर माँ-बाप हैं, हुजूर से हमलोगों की फरियाद है। क्या आप के रहते बाल-बच्चों को लेकर हमलोगों को भूखों मरना पड़ेगा? आप के हुक्म का इन्तजार है हुजूर, ऐसा न होगा तो आखिर हम और कहाँ जायँ?

शिवनाथ की चिन्ता की कड़ी टूट गयी। भौंहें सिंकोड़कर उसने लगभग सब की ओर प्रश्नभरी आँखों से देखा। बहारुद्दीन फिर एक

लम्बा-चौड़ा व्याख्यान देने के फेर में था कि राखाल सिंह बोल उठे—अरे बाबा, चुप भी करो, यह 'हुजूर, सरकार, माँ-बाप' करके दिमाग चाटने की जरूरत नहीं।

शिवनाथ की ऊबभरी भौंहें कौतुक से खिल पड़ीं। उसने हँसकर कहा—हुजूर, माँ-बाप, सरकार,—बहारुद्दीन की ये बातें परम्परा से चली आ रही हैं, जो आपकी दरबारियत के दायरे में ही आती हैं। लेकिन बात क्या है?

राखाल सिंह ने कहा—बात तो जरूर अच्छी है, मगर उसके भीतर तो चाल है न! महज अपना उल्लू सीधा करने के लिये ऐसा कह रहे हैं ये।

लेकिन संसार में जितने भी बड़े आदमी हैं, सब के सब तो इन गरीबों की स्वार्थसिद्धि के लिये ही हुजूर और माँ-बाप बने बैठे हैं। गर्ज न हो तो कौन किस को हुजूर कहता है सिंहजी। खैर, जाने दीजिये, माजरा क्या है, सो कहिये।

बातचीत के ऐसे सिलसिले से नायबजी मन ही मन नाराज हो उठे। उन्होंने फालतू बातें खत्म करके काम की बात चलायी। बोले—खेतों में जुताई वगैरह इस बार अब तक नहीं-सी ही हुई है, यहाँ तक कि कहीं गाड़ीभर खाद भी खेतों में नहीं डाली गयी। पानी पड़ने के बाद अभी-अभी तो काम का श्रीगणेश हुआ है और अभी से ही हलवाहे ज्यादा-से ज्यादा धान पैंचा लेने को मुझे घेरने लगे। अभी सारी बरसात तो बाकी ही है, बरसातभर इन लोगों की रोजी चलाने के लिये उधार-पैंचा देना ही पड़ेगा। और इन हलवाहों के सिवा बँटैयावाले हैं, गरीब रैयत हैं, सब किसी को देखना है। सो ये हलवाहे जितना माँग रहे हैं, उतना तो किसी भी हालत में नहीं दिया जा सकता। सच पूछा जाय, तो इनको अभी धान देना ही नहीं चाहिये। पहले ये लोग जुताई शुरू करें, काम-

काज देख लिया जाय, फिर धान दिया जायगा। और यों यदि आप सदाबरत खोल दें, तो बात ही दूसरी है।

साथ ही साथ बहारुद्दीन ने एक सलाम ठोंककर कहा—तो हुजूर को कमी ही किस बात की है? चाहें तो क्या सदाबरत नहीं चला सकते? अभी-अभी बावरी डोम, मोची, सब को आड़े वक्त में हुजूर ने जो कुछ दिया, उसकी शुहरत अल्ला के दरबार तक जा पहुँची, वहाँ उसका लेखा रहा। देखियेगा, इस साल अल्ला की दुआ से कैसी बेहतरीन फसल लगती है!

शिवनाथ बोला—लेकिन बात ऐसी नहीं है बहारुद्दीन! लोगों की जीविका अकेले मैंने नहीं चलायी है। यह बात तुमसे किसने कही? जिससे जो बन पड़ा, सब ने उसमें मदद दी है। आइन्दे फिर किसी से ऐसा न कहना। तुम हमारे आदमी हो। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनकर लोग मुझी को बुरा-भला कहेंगे, दोष देंगे।

नहीं सरकार, ऐसी गैरवाजिब बात क्यों कहने लगा? अपनी-अपनी औकात के हिसाब से दिया तो सब ने है, लेकिन माथा नहीं हो, तो काम नहीं चलता। आप वही माथा हैं।

खैर, जाने दो। तुम लोग धान लेने आये हो? हर्ज क्या है, अभी थोड़ा-बहुत करके ही लो। फिर जैसी जरूरत पड़ेगी, मांगने से मिलेगा ही। यह तुम सेंत-मेंत के थोड़े ही ले रहे हो, उधार ले रहे हो। उपज होने पर लौटा ही दोगे।

जी हाँ माँ-बाप, पहले आपका देना, तब हमारा हिस्सा। अगर आपको चुकाने में ही चुक जायगा, तो हम हाथ डुलाते अपने-अपने घर जायँगे, मगर हुजूर का पावना तो दे ही लेंगे।

तो नायबजी, बीच-बीच का कुछ कह दीजिये। जितना आप देना चाह रहे हैं, उससे थोड़ा ज्यादा दे दीजिये। आखिर ये लोग भी तो हमीं लोगों के आसरे हैं, दुःख पड़ने पर और कहाँ जायँगे?

हुजूर की बात, हुजूर के तावेदार हैं, किस दूसरे के पास हाथ फैलायें ?

बातों का क्रम यहीं तोड़कर शिवनाथ पोखरे की ओर वाले बरामदे में एक डेक-चेयर खींचकर उसपर बैठ गया। यह हिस्सा और तरफ से कुछ एकान्त पड़ता है—सामने काजल जैसा पानीभरे पोखरे के किनारे-किनारे भेंटवास और लाल कमल के फूल खिले हैं, सेवार और जलज लताओं में अनगिनत छोटे-छोटे सुफेद फूल आसमान में असंख्य तारों से झलमला रहे हैं, बीच-बीच में कलमी के बैंगनी फूल बूटे-से जड़े हैं। किनारे की हवा भी और जगह से शीतल है।

शिवनाथ को अवसाद ने आ घेरा है। इस महीनेभर के उत्साहपूर्ण कर्मकोलाहल के बाद वह कैसा तो मौन पड़ गया है! सुशील और पूरन चले गये हैं। किन्तु अपनी सोहबत की एक ऐसी छाप छोड़ गये कि यहाँ के मित्रों का साथ अब उसे वैसा अच्छा और रुचिकर लगता ही नहीं। बैठा-बैठा वह कामों की भीड़ भरे पिछले कुछ दिनों की बात सोचने लगा। उसे अच्छा लगा, मन एक गौरव से भर-सा उठा। अपने एक गौरवपूर्ण भविष्य की कल्पना करने को मन बेचैन हो उठा। वह गौरव, धन-सम्पत्ति, गाड़ी-घोड़ा, राज-पाट का नहीं, कठोर साधनामय त्याग के प्रकाश से आलोकित जीवन का गौरव हो। उसकी उस कल्पना में जार-बेजार रोती हुई फूफी सामने आतीं, उसकी माँ गीली आँखें लिये राह में अपलक उसकी ओर खड़ी-खड़ी निहारती होतीं, छाती में आँसू का सागर दबाये उदास बेचारी गौरी पीछे पड़ी पायी जाती और वह आगे, निरन्तर आगे की ओर बढ़ता जा रहा है—बीहड़ बाट, विपत्तियों के बादल से भरा आकाश, प्रकाश डूब रहा-सा, अंधकार—घनघोर अंधकार, दोनों किनारे घने जंगल, जंगल की वीथी में हाथ को हाथ न सूझे ऐसा गहरा अँधेरा, आगे-पीछे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता और ऐसे में वह चल पड़ा है!

उस अँधकार के उस पार प्रकाश से झलमलाते श्मशान में श्मशान-काली की मूर्त्ति देखने ही योग्य।

उसकी इस कल्पना से उस दिन की यथार्थ स्मृति अजीब ढङ्ग से मिल गयी। उसे याद आयी, उसी रात को काली की चर्चा करते हुए आनन्द-मठ की बात आयी थी—

"इस जनहीन जङ्गल के बीच, हाथ को हाथ न सूझनेवाली अँधेरी रात में, अनुभव न की जा सके ऐसी निस्तब्धता में से आवाज हुई—'मेरी मनोकामना क्या पूरी नहीं होगी?' इसके उत्तर में सूनसान जङ्गल में अशरीरी वाणी गूँज उठी—'तुम्हारी चढ़ौती क्या है?'

'मेरी चढ़ौती मेरा जीवन, जीवन का सर्वस्व।'

'जीवन तो नाचीज है, उसका त्याग हर कोई कर सकता है।'

'उसके सिवाय है भी क्या, और क्या दे सकता हूँ मैं?'

तब फिर जवाब मिला था—भक्ति।

सुशील ने कहा था—देश कुछ अलग सत्ता है शिवनाथ बाबू! देश तो मनुष्य के मन में ही बसता है, उस भक्ति के स्पर्श से ही मिट्टी माँ हो उठती है, उसी साधना से माटी की मूरत चेतनामयी-चिन्मयी हो जाती है।

भावों के आवेग से उसकी तरुण छाती फूल-फूल उठती थी।

'बाबू! दुलहा बाबू!'

चौंककर शिवनाथ ने देखा, आधे घूँघट में ढँकी एक नारी उसे पुकार रही है। उसी डोम की वह बहू। उसके चेहरे पर अभी भी दुर्बलता का आभास है, पर वह बहुत हद तक चंगी हो उठी है। बहू रूपवती तो नहीं, श्रीमयी है। उसका छरहरा-सा बदन जैसे पत्थर पर खोदी हुई कोई गठित प्रतिमा है। रोग की दुर्बलता के बावजूद भी लावण्य एकबारगी खो नहीं गया है; बल्कि तन्दुरुस्ती के स्पर्श से वह अब और जीवित और तेजोमय हो उठा है। शिवनाथ ने उधर जो देखा, तो फीका-फीका हँसकर

वह बोली - फिर आपकी शरण में आना पड़ा बाबू, विपद में और जाऊँ भी किसके पास, कहिये ?

'विपद, फिर कौन-सी विपद पड़ी तुम पर ?'

उसने सिर झुकाकर कहा—कोई काम दिला दीजिये कहीं, उस घर में अब मेरा गुजर नहीं होगा।

शिवू ने सोचा, वही भूत-प्रेत वाली बात होगी। बोला—अरे, इस दुनिया में भूत-प्रेत कुछ नहीं है। आखिर इतने दिनों तक उसी घर में तो रहीं—

बीच में ही वह बोल उठी—भूत-प्रेत नहीं बाबू; सास, जेठ, देवर सबने मिलकर रहना मुहाल कर दिया है! वे रात को दो घड़ी चैन से सोने भी नहीं देते।

'क्यों ?'—शिवू का जी जल उठा।

बहू के होंठ थरथराकर रह गये—इस बात का वह उत्तर नहीं दे पायी। थोड़ी देर के बाद उसने धीमे-धीमे कहा—अपने जेठ से मुझे चुमौना कर लेने को कहते हैं।

शिवनाथ को आश्चर्य हुआ, आश्चर्य ही नहीं, फिर से विवाह करने में इनकार देख उसके प्रति उसका स्नेह जरा बढ़ गया। बोला—तो क्या तुम फिर से ब्याह नहीं करना चाहती ?

नजर झुकाकर ही वह बोली—नहीं। आप कहीं मेरा काम लगा दें। वहीं काम करूँगी और पड़ी रहूँगी।

मगर कहाँ, किसके यहाँ नौकरी ढूँढ़ी जाय। सोचकर वह बोला—अच्छा, देखूँगा।

बहू आँखें पोंछकर जरा हँसकर बोली—वैसे क्या सोचने लगे थे दुल्हा बाबू ?

—कब ?

मैं जब आयी ? चार-पाँच बार आवाज दी, आपने कुछ सुना ही नहीं। लगा, जैसे मन पतंग की तरह आसमान में उड़ता फिर रहा है।

शिवनाथ हँसकर रह गया—आखिर उससे क्या कहे, वह समझेगी भी क्या !

वह फिर खिलखिला उठी—नान्ती दीदी की बात सोच रहे थे, न ?

शिवनाथ की नजर कड़ी हो आयी। छोटी जात की स्त्री के ऐसे मजाक से उसके आत्मसम्मान को चोट पहुँची। इस औरत ने और भी एक दिन इसी तरह छेड़छाड़ करने की कोशिश की थी।' शिवू की नजर देख बहू सिटपिटा गयी। निहोरा करती हुई बोली—आप तो दुलहा बाबू होते हैं न, इसी नाते मैंने ऐसा कहा बाबू !

अपने को जब्त करने के बावजूद शिवनाथ जरा रूखे ही स्वर में बोला—अच्छा, तू अभी चली जा।

मेरे लिये कोई नौकरी ठीक कर दीजिये बाबू, डोम हूँ, मिट्टी फेंकूँगी, नाला साफ करूँगी ; जो कहेंगे, वही करूँगी।

'हुं'।—बात को जल्दी खत्म करने की गरज से शिवनाथ बोला। और फिर उसने अपनी आँखें आकाश की ओर रोपकर चिंता की टूटी हुई कड़ी का छोर ढूंढ़ने की चेष्टा की। डोम-बहू कुछ क्षण अपने आँचल को ऐंठती हुई खड़ी रही, फिर जैसे चुपचाप आयी थी, वैसे ही चुपचाप चली गयी। शिवनाथ ने मुड़कर देखा, वह जा चुकी है। उसे कैसा तो लगा, नः, ऐसी रूखाई अच्छी नहीं। उसकी आत्मीयता का सुर बड़ा ही मीठा है। शिवनाथ ने एक लम्बी साँस फेंकी। इस निहायत मामूली सी बात से ही उसका मन कैसा तो उदास हो उठा ! उसकी कल्पना का वृत्त कहाँ जो खो गया, पता नहीं चला। फिर एक लंबी साँस छोड़कर उसने अपनी आँखें मूंद लीं। गौरी के प्रति उसका अन्याय और न बढ़े, यह सोचकर उसने उसे पत्र दिया है। उत्तर आने का भी समय हो चला।

डाक बँटने का वक्त भी तो हो आया। जरा अधीर-सा होकर उसने अवाज दी—किसन सिंह।

उसकी आँखों में बिना सोचे ही पत्र लिखने में लगी हुई किशोरी गौरी की तस्वीर झूल गयी। किशोरी गौरी—नीली साड़ी में लिपटी, ओंठों के कोने में हल्की हँसी। खत लिखते हुए अनायास ही उसके अधरों पर हँसी फूट आयी है।

किसन सिंह आया। शिवनाथ ने कहा—जरा रास्ते की ओर नजर रखो। डाकिया आवे और मेरी कोई चिट्ठी हो, तो ले लेना।

तब तक खत लेकर खुद फूफी आ खड़ी हुई—शिवनाथ, तुम्हारी चिट्ठी है।

एक सुन्दर सा लिफाफा। उस पर अंग्रेजी में पता लिखा। शिवनाथ का कलेजा धक से रह गया। अपना काँपता हुआ हाथ बढ़ाकर उसने चिट्ठी ले ली।

फूफी ने पूछा—कहाँ से आई है? बहूरानी ने लिखा है शायद!

शिवनाथ डाकघर की मुहर देख रहा था। बोला—नहीं, शायद कलकत्ते की है।

खोलकर देखा—हाँ, सुशील बाबू ने लिखा है।

सुशील ने!

हाँ।

फूफी थोड़ी देर चुप रहकर बोलीं—बहूरानी का खत-वत नहीं आता?

नहीं।

लेकिन तू तो लिख सकता है?

शिवनाथ चुप रह गया। सच कहने में भी खतरा था और झूठ कहने को जी नहीं चाह रहा था। फूफी ने कहा—अगर तू पत्र नहीं लिखेगा, तो क्या वह बेचारी पहले-पहले खुद से पत्र लिख सकती है?

शिवनाथ का चेहरा तमतमा उठा। निःसंकोच दृष्टि से फूफी को देखकर उसने दृढ़ता से कहा—मैंने पत्र लिख दिया है।

फूफी अवाक होकर उसकी ओर देखती हुई दुःखी होकर बोलीं—तू इस ढंग से क्यों बोलता है, मैंने कुछ दूसरी नीयत से तो नहीं कहा।

शिवनाथ उस पर कुछ नहीं बोला। ध्यान देकर सुशील के पत्र से उलझ पड़ा। बड़ी लंबी चिट्ठी है—बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि कब और किस गाड़ी से तुम कलकत्ते आ रहे हो, यह जरूर लिखो। मैं स्टेशन पर मौजूद रहूँगा—तुम्हें मेरे साथ ठहरना होगा। और लिखा है, दीपा तो बड़े आग्रह और कौतूहल से तुम्हारी राह देख रही है। स्वागत के लिये वह एक साड़ी खरीद लायी है। उसका ख्याल है, आठकी उम्र में ही वह काफी बड़ी हो गयी है, किसी भलेमानस के आगे क्या अब फ्राक पहनकर जाया जा सकता है!

शिवनाथ के हँसी आ गयी। फूफी जानें कब वहाँ से चली जा चुकी थीं।

छोटी-से छोटी वंचना या उसकी संभावना पर आदमी उसके प्रतिकार के लिये जी-जान से लग जाता है, लड़ाई का ऐलान कर बैठता है, बलपूर्वक अपने हक का दावा पेश करता है, लेकिन जिस दिन सहसा वंचना का चरम आ जाता है और अनजानते ही अपना सब कुछ पराये हाथों में चला जाता है, उस दिन एक अभागे की तरह उसे स्वीकार कर लेने के सिवाय दूसरा कोई चारा ही नहीं रह जाता। शिवू के उस तमतमाये चेहरे और उन कई दृढ़ शब्दों में जैसे तूफानी बिजली और वज्र की कड़क थी. जिसने फूफी के जीवन के यत्न से उठाये हुए महल को चकनाचूर कर दिया। इस वञ्चना की पीड़ा से उन्होंने उफ तक न की, किसी पर यह बात जाहिर तक न होने दी, वे सिर झुकाए हुए चुपचाप अपने पूजा-घर में चली गयीं।

पूजा में जरूरत से ज्यादा देर देखकर ज्योतिर्मयी दो-दो बार पूजा-घर के द्वार तक आयीं और उन्हें ध्यान में लगी देखकर दोनों ही बार लौट-लौट गयीं। अब की तीसरी बार वह कुछ कहने को खड़ी रहीं।

बड़े ही शान्त स्वर में शैलजा ने पूछा—मेरे आसरे खड़ी हो बहू ?

ज्योतिर्मयी ने कहा—बेला बहुत हो चुकी है।

उन्होंने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—बस, आयी।

प्रणाम करके पूजा खत्म की। पूजा के सरो-सामान खुद धो-पोंछकर सँवारती हुई बोलीं—एक ही साथ ऊपर और नीचे, दोनों ओर नजर नहीं रखी जा सकती।

ज्योतिर्मयी ने उनके हाथ से बर्तनों को खींच लिया और बोलीं—चलो न बहन, एक बार तीरथ से घूम आया जाय।

शैलजा बोलीं—जाऊँगी भाभी, जाऊँगी। शिवू की गिरस्ती बसा दूँ, फिर एकबारगी निकल पड़ूंगी।

ज्योतिर्मयी ने उनकी बात को आम बात जैसे ही स्वीकार किया। बोलीं—भला उसकी गिरस्ती की साज-सम्हाल तुम खत्म भी कर पाओगी कभी ? तुम्हारे शृङ्गार से ही क्या पूरा पड़ जायगा ?

शैलजा हँसीं। बोलीं—बहूरानी की विदाई के लिये मैं आज ही लिखूँगी। दूसरों पर बिगड़कर अपनी बहू को यों छोड़ रखना, यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। शिवू को इससे दुःख होता है, क्रोध भी होता होगा।

ज्योतिर्मयी ने गर्दन हिलायी—नहीं, नहीं, वे लिवा गये हैं, उन्हें ही भेजना पड़ेगा। हम लोग बहू को लिवाने क्यों भेजें ?

नः, भेजना ही पड़ेगा। शुरू से आज तक तुम मेरी बात मानती आई हो बहू, एक यह बात भी माननी पड़ेगी। इसे नकारो मत।

ननद की ओर अचरज से देखती हुई ज्योतिर्मयी ने कहा—अच्छा बहन, तुमसे क्या किसी ने कुछ कहा है ?

शैलजा ने बार-बार गर्दन हिलाकर कहा—नहीं तो। यह मजाल किस की है कि मुझसे कुछ कहे। मैं बड़े बाप की बेटी ठहरी, बड़े भाई की बहन हूँ, शिवू की फूफी !

तुम जरूर ही मुझ से छिपा रही हो।

यकीन मानो बहू, किसी ने कुछ नहीं कहा। आज पूजा में जो बैठी, तो ठाकुर का ध्यान ही नहीं कर सकी। बार-बार बहू रानी ही याद आती रही। तुम इसमें 'ना' न करो, मैं बहू को मँगा भेजती हूं। वह मेरे घर की लक्ष्मी है और अब तो शिवू भी मेरा सयाना हो गया।

ज्योतिर्मयी की आँखें गीली हो आयीं। बहू को लेकर सदा उनके मन में एक ग्लानि-सी जमी रहती, आज वह एकबारगी धुल गयी।

अठारह

बड़े शांत भाव से ही शैलजा ने सारा प्रबन्ध किया। उसी दिन पत्र लिख दिया गया। शैलजा खुद कहती गयीं और नायबजी लिखते गये—"अब बहू रानी बारह की देहली पारकर तेरह में पहुँच गयी। वह समय आ गया कि वह अपनी घर-गिरस्ती समझ-बूझ ले। बड़े ही कष्टों से मैंने शिवनाथ को पाल-पोसकर बड़ा किया, उसका विवाह कराया। अब उसकी गिरस्ती बसा दूँ तो मेरे कर्त्तव्यों की इति हो जाय। मेरे दुःख-कष्टों की बात आप लोगों से छिपी नहीं, मैं भी अब बाबा विश्वनाथ की शरण लेना चाहती हूँ। और मैं काशीवास तभी कर पाऊँगी कि जब बहू रानी के हाथों में उसका सारा संसार सहेज-सौंप दूँ। इसलिये लिख रही हूं कि इसी महीने एक अच्छा-सा दिन देखकर यदि बहूरानी को भेज देने की आप व्यवस्था करें, तो हमें बड़ी खुशी हो।"

इस चिट्ठी को भेजे कई दिन हो गये। फूफी ने इधर शिवू के सोने के कमरे को बड़े जतन से धो-पोंछकर सजाने में ध्यान लगा दिया है। सफेदी पोत दी गयी है, दरवाजे और खिड़कियाँ रंगायी जा रही हैं। जब यह खत्म हो जायगा तब लकड़ी के सामानों में पालिश होगी। रंगनेवालों ने कहा—माँ जी, कहें तो कमरे में तेल की रंगाई करके फूल-पत्ते काढ़ दूँ। निखर उठेगा।

फूल-पत्ते? हाँ, तो वही कर दो। लेकिन भैया, वह उसके घर में जो

गुलाब के फूल बनाये हैं, वे तो बड़े वाहियात लगते हैं। वैसे तो न हों कम से कम।

कहिये तो कमल के फूल बना दूँ? अगर आपको पसन्द न आयगा, तो हमारी मजूरी जायगी, और क्या!

अनुमति मिल गयी। उस दिन सवेरे बहुत-सी तस्वीरें फैलाकर अनन्त वैरागी बरामदे में बैठा था। फूफी ने शिवू से कहा—इनमें से तस्वीरें तो चुन दे शिवू! और किसी ने फूफी के इस बदले हुए रूप को समझा हो चाहे नहीं, पर शिवू से यह छिपा नहीं था। इस गहरी ममता की अभिव्यक्ति की आड़ में करुणाभरे विराग का विरोधी प्रवाह उनके मानस-तट को अपने आघातों से अस्थिर बना रहा था। किन्तु खुलकर उनसे इसके लिये माफी माँगते हुए पिछली घटना को स्वीकार कर लेने की लज्जा भी शिवू से किसी तरह नहीं उठायी जा रही थी। यह लज्जा तो मानों उस घटना की लज्जा से भी दुर्वह थी। मन ही मन वह एक ऐसे अमोल क्षण को आतुरता से ढूँढ़ता फिर रहा था कि उसे आत्मसमर्पण का अवकाश मिल जाय। यह बुलाहट जो हुई, तो वह फूफी की गोद से सटकर जा बैठा।

अनन्त वैरागी ने तस्वीरों का ढेर शिवू के सामने पसार दिया। लकड़ी के ब्लाकों से छपी हुई दुर्गा, काली, जगद्धात्री, युगल-मिलन आदि चित्र थे। सब को देखने के बाद शिवनाथ बोला—अच्छा, इनमें से तुम्हें कौन-कौन-सी पसन्द हैं। देखूँ, मेरी और तुम्हारी पसन्द मिलती है या नहीं।

अजीब हँसी हँसकर फूफी ने कहा—तुम्हारी और मेरी पसन्द में भी मेल हो सकता है भला! तू आज के नये युग का ठहरा और मैं ठहरी वह, उस युग की।

शिवनाथ के चित्त के किनारे एक उल्लसित लहर ने आघात किया, फिर भी उसने अपने को जब्त किया और हँसकर बोला—यह भी कोई बात है! मेरी शिक्षा, मेरी रुचि, यह सब कुछ तो तुम्हारी ही देन है

फूफी! देखो भी, मैं समझता हूँ, मेरी-तुम्हारी रुचि में हर्गिज फर्क नहीं पड़ेगा। अच्छा तो लो, मैं ही कह देता हूँ, हकीकत में इन तस्वीरों में तुम्हें कोई भी पसन्द नहीं है।

फूफी जरा अचम्भे में पड़ गयीं। बोलीं—ठीक कहते हो, सचमुच ही मुझे इनमें से कोई नहीं जँची।

शिवनाथ ने हँसकर कहा—मैं तुम्हारे मन की बात भाँप जाता हूं।

यकायक फूफी की आँखों से आँसू की दो बूँदें चू पड़ीं। धीमे से शिवनाथ बोला—तुम क्या मुझ पर नाराज हो?

झटपट आँखें पोंछकर शैलजा बोलीं—तो इन तस्वीरों को लेकर तुम आज जाओ अनन्त। अगर हो सके तो रविवर्मा की कुछ तस्वीरें लेकर कल-परसों में आ जाना। अभी जाओ।

अनन्त वैरागी चला गया। शिवू ने फिर पूछा—तुम मुझसे नाराज हो?

फूफी ने कहा—तू कुछ-कुछ पागल भी है शिवू।

—नहीं-नहीं, मेरे बदन पर हाथ रखकर तो कहो।

नहीं, देह पर हाथ देकर शपथ करके कुछ कहा जाता है भला! ऐसा नहीं करती।

लम्बी सांस फेंककर शिवनाथ चुप हो रहा। फूफी की विस्मित भंगिमा में उसे उत्तेजना की साफ बू मिल गयी। सो उस प्रसंग पर और आगे चलने की हिम्मत नहीं पड़ी। उसके माथे पर हाथ फेरते हुए फूफी ने कहा—जानता है तू, लुंठन-षष्ठी की कथा में आता है कि चूहा षष्ठी की सोने की मूर्ति ले भागा। गिरस्त का घर, बहू और बेटी—दो जने। बहू को बेटी पर शक हुआ कि वही मूर्ति को दबा गयी। इस तोहमत से दुखी बेटी ने अपने इकलौते बेटे के माथे पर हाथ रखकर कसम खायी। उसने कोई कसूर नहीं किया था, पाप भी नहीं। लेकिन इस तरह कसम खाने के दोष से तीसरे ही दिन अचानक उसका बेटा चल बसा। बदन पर हाथ देकर

कभी कसम नहीं खानी चाहिये। हाँ, तुम से मैं नाराज नहीं हूँ।

शिवनाथ चुप ही रहा। अभिमान के आवेग से उसका जी भरता जा रहा था। आखिर ऐसा कौन-सा कसूर बन पड़ा है, जिसकी कि माफी नहीं। और यह सचमुच का अपराध है भी ?

फूफी ने फिर कहा—अलबत्ता, जरा दुःख मुझे हुआ था। लेकिन यह सोच ले शिवू, जिसके जीवन में ओर-छोरहीन दुःख का सागर लहराता हो, उस पर यदि ओस के समान दुःख की एक बूँद बढ़ भी जाय, तो उससे क्या आता जाता है ? उसे मैं कब की भूल चुकी। यह बहू को जो भेजने को लिखा है, सो कुछ क्रोध के मारे नहीं, यह तो मेरी एक लालसा है, मेरा कर्त्तव्य है। और उस पर क्रोध या अभिमान करना ही मेरी भूल है। वह नन्ही नादान है, उसका कौन-सा कसूर हो सकता है ? उसे सिखा-पढ़ा कर घर-गिरस्ती यदि उसके हाथों सहेज न दूँ, तो फिर यदि हमलोगों को कुछ हो-हवा जाय, तो यह संसार सम्हालेगा कौन ? यह संसार है भी तो उसीका। हमारा अधिकार तो भगवान ने कब का छीन लिया है।अब अगर जबर्दस्ती बहू को हम इससे वञ्चित करें, तो ईश्वर हमें क्षमा न कर सकेंगे बेटा !

शिवू बिना कुछ कहे उठकर चला गया। फूफी की इस स्नेहभरी लम्बी सफाई से उसके मन का अभिमान मिटा नहीं। बल्कि बार-बार उसके जी में आने लगा कि इस घर-गिरस्ती से उसे कोई वास्ता नहीं। अभागी गौरी तपस्विनी-सी पड़ी रहे, मैं भी ब्रह्मचारी-सा यह जिन्दगी काट लूंगा। वह कचहरी आया और पोखर की तरफवाले बरामदे में डेक चेयर पर बैठ गया। उसकी कल्पना के इस वैराग्य से छूकर सारी धरती ही मानों गेरुआ वस्त्रवाली होती जा रही थी।

जेठ का तीसरा हफ्ता निकल गया। आसमान में बादलों का आना-जाना आरम्भ हो गया। ऊमस बढ़ गयी। बैठे-बैठे शिवनाथ पसीने से तर हो गया। उसे पंखे की याद आयी ! उसने पुकारा—सतीश !

सतीश शायद मौजूद नहीं था। नायब जी ने पूछा—आपने पुकारा!

—आपको नहीं, सतीश को।

जी, सतीश अभी-अभी तो था, शायद—कहते-कहते नायबजी पास आ गये।

हँसकर शिवनाथ बोला—कोई खास काम नहीं है। एक पंखा चाहिये था।

शिवनाथ खुद ही पंखे की खोज में उठ खड़ा हुआ। नायब जी ने कहा—कचहरी वाला कमरा तो बंद है, न हो तो मैं अपना पंखा लाये देता हूँ।

पंखा शिवनाथ के हाथ में देकर नायब जी खड़े रह गये। शिवनाथ ने पूछा—कुछ कहना है?

थोड़ा गम्भीर होकर उन्होंने कहा—जी, कहना तो चाहता था। लेकिन बुरा न मानें तो कहूँ। इस घर को मैं अपना ही घर समझता हूँ।

श्रद्धा-सहित शिवनाथ बोला—कहिये। संकोच की क्या बात! राखाल सिंह बोले—मेरा खयाल है, आपको खुद एक बार काशी जाना चाहिये। नाहक ही यह कटुता बढ़ती जा रही है और लोगों द्वारा उड़ायी जानेवाली अफवाहों से आपस का मनोमालिन्य और बढ़ ही जाने की संभावना है। इसी बीच लोग बहुत तरह की बातें उड़ाने लगे हैं।

शिवनाथ ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। एक ठंडी साँस छोड़कर चुप हो रहा। उत्तर दे भी तो क्या? उसके अन्तर का अभिमान वैशाख की आँधी के समान कुण्डली बनाकर फैलते हुए उसके हृदय पर छाता जा रहा था। जीवन पर चढ़े हुए कर्ज को चुकाये बिना क्या उपाय है! यदि बीते दिनों के स्नेह का कर्ज चुकाने के लिये अपना भविष्यत् बेचकर उसे दिवालिया भी बन जाना पड़े, तो वह वही करेगा।

राखाल सिंह बोले—मसलन आज की ही बात लीजिये, रामकिंकर बाबू

के मैनेजर साहब ने मुझसे कहा—सुनता हूँ, शिवू बाबू के दूसरे व्याह का इन्तजाम हो रहा है ? मैंने चकित होकर पूछा—यह किसने कहा आपसे ? वह बोले—देखिये, ये बातें छिपायी चाहे जितनी जायँ, छिपतीं नहीं। हमलोगों को उसकी भनक मिल ही जाती है। और हमें ही क्यों, काशी तक चली गयी है यह बात !

शिवनाथ ने चौंककर पूछा—यह कह क्या रहे हैं आप, ऐसी भी बात कह सकते हैं लोग ! यह तो सरासर झूठ है।

यह सुफेद झूठ है, यह क्या मैं नहीं जानता ? मगर दूसरों की जबान पर आप लगाम कैसे लगा सकते हैं ?

खैर, लोगों ने जो कहा, सो कहा। लेकिन इस बात पर उन लोगों ने कैसे एतबार किया ? क्या वे हमें इतना ही नीच समझते हैं ? क्या उनको यह विश्वास है कि मेरी माँ और फूफी ऐसा भी अन्याय कर सकती हैं !

राखाल सिंह सिर खुजलाते हुए बोले, जी हाँ, ऐसा तो—तब ऐसा तो होता है कि लोग कहा-सुनी होने पर बहुत बार ऐसा कह भी बैठते हैं, या न भी कहें तो दूसरे लोग बेपर की उड़ा दिया करते हैं, जिस पर दूसरी तरफ के लोगों को यकीन भी हो जाता है।

खैर, अगर उन लोगों की ऐसी ही धारणा है, तो रहे। मैंने जो कसूर नहीं किया है, उसकी अफवाह पर मैं किसी को सफाई भी नहीं दे सकता। उसके लिये काशी जाना भी मैं जरूरी नहीं समझता। अगर पहले यह मालूम हो गया होता, तो मैं फूफी को चिट्ठी लिखने से मना कर देता।

लेकिन आप ही सोचिये, इसमें बहूरानी का क्या कसूर है ; राम के पाप से बीच ही में रोककर शिवनाथ बोला—कसूर तो उसीका है। वही तो अपने आप चली गयी। इस घर से किसी ने उसे भगा दिया था क्या ? और आज ही आने से कौन मने करता है उसे ! राम जब वन जाने लगे,

तो सीता स्वयं उनके साथ हो ली थीं। रोका तो हर किसी ने था, पर किसी के कहे वह रुक गयी थीं ?

राखालसिंह को हँसी आ गयी। मुंह फेरकर शिवनाथ से उन्होंने उसे छिपाना चाहा। मगर शिवू से वह छिपी न रही। बोला—आप हँसते हैं ? हिन्दू नारी का सदा से यही आदर्श रहा है।

वह बोले—लेकिन बहू की उम्र का भी तो खयाल कीजिये।

शिवू ने इस बात पर कुछ नहीं कहा—बोला, सिंह जी, काशी मैं हर्गिज नहीं जा सकता। मैं ऐसा कोई काम हर्गिज़ नहीं कर सकता, जिससे मेरी माँ या फूफी का अपमान हो। हाँ, इतना आप जान लीजिये कि मैं दूसरा व्याह नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

नायब जी खिन्न-से होकर लौट गये। शिवनाथ श्री पोखर के काले पानी को बैठा-बैठा देखता रहा। हवा के हल्के झोंकों से उठनेवाली लहरों के माथे पर किरणों के पड़ने से हजारों माणिक जलते-से दिखायी दे रहे थे। उसे स्मरण हो आया कि व्याह के बाद ही उसने गौरी पर एक कविता लिखी थी, जिसमें लिखा था—अश्रु-विन्दु ज्यों मोती झरते माणिक मानों हँसी तुम्हारी। और उसी गौरी ने उसके पत्र का जवाब तक नहीं दिया अफवाहों पर विश्वास करके वह मुझपर अविश्वास कर बैठी! और फिर भी यह उसका अपराध नहीं ?

बैठे-बैठे ही उसने पुकारा—किसन, मेरी साइकिल ले आओ।

साइकिल से वह डाकघर गया, डाक का वक्त हो गया था।

चिट्ठी नहीं मिली। वह निरुद्देश्य निकल पड़ा। अचानक एक नीच जाति की औरत सामने खड़ी हो गयी और बड़े बेहूदे ढंग से बोल उठी—आप बड़े आदमी हैं, साधु हैं, बाबू हैं! मुझे बताइये कि मेरी बहू को आपने कहाँ भगा दिया। समरथ बहू। यह जरूर तुम्हारी ही करतूत है।

ओह् हो, वह डोमों की बस्ती में आ निकला है। सामने ही फेकू

कीं माँ चिल्ल-पों कर रही है। शिबू अचम्भे में पड़ गया। गाड़ी से उतरकर उसने पूछा—यह तू क्या कह रही है ?

मैं क्या कहती हूँ, जैसे कुछ जानते ही नहीं, बड़े भोले बने हैं! तुम्हें बताना ही पड़ेगा, रात मेरी बहू कहाँ चली गयी !

शिवनाथ के काटो तो खून नहीं—फेकू को बहू भाग गयी और उसके भागने की उसे खबर है !

शिवनाथ को चुप देख फेकू की माँ दुगुने तेज से जल उठी—चुप क्यों हो गये, मैं कहती हूँ, आखिर चुप क्यों लगा गये ? बोलो, नहीं तो मैं मारे हल्ला के सिर पर आसमान उठा लूँगी, बाबुओं के पास नालिश करूँगी। हैजे में सेवा के······

चुप भी रहती है कि नहीं हरामजादी ! वो तमाचा मारूँगा कि—

फेकू के बड़ा भाई, बहू के नये आशिक नेकू ने डपटकर माँ को वहाँ से हटा दिया और बड़ी मिन्नत के साथ दोनों हाथ बाँधकर बोला—सरकार, आप उस हरामजादी की बातों का खयाल न करें, वह ससुरी वैसी ही है। मगर दया करके बहू का पता बता दें। आपने उसकी जान बचायी है, जब भी आप बुलायेंगे, वह जायगी, हम उसे गर्दन दबा कर भेज देंगे।

शिवनाथ के जी में आया कि कूदकर उसकी छाती पर सवार हो जाय और अपने नाखूनों से उसके चिथड़े उड़ा दे। मारे क्रोध के नसों का खून खौल उठा। बड़े कष्ट से अपने को पीकर वह साइकिल के मूठे को दबाये खड़ा रहा। मनुष्य ऐसा घिनौना, ऐसा नीच, इतना जघन्य हो सकता है !

नेकू ने फिर गिड़गिड़ा कर कहा—बाबू !

मेरी नजरों से दूर हो जा तू, मैं कहता हूँ दूर हो जा, हो जा दूर !

उसकी मर्यादाभरी रूखी आवाज का वह आदेश टालने काबिल न था। नेकू डरकर अलग जा खड़ा हुआ। लेकिन फेकू की माँ न चुकी, बोल उठी, कहिये बाबू, कहिये। दया करके—

साइकिल पर चढ़ते हुए शिवू ने उसी कठोर स्वर में कहा—मैं नहीं जानता। इस कल्पनातीत और शर्मनाक झूठ से शिवनाथ को अपार चोट पहुँची। क्रोध का भी अन्त न रहा, पर सबसे ज्यादा उसे लज्जा और भय हुआ। माँ-फूफी क्या कहेंगी उसे ? इस शर्म को वे सहेंगी किस तरह ? अपनी माँ के गौरव-बोध की बात उसे मालूम है, गौरव-हानि की आशंकाभर से वह जीवन तक की बलि दे सकती हैं। और फूफी! उनके चोटी के समान सदा उन्नत सिर पर कुल का यह कलंक वज्र-सा टूटेगा।

घर आकर वह अपने अध्ययनवाले कमरे में बैठ गया। अन्दर से कुण्डी बन्द कर ली। कुछ ही देर बाद माँ और फूफी ने कड़े खटखटाकर पुकारा—शिवू!

शिवू ने किवाड़ खोल दिये। अन्दर जाकर उसके चेहरे की ओर देखकर ज्योतिर्मयी अजीब ढंग से हँसीं। बोलीं—बस, इतनी-सी बात पर तू रोने लगा बेटा ?

शैलजा का मुखड़ा तमतमा रहा था। उन्होंने कहा, जी में आता है, उस कलमुँही की पीठ की खाल उधेड़ दूँ। पता नहीं, तुम क्या समझ रही हो। मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता।

ज्योतिर्मयी हँसकर बोलीं—बहन जी, जहर का प्याला लोग शिवू के ही ओठों को बढ़ाते हैं, हड्डियों की माला उन्हीं के गले पड़ती है। लेकिन शिव के गुण से वे पवित्र हो जाते हैं। फिर ऐसों से नेकी का ऐसा ही बदला मिलता है। सीता के कलंक की कहानी सोच देखो। प्रजा ने कहने को बाकी क्या छोड़ा था ? किन्तु उससे क्या सीता की महिमा मलिन हुई ? बल्कि लोगों के मन के मैल के आगे उनकी महिमा हजार गुनी उज्ज्वल हो उठी।

अब शिवू ने निर्विकार होकर शान्त नेत्रों से माँ और फूफी की ओर

देखा—उसका जलता हुआ क्षुब्ध मन सान्त्वना के इन कई शब्दों से जुड़ा गया। वह बोला—मुझे दुःख से भय ही ज्यादा था, कहीं···।

—कहीं हम इसे सच मान लें, क्यों? ज्योतिर्मयी हँसने लगीं।

शैलजा ने शिवू को अपने पास खींच लिया। बोलीं—अरे पगला, हम तो तेरी छाया से तेरे मन की बात ताड़ जाती हैं। अगर तू ने अन्याय किया होता, तो हमारा जी आप ही आप तुझ पर जल उठता! फिर तुझे क्या हमलोगों ने ऐसी ही शिक्षा-दीक्षा दी है कि तू इतना नीच करम कर बैठेगा!

शिवू की मेज पर एक किताब खुली पड़ी थी। उठाकर उसे देखते हुए माने पूछा—यही कविता पढ़ रहा था—'भक्त कबीर सिद्ध साधक हैं, यश फैला चहुँ ओर?'

कबीर जैसे महापुरुष के जीवन से अपने जीवन की तुलना करने की बात से शिवू लजा गया। धीमे से कहा—हाँ।

यह कविता अपनी फूफी को पढ़कर सुना। सुनो बहनजी, कबीर जैसे महामानव पर क्या लांछन लगाया गया था।

शिवू ने आवेग से काँपते हुए स्वर से कविता पढ़ सुनायी। फूफी की आँखें आँसू से भर गयीं! उन्होंने स्नेह से शिवू के माथे पर हाथ रखकर कहा—मैं आशीर्वाद देती हूँ, तेरा कलंक भी एक दिन इसी तरह धुल जायगा। चल, नहा-धोकर भोजन कर ले। मैं तो डर से काठ हो गयी थी। सोचा, जैसा अभिमानी है तू कि न जाने क्या आफत ढा दे। इधर हमलोग तुझे खोजती फिर रही हैं और यहाँ बैठा तू रो रहा है!

शिवू के मन की ग्लानि तो जाती रही, किन्तु वह इस बात को भूल नहीं सका। उसी दिन उसने सुशील को पत्र लिखा। इस घटना का जिक्र करते हुए लिखा—आपलोग सौभाग्यशाली हैं कि देश-सेवा का कोई पुरस्कार आप को नहीं मिला। मेरे भाग्य में पुरस्कार लिखा था—कलंक का

टीका। मुझे इसका बड़ा भारी सोच हुआ, किन्तु खाते समय माने महाभारत से राजा नल की कहानी कह सुनायी। नल वन में थे। एक दिन आग से घिरकर मरते हुए एक साँप को उन्होंने देखा। उन्हें बड़ी दया आयी। दौड़कर उस अग्निकुंड से उन्होंने साँप को बाहर निकाला। इसका प्रतिदान साँप ने यह दिया कि नल को काट खाया। देखते ही देखते नल की वह लावण्यमय काँति जाती रही। यह कहानी सुनकर क्षोभ तो नहीं रह गया, किन्तु देश-सेवा से खौफ खाने लगा हूँ।

चिट्ठी उसने डाक में डाल दी। साँझ के समय थकावट और उदासी से वह अवश-सा हो पड़ा! शरीर और मन को झकझोरता हुआ एक तूफान गुजर गया है। श्री पोखर के उस ओरवाले बरामदे में बैठा तारेभरे आकाश को देखकर वह आज की बात पर सोचने लगा—ये लोग भी अद्‌भुत्-से जीव हैं। एहसान नाम की चीज से तो इनका कोई वास्ता ही नहीं। छोटा और बड़ा, इसकी इन्हें कोई धारणा ही नहीं, बस एक ही बात इन्हें मालूम है—स्वार्थ। इनकी सारी देह कालिख से पुती है, अन्तर में उसी कालिमा की ज्वाला भरी है। अच्छी या बुरी, चाहे जिस नीयत से ये किसी को छुएँ, उसे धब्बा लगे ही गा, आँच से वह झुलसे ही गा। फेकू की माँ, फेकू का बड़ा भाई, उनकी बात छोड़ भी दें तो वह बहू, वह भी तो वैसी ही है। अभी उस दिन की बात है, कह गयी कि मैं शादी नहीं करूँगी। कहते-कहते रो भी पड़ी। और ये महज़ कै दिन बीते कि निकल गयी घर से। जब रात को छिपछिपाकर भागी है, तो संन्यासिनी बनकर अकेली जरूर नहीं गयी होगी। यदि ऐसा ही होता, तो वह मुझे कम से कम जरूर बताती। उसने एकान्त अपना मानकर जब सुख-दुःख की सारी बातें सुनायीं, तो एक यही छिपाने का क्या कारण हो सकता है?

किन्तु; उस दिन उसे बड़ी रुखाई से खेद दिया था। शिवू का मन

करुणा से भर आया। जिस जिन्दगी को लड़कर उसने मौत के मुँह से निकाला था, उसे खोकर ऐसा लगा मानों उसकी एक कीमती चीज खो गयी है। उस युवती पर उसकी घृणा का भी अन्त न रहा।

सुशील के पत्र की बड़ी आकुल प्रतीक्षा थी। जब धरती की धूल से शरीर भर जाता है, तो आकाशगंगा के पानी से उसे धो लेने की कामना से बड़ी चाह और क्या हो सकती है? जो गंगा माटी पर से बहती है, उसमें मिट्टी का धोका भी होता है, परन्तु आकाश की मंदाकिनी उससे भी कतई अछूती होती है। सुशील के पत्र की सान्त्वना शिवू के लिये मंदाकिनी जैसी ही पवित्र और काम्य हो उठी थी। शिवू ने किसन को डाकघर भेजा था और उसके आने की बाट जोह रहा था। किसन चिट्ठी लेकर ही आया।

बड़ी उत्कंठा से शिवू ने उसके हाथ से पत्र ले लिया और तुरन्त उसे खोला। अरे, यह किसका पत्र, किसकी लिखावट। काशी, नीचे पत्र लिखनेवाली का नाम गौरी देवी! गौरी! गौरी ने पत्र लिखा है! उसका चेहरा लाल हो उठा, आँखें दमक उठीं। छाती धड़कने लगी, हाथ-पाँव से पसीना छूटने लगा। उफ्, बहुत दिनों पर गौरी ने पत्र लिखा है। वह जल्द-जल्द चिट्ठी को पढ़ गया।

यह क्या, आषाढ़ के आकाश में प्रलय की काली घटायें घिर गयीं! दोपहर की तीखी रोशनी जैसे डूब गयी, उसकी आँखों के आगे सारी सृष्टि मावस की अँधियारी में डूबी हुई धरती जैसी निर्थक हो उठी। पाँव के नीचे से जैसे जमीन खिसक गयी! इसी बीच डोमों द्वारा उड़ायी गयी अफवाह गौरी तक पहुँच गयी? गौरी को इस बात का विश्वास हो गया है। उसने लिखा है—जी में आया, जहर खा लूँ। मगर नानी का कहा मान गयी। मैं क्यों मरूँ? नानी ने कहा—समझ ले कि तेरी शादी ही नहीं हुई। कुलीन घर की कितनी ही कन्याओं ने कुमारी रहकर सारी जिन्दगी

काट दी, तू भी समझ कि मैं भी वैसी ही एक कुमारी हूँ। यही सोचकर मैंने भी कलेजे को सख्त कर लिया है। भैया ने कह दिया—जो आदमी डोम की एक घिनौनी औरत के मोह में अपने को बहा सकता है, उसके साथ किसी भद्र लड़की का गुजारा हर्गिज नहीं हो सकता।"

वज्र की ज्वाला को ही सहकर शिवनाथ ने वज्राघात पर अपनी विजय मान ली थी, उसे उस आग के पीछे की कड़क का पता ही नहीं था। उस ज्वाला को सहने के बाद भी उसकी कड़क से शरीर की सारी शिरायें झनझना उठीं। वह दोनों हाथों से मुँह छिपाकर थप् से डेक-चेयर पर बैठ गया।

किसन अबतक वहीं खड़ा था। उसकी दशा देखकर अमंगल की आशंका से उसने बेसब्री से पूछा—बाबू, बाबू।

शिवनाथ ने हाथ से उसे जाने का इशारा किया। उसकी आज्ञा उठाकर उसने फिर घबड़ाकर पूछा—कहाँ की चिट्ठी है बाबू, क्या बात है ?

एक दीर्घ निश्वास छोड़कर शिवनाथ ने कहा—यह मेरे एक मित्र की चिट्ठी है। दियासलाई है, ला तो जल्दी से।

दियासलाई किसन के पास ही थी। उसकी एक तीली जलाकर शिवनाथ ने उस चिट्ठी के एक कोने को सुलगा दिया। पहली बार धीमे, फिर आग ने पूरी लपट लेकर सारे पत्र को काले राख में बदल दिया।

सुशील का पत्र दो दिन बाद आया। कड़ी चोट की तीखी वेदना धीरे-धीरे गहरी हो गयी, किन्तु मन अभी भी दुःख और अभिमान से भरा है। एक विराग की उदासी क्रमशः बढ़ती जा रही है। इन्हीं के दिनों में उसमें एक खास परिवर्त्तन के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे हैं। मन ही मन शंका करती हुई फूफी जैसे भी हो चाहे, गौरी को लिवाने का संकल्प कर रही थीं। ज्योतिर्मयी अपनी पैनी नजरों से उस रहस्य की खोज में लगी थीं, जिसके चलते शिवनाथ कुहरे में जैसे ढँककर ऐसा रहस्यमय हो उठा है।

सुशील के पत्र को पढ़कर शिवनाथ के चेहरे पर चमक फूट उठी, जैसा मेघभरे आकाश में सूरज की किरणों से होता है। सुशील ने लिखा है, देश-सेवा से आप डर उठे हैं? मैं तो ऐसा नहीं सोचता। आपको उस दिन की मसानवाली बात याद है? आपने आनन्दमठ के देवता का स्वरूप मुझे दिखाया था—मा का जैसा रूप! सर्वस्वहीना, नग्न, हाथ में खड्ग और खप्पर, अपने ही मंगल को अपने पाँवोंतले रौंदती हुई आत्महारा नृत्यचञ्चल रूप! उस भयंकर देवता की सेवा करके जो फल मनुष्य के भाग्य से मिलता है, वह क्या कभी मीठा हो सकता है मेरे दोस्त? जो अपने ही मंगल को पैरोंतले रौंदती है, उसे अपने भक्तों को देने के लिये मंगल कहाँ से मिल सकता है? उसके चारों ओर निन्दा, अपमान, लांछन, पीड़न विषैले काँटों के समान विखरे पड़े हैं, उसे प्रणाम करने पर वे घात्र किये विना नहीं रह सकते। भक्त के भाग्य में क्या जुटता है, मालूम है आपको? उस सर्वनाशी की लोल जिह्वा में प्यास तड़प उठती है। भक्त के कंधे पर खड्ग का आघात होता है, देवी का खप्पर उसके लोहू से भर जाता है! वह प्यास नहीं मिटने से देवी प्रसन्न और स्थिर कैसे हो सकती है? स्वेच्छाचारिणी की बुद्धि फिर न जाय, तो उसमें राजराजेश्वरी रूप में आत्म-प्रकाश की इच्छा कैसे जगेगी बन्धु!

अपूर्व पत्र! शिवनाथ को लगा, चिट्ठी के अक्षर-अक्षर में मानों अपार शक्ति के बीज छिपे पड़े हैं। उसके हृदय की विरागमयी असीम शून्यता में वे बीज छिटक गये और आकाश तथा वायु से उसे आलोकित एवं प्राणमय बना दिया। आखिर में उसने लिखा है—मगर अब आप वहाँ क्यों बैठे हैं? कॉलेज खुलने के अब दिन ही कितने रह गये? यहाँ आ जाइये। गाँव के बाहर आपको देश के विश्वरूप के दर्शन होंगे। बड़े आग्रह से शिवनाथ उठ बैठा। इस झोंके में दुःख और अभिमान कपूर-से उड़ गये। आज फिर वह तरुणाई के चंचल आवेग से पाँव रखता हुआ अन्दर पहुँचा।

शैलजा पुरोहित से पत्रा दिखला रही थीं। शिवनाथ बोला—अच्छा ही हुआ, पण्डित जी, मेरे कलकत्ता जाने का एक अच्छा-सा दिन तो बतलाइये।

फूफी ने कहा—वही अब तो दिखा रही थी बेटा। तीन दिन दिखाने थे। तै पा गये। एक चौथ, दूसरा नवमी, तीसरा सुदी एक।

शिवनाथ बोला—बस, तो चौथ को ही मैं कलकत्ता जाऊँगा।

उहूं, चौथ को तुम्हें काशी जाना पड़ेगा, नवमी को बहू को विदा कराके यहाँ आना, फिर सुदी एक को कलकत्ता।

शिवनाथ ने जोर से बात नहीं काटी। कुछ देर चुप रहा, फिर दृढ़ता के साथ बोला—नहीं, काशी मैं नहीं जाऊँगा। चौथ को ही कलकत्ता जाऊँगा। इतना कहकर वह अपने कमरे में चला गया। फूफी भी पीछे लगी आयीं। पुकारा—शिवनाथ!

खिले हुए चेहरे से वह बोला—फूफी!

आखिर काशी तू क्यों नहीं जायगा? मुझ पर नाराज है, इस वास्ते?

तुमपर नाराज हूँ इससे? मैं क्या तुमपर कभी नाराज हो सकता हूँ फूफी?

शिवनाथ पर अपनी आँखें रोपकर फूफी बोलीं, तो क्या इसलिए कि चूँकि लोग कहते हैं कि मैं बहूरानी को फूटी आँखों नहीं देख सकती, मैं उसे अपने पति के संसार से वंचित करना चाहती हूँ?

उसी तरह निःसंकोच दृष्टि से फूफी को देखकर शिवनाथ ने कहा—यों कभी किसी घड़ी के लिए मन में ऐसा कुछ आया हो, तो नहीं जानता फूफी! लेकिन मैं भगवान को साक्षी रखकर कह सकता हूँ कि मेरे मनमें ऐसी धारणा नहीं है।

नहीं है तो तू काशी क्यों नहीं जाना चाहता?

उसका कारण और कुछ है फूफी, उसे मत जानना चाहो।

लेकिन मुझे तो वह जानना ही पड़ेगा बेटा। मैं तो प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि तू बहुत बदल गया है। इस सारी दुनिया से जैसे तेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं। तेरी माँ, यहाँ तक कि मैं भी तुमसे बातें करने जाती हूँ, तो तुझसे जवाब पाती हूँ, हामी नहीं मिलती।

ज्योतिर्मयी आ पहुँचीं। शैलजा ने कहा—आओ बहू, आओ।

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। जिज्ञासु नेत्रों से चुपचाप बेटे की ओर देखने लगीं।

शिवनाथ कुछ क्षण बुत बना रहा! बाद में बोला—फूफी, उसने मुझे पत्र दिया है। पत्र में लिखा है, उसका यहाँ आना नहीं हो सकता—आना असम्भव है!

असंभव है? क्यों? यहाँ मैं हूँ, इसलिए? देख शिवू, मुझसे मत छिपा! सब सच-सच बता।

नहीं।

तब?

माथा नवाकर वह बोला—जो एक डोम औरत के मोह में बह जा सकता है, उसके साथ किसी भद्र लड़की का रहना ठीक नहीं हो सकता।

अब ज्योतिर्मयी बोलीं—मुझे जरा दिखायगा वह चिट्ठी?

मैंने उसे फूँक दिया!

देखो शिवनाथ, जब तक यह कलंक दूर नहीं हो जाता, तब तक कभी बहू से तुम भेंट मत करना, यह मेरी आज्ञा है।—माँ ने कहा।

शैलजा लेकिन रो पड़ीं—न-न बहू, बहू को अब वहाँ मत रहने दो। इससे शिवनाथ की मानसिक अशान्ति का अन्त नहीं रहेगा। उस कुल की शिक्षा से हमारा मेल नहीं बैठ सकता। और वह नन्ही सी लड़की, वह भला इतना कुछ लिख सकती है! जरूर ही किसी और ने उससे यह सब लिखाया है। मेरा कहा मानो, बहू को बुलवा लो।

ज्योतिर्मयी ने कठोर होकर कहा—हर्गिज नहीं।

शिवनाथ बोला—चौथ के दिन मैं कलकत्ता जाऊँगा।

शैलजा ने यह-वह, जाने क्या-क्या बहुत-सा जमा कर दिया। बोलीं—बहू, शिवू के सरो-सामान तुम अपने ही हाथों बाँध देना। सभी चीजों में तुम्हारे हाथ का स्पर्श जड़ा हो। माँ का स्पर्श और अमृत, इन दोनों में कोई फर्क नहीं।

खुद ज्योतिर्मयी के मन में भी यह लालसा लगी थी, किन्तु शैलजा के सामने अपनी लालसा को प्रकट न करना ही जैसे उनकी आदत हो गयी थी। उन्होंने किसी-किसी तरह अपने को जब्त कर रखा था। शैलजा के कहते ही वह हँसती हुई आगे आयीं। शैलजा ने अचरज से कहा—बहू, तुम्हारी आँखों में आँसू छलक आये। नहीं-नहीं, रोओ मत, तुम्हारा शिवू तो पढ़ने जा रहा है।

आनन्द के मारे जैसे आँखों को फाड़कर आंसू निकल पड़े थे। सैकड़ों अभ्यास और संयम के होते हुए भी उसे वह रोक न सकीं। अपने आत्मज पूनो के चाँद को देखकर जो उच्छ्वास समुद्र के हृदय में उठता है, विज्ञान चाहे उसकी जो भी व्याख्या करे, माता के हृदय से उसकी समानता है।

आषाढ़ का चौथा दिन। दिन के साढ़े दस बजे माहेंद्र योग—यात्रा के लिये बड़ा ही शुभ मुहूर्त। इस घर में यात्रा के सारे शुभ कर्म बड़े घर के बरामदे पर ही सम्पन्न होते रहे हैं; आज भी उसी पर सिंदूर से रंगे दो जलभरे मंगलकलश धरे गये हैं, दोनों घटों पर आम के पल्लव। एक ओर कोई दो सेर की एक कतला मछली, उसके माथे पर सिंदूर का मंगलचिह्न। घर के किसी भी कोने में कोई पात्र पानी से खाली नहीं रखा गया है; झाड़ू के टुकड़े बीनकर बाहर डाल दिये गये हैं। एक पात्र में दही, धान, दूब, देवता की प्रसादी माला लिये फूफी पच्छिम को मुँह किये खड़ी हुईं। शिवू के कपाल पर उन्होंने दही-हल्दी का टीका लगाया; धान, दूब और

माला देकर आशीर्वाद दिया। उसके बाद उसके माथे पर हाथ रखकर दुर्गा-दुर्गा का जप किया। बहू से बोलीं—बहू, अब तुम टीका लगाओ।

मा आँसूभरे नेत्रों से हाथ में वह पात्र लिये खड़ी हुईं। शिवू के उत्साह का ठिकाना न था, किन्तु मा को देखते ही उत्साह से चमकती हुई उसकी आँखें आँसू से भर गयीं। मा और फूफी को प्रणाम करके उसने मंगलघट को माथा नवाया। उसके बाद गृहदेवता, नारायण के मंदिर, शिव मंदिर, दुर्गा मंदिर को प्रणाम करके पीठ पीछे घर को छोड़ आगे बढ़ा।

छाती में अपार उत्साह लहरें ले रहा था। पंछी का बच्चा नये डैनों से जिस उत्साह से ऊँचे, और ऊँचे उड़ान भरना चाहता है, उसी उत्साह से शिवू लम्बी डगें भरता हुआ बढ़ने लगा। एक बार यकायक पीछे मुड़कर उसने देखा। बाहरी फाटक पर मा और फूफी एकटक उसे निहार रही थीं। उसकी आँखें फिर सजल हो आयीं। मा और फूफी के आँसू तो वह देख नहीं सका, किन्तु उसकी उष्णता से छू जाने का उसे अनुभव हुआ। भींगी आँखों ही वह हँसा और हाथ हिलाकर विदाई बताते हुए उसी तरह बढ़ने लगा।

गाड़ी स्टेशन में घुस रही थी। शिवनाथ ने झटपट धोती सम्हाली, चादर को कमर में बांध लिया। साथ में शम्भू, किसन, नायबजी आये थे। नायबजी ने कहा—ये लोग सब ठीक कर लेंगे—आप···

शिवनाथ ने उनकी बात पर कान नहीं दिया। खुद ही एक हाथ में बैग और दूसरे में और कुछ सामान लेकर एक डब्बे में घुस पड़ा। बाकी चीजें शम्भू और किसन बाहर तक ले आया। उसने खींचकर सब को भीतर करके सहेज लिया।

गाड़ी चल पड़ी।

अगल-बगल की चीजें वृत्ताकार घूमती हुई पीछे जाने किस पर्दे की आड़ में लुप्त हो जाने लगीं। लाइन के एक किनारे दूर तक फैले हुए खेत,

खेतों में धान के पौधे पुरवैया के झोंके से लहराते हुए झूल रहे हैं। दूसरी ओर वह गाँव पीछे की ओर चक्कर मारता चल रहा है। उसकी छत का कँगूरा अब नहीं दीखता, सुवर्ण बाबू का घर भी धीरे-धीरे श्याम सरोवर के बाग की हरियाली में डूब गया।

गाड़ी वायुवेग से चली जा रही है। खिड़की पर मुँह टिकाये शिवनाथ को गाने की इच्छा हो आयी। कितने ही गीत गाये—सबकी एक-एक कड़ी। लेकिन एक गीत की उस कड़ी को बार-बार गाया—

सारे जग में नहीं कहीं है ढूँढ़-ढूँढ़ कर हारा।
मातृभूमि यह न्यारी प्यारा भारत देश हमारा!

गाते-गाते उसे द्वारपर एकटक देखती हुई माँ और फूफी याद आ गयीं, उनकी आँसूभरी अपलक आँखों का स्मरण हो आया। गाड़ी की आवाज डब्बे के मुसाफिरों का शोरगुल, सब कुछ उसके लिये लोप पा गया। आँखों के आगे से बहुत-बहुत चीजें गुजरीं—कितनी नदियाँ, पेड़, जंगल, जलाशय, मैदान, गाँव, स्टेशन, आदमी—किन्तु कुछ भी उसके मनमें न ठहरा।

गाड़ी रात के आठ बजे हबड़ा पहुँची। बड़ा लम्बा-चौड़ा स्टेशन, करीने से बने बड़े-बड़े टिन के शेड, चारों ओर ऊपर लटकती रोशनी—जिधर देखो, रोशनी ही रोशनी, लोगों की भीड़, जाने कैसी-कैसी आवाज़, जाने कितनी तरह के रंगों का अजीब मेल! कार्य-तत्परता की व्यस्तता से कलकत्ता मुखर हो रहा है। इतना बड़ा, इतनी दूर तक फैला शहर! इस लहरों के आवर्त में वह कहाँ, कैसे अपने लिये जगह ठीक करे! अचानक किसी ने जैसे छूकर कहा—अरे, यह रहे आप!

वह सुशील था। शिवनाथ के जी में जी आया। हँसकर बोला—उफ्, मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था—इतनी- इतनी रोशनी, ऐसा ऐश्वर्य!

हँसकर सुशील ने कहा—लेकिन हमलोग अँधेरे के अँधेरे ही में हैं—हमारे घर बिजली नहीं है।

उन्नीस

आश्विन बीत चला है। आकाश को घेरकर बादलों का उत्सव हो रहा है। कालेज के मेस के बरामदे में रेलिंग पर दोनों केहुनी रोपकर हथेलियों पर गाल को टिकाये शिवनाथ बादलों की ओर देख रहा है। कभी-कभी बरसाती हवा के जोरदार झोंकों के साथ रिमझिम भी लगी आती। हल्की धारों से उसके सर के केश भींग गये हैं, चेहरे पर भी कुछ बूँदें बैठ गयी हैं। जलीय वाष्प की धुएँ जैसी कुण्डलियाँ सनसनाती जा रही हैं। एक पर एक उठ-उठकर मेघ जैसे इधर की छतों के पार उधर की छतों की आड़ में खोती जा रही हैं। नीचे भींगा हुआ शीतल और कठोर राजपथ—हरीसन रोड। पत्थरों की ईंटों के घेरे में होने के बावजूद ट्राम की लाइनें झकमका रही हैं। एक तल्ले के ऊपर जगह-जगह आड़े-आड़े बँधे हुए ट्राम के तार एक सीध में चले गये हैं। उन तारों पर जल की असंख्य बूँदें जमकर टमक रही हैं। ऐसे दुर्दिन में भी ट्राम, मोटर और आदमी का चलना एक पल को बन्द नहीं है। राजपथ अजीब कर्कश शब्द से मुखरित है।

लगभग एक साल बीत चला, किन्तु फिर भी कलकत्ता के लिये शिवनाथ के अचरज का अभी भी अन्त नहीं। इस ऐश्वर्यमयी महानगरी को देखकर वह ताज्जुब से भर गया था। उसका वह ताज्जुब आज भी वैसा ही है। शहर की लम्बाई, चौड़ाई, सड़कों पर की अपार भीड़, सवारियों की तेज

रफ्तार, इन सब को देखकर आज भी वह शंकित होता है। रोशनी की जगमगाहट में दूकानों के सामानों से छिटकती हुई रंगों की झकमक आज भी उसके मन में मोह जगाती है; उसे स्थान और काल का ध्यान ही नहीं रहता। कभी-कभी सोचने लगता—धरती पर इतनी दौलत है, इतना धन, इतना ऐश्वर्य!

उस दिन उसने सुशील से कहा—जानते हैं, कलकत्ता को देखकर मुझे कैसा लगता है! लगता है, यह जैसे देश का कलेजा है, उसके रक्त-स्रोतों का मध्यबिन्दु।

सुशील बराबर शिवनाथ के पास आया करता है, शिवनाथ भी सुशील के घर जाता है। उसकी बातें सुनकर सुशील ने हँसते हुए कहा—उपमा में जरा गलती हो गयी। हमारे चिकित्साशास्त्र के अनुसार कलेजा जो है, वह शरीर के सभी अंगों में रक्त का संचार करता है, रक्त का शोषण नहीं करता। कलकत्ता ठीक उसका उलटा करता है, यह देश का शोषण करता है। गंगा के किनारे जहाज-घाट तक गये हो कभी। सारे देश का शोषित रक्त उसी भागीरथी की नालियों से विदेशों चला जाता है,—जहाज का जहाज भरा जाता है, जाता ही रहता है। यह विराट नगरी मानों एक लहू चूसने की मशीन है।

शिवनाथ से इसका कोई उत्तर नहीं देते बना। चुपचाप उसने इसे समझने की चेष्टा की। सुशील फिर बोला—जरा अपने इलाके की तो याद करो-वे टूटे-फूटे घर, हड्डियों के ढाँचे-से मनुष्य, सूखे हुए तालाब—सब इसी शोषण की बदौलत है।

उसके बाद एक-एक कर भावावेश में वह कितनी ही बातें कह गया, भूख से देश के कितने लाख लोग मरते हैं, कितने लाख लोग आधा पेट खाकर रहते हैं, कितने लाख लोगों को घर नसीब नहीं, कपड़े मयस्सर नहीं, बिना इलाज के कुत्ते-बिल्ली की तरह कितने लाख लोग दम तोड देते हैं।

देश की गरीबी के और भी किस्से उसने कहे—क्या तो कभी यहाँ के बच्चे सोने से खेलते थे, विदेशों को अन्न भेजकर यहाँ की मिट्टी अन्नपूर्णा कहलायी थी। इसके अन्न-भाण्डार का कोई अन्त नहीं था, अपार मणि-मुक्ता, सुवर्ण का ढेर लगा था। सुनते-सुनते शिवनाथ की आँखों में आँसू उमड़ आये।

जब सुशील चुप हो गया, तब उसने पूछा—आखिर इसका प्रतिकार?

हँसते हुए सुशील ने पूछा—प्रतिकार कौन करेगा?

हमलोग करेंगे।

देखो भई, बात बहुवचन में न करो और परस्मैपदी होने से भी काम नहीं चलने का।

एक चरम उत्तेजना से अपनी सुध खो देने की-सी स्थिति! शिवनाथ बोला—मैं करूंगा—मैं।

सुशील ने पूछा—तुम्हारी भेंट?

दूसरे ही क्षण शिवनाथ को ऐसा लगा कि हजारों-हजार आकाश चूमती इमारतें, साफ-सुथरी सड़कें, जनरव से गुञ्जित वह महानगरी एक बहुत बड़े जङ्गल में बदल गयी है। घने अन्धकार में डूबे हुए जङ्गल के किसी दूर कोने से कोई अजाने स्वर से उसे पूछ रहा है—क्या भेंट दोगे? उसके अङ्ग-अङ्ग में सिहरन खेल गयी, रक्त के खौलते हुए प्रवाह की गति तेज हो गयी। उसने तुरन्त उत्तर दिया—भक्ति।

उसे लगा, उसकी आँखों के आगे एक राजभरे पर्दे के पीछे महिमामयी सफलता आलोकमय रूप लेकर खड़ी है। उसका मुखमण्डल उद्दीप्त हो उठा। उन्हीं उद्दीप्त आँखों से वह सुशील की ओर देखता रहा।

सुशील भी टकटकी लगाये बाहर की ओर देख रहा था। शिवनाथ ने व्यग्र होकर पूछा—सुशील भैया, इसका उपाय बताइये।

सुशील एक अजीब-सी मीठी हँसी हँसा। बोला—बस, इस भक्ति से ही मा की सेवा करो, मा आप ही सन्तुष्ट होंगी।

शिवनाथ असन्तुष्ट हो उठा। बोला—नः, आपने बताया नहीं।

'फिर किसी दिन बताऊँगा।'—यह कहकर सुशील निकल पड़ा। सीढ़ी तक जाकर लौट आया। कहा—आज मेरे घर जाना। मा ने बार-बार कहा है, और दीपा तो मेरी जान खाये है।

दीपा सुशील की बहन है। आठ-नौ साल की पुतली-सी बच्ची। फ्राक पहनकर शिवू के सामने नहीं आती। सुशील ने कह दिया है—शिवनाथ से तेरी शादी होगी। सो वह साड़ी पहन कर शरमाती हुई आस-पास ही घूमती रहती है, शिवनाथ के समीप नहीं आती। पुकारते ही भाग खड़ी होती है।

बरामदे में भींगते हुए शिवनाथ उसी दिन की बात सोच रहा था। सोच के सिलसिले में दीपा का प्रसङ्ग आते ही उसे हँसी आ गयी। एक ऐसे अकलङ्क कौतुक की खुशी में भला किसे हँसी न आये!

'खबर क्या है? यह सजल मेघों की ओर विरही यक्ष जैसा देख रहे थे। सर के बाल, कुर्ता, सब भींग गये हैं। बात क्या है?'—कहता हुआ एक लड़का शिवनाथ के पास आकर खड़ा हो गया।

उसके टोकने से शिवनाथ आपे में आ गया। हँसकर बोला—भीगते बड़ा अच्छा लग रहा है। घर रहता था, तो बारिश में जाने कितना भींजता था।

उस लड़के ने हँसकर कहा—मैंने तो सोचा कि आप मेघों की मारफत अपनी प्रेयसी को सम्वाद भेज रहे हैं। खैर! कोई दो घण्टे हुए, ढाई बजे के करीब आपके सम्बन्धी आपको ढूँढ़ने आये थे—कमलेश मुखर्जी।

चौंककर शिवनाथ बोला—कौन?

कमलेश मुखर्जी। आप उन्हें नहीं जानते क्या?

शिवनाथ गम्भीर हो उठा। कमलेश! वह लड़का ठठाकर हँस

पड़ा—अरे भैया, आपकी सारी कलई खुल गयी, हमलोग सब जान गये। शादी की बात को तो आप पचा ही बैठे थे। दावत देनी होगी, हाँ!

शिवनाथ का चेहरा गम्भीर हो रहा। वह कुछ नहीं बोला।

कुछ देर तक वह लड़का जवाब की इन्तजार में रहा, फिर बोला—वाह साहब, आप किस तरह के आदमी हैं? जब देखो, सीरियस ऐटिच्यूड में। ऐसा क्यों? एक साल बीत गया, कोई भी आप का जिगरी दोस्त नहीं बन सका—यह भी एक अनोखी बात है।

शिवनाथ की भँवें सकुचा गयीं। कमलेश के नाम और उसके यहाँ आने की खबर से उसका चित्त खिन्न हो उठा! फिर भी अपने को पीते हुए उसने कहा—लाचारी है, मनुष्य अपने स्वभाव को तो नहीं जीत सकता। मेरा स्वभाव ही ऐसा है संजय बाबू!

संजय ने बरामदे की रेलिङ्ग पर एक मुक्का जमाते हुए कहा—यू मस्ट मेंड इट—दस के साथ रहने से सबसे मिल-जुलकर चलना ही होता है।

कहकर वह गर्वीले पाँव रोपता हुआ चला गया। कमरे में उस समय किसी कारण से उच्छ्वासभरा कलरव गूँज रहा था।

शिवनाथ हँसा। यह संजय उसे बड़ा भला लगता है। हमउम्र है, खूबसूरत नौजवान, उत्साह से भरा। जहाँ चहल-पहल है, वहीं देखो, वह मौजूद। किसी राजा का भानजा है। दिन-भर में पाँच-छः बार कपड़े बदलता है और सागर की लहरों के फेन-सा सब जगह सबसे आगे उछलता चलता है। फूटबाल खेलना उसके वश का नहीं,मगर वह है कि फारवर्ड के लेफ्ट आउट में खड़ा हो जाता है, चिल्लाता है, पछाड़ खाता है, अभिनय उससे नहीं बनता, लेकिन कॉलेज के नाटकों में किसी भी भूमिका में उतर पड़ता है। सबसे अचरज की बात है कि है बड़े आले मिजाज का, कभी किसी पर चोट नहीं करता। और वह न हो, तो कोई हल्ला-गुल्ला जैसे जमता ही नहीं।

मगर कमलेश यहाँ क्यों आया था ? जिसे यह सम्बन्ध तक स्वीकारने में शर्म आती है, वह यहाँ किस कारण से आया ? चोट करने का कोई नया हथियार तो नहीं मिल गया ? उसे गौरी याद आ गई। और उसकी याद आते ही आकाश की आफत जैसे उसके हृदय में उतर आयी। किसी दुःखभरे आवेग की पीड़ा से कलेजा भर गया।

धप-धप करता हुआ जीने से कोई ऊपर आ रहा था। दुःखी चित्त से वह उसी ओर ताकने लगा। एक लड़का ऊपर आया, बालचरवाली पोशाक, सर की टोपी तक जरा तिरछी ; मार्चनुमा कदम बढ़ाते हुए उसने बरामदे से ही कहा—हलो संजय, ए कप आँव हॉट टी माइ फ्रेण्ड, ओः , इट इज वेरी कोल्ड।

उसकी भनक पाते ही कमरे के जमघट में नये सिरे से शोर शुरू हो गया। इस लड़के का नाम सत्य है, शिवनाथ के साथ ही पढ़ता है। चाल-चलन, अदब-कायदा, बोल-चाल—सबमें सोलहो आने कलकतिया। शिवनाथ आज तक भी उसकी जान-पहचान के दायरे से बाहर ही रह गया है।

शिवनाथ के हृदय का उमड़ता हुआ आवेग क्रमशः शान्त होता आ रहा था। मेघमें दूर आकाश की ओर नजर गड़ाये उदास चित्त से वह अपने महिमा-मय भविष्य की बात सोच रहा था। गौरी ने उसे मुक्ति दे दी है, उसी मुक्ति से उसे महान् मन्त्र मिल गया है—वंदे मातरम्, धरणीम् भरणीम् मातरम्।

पीछे से एक साथ अनेक जूतों की चरमराहट सुनाई पड़ी। शिवनाथ समझ गया कि संजय की टोली निकल पड़ी—या तो किसी रेस्टराँ को, या इस बदली में इडेन गार्डेन !

हलो, इज इट ट्रू यू आर मैरेड ?—सत्य की आवाज से शिवनाथ मुड़ कर खड़ा हो गया ; देखा, बहुत-से लड़के खड़े-खड़े हँस रहे हैं, आगे सत्य है, केवल संजय ही उनमें नहीं है। शिवनाथ की एँड़ी का लोहू जैसे सिर की ओर उठने लगा।

वह घूमकर ठीक से खड़ा हो गया और निःसंकोच बोला—येस, आइ ऐम मैरेड।

उसकी निडर स्वीकृति से सारी-की-सारी टोली ही जैसे ठप पड़ गई, और तो और, सत्य भी। कुछ क्षण बाद सत्य अतिरंजित व्यंग्य में बोल उठा—शेम!

सभी लड़के खिलखिला उठे।

पीछे से अपने कमरे के द्वार पर खड़े होकर संजय ने आवाज दी—वेल् बॉयज़, टी इज़ रेडी। वाह-वाह, शिवनाथ बाबू को क्यों नहीं लाते, ही इज़ नॉट ऐन आउट कास्ट; अच्छा यह क्या, शिवनाथ बाबू का चेहरा वैसा क्यों लग रहा है? यह जरूर तुम्हारी शरारत है सत्य, तुमने जरूर कुछ कहा है। नहीं, यह नहीं हो सकता। शिवनाथ बाबू, आपको आना ही पड़ेगा—यू मस्ट जॉयेन अस।

चाय की बैठक खासी जम गयी। शिवनाथ के मन में जो क्षोभ जम गया था, संजय ने उसे धो दिया। पहले कमरे में स्टोव की सनसनाहट से वह सत्य की बातें, लड़कों का ठहाका, कुछ भी नहीं सुन सका था। लेकिन; उबलते पानी में चाय डालकर जब वह सबको बुलाने के लिये बाहर निकला, तब सत्य का चेहरा देखते ही सब समझ गया। सब कुछ सुन-सुनाकर तारीफ की निगाह से उसे देखते हुए बोला—दैट्स लाइक ए हीरो, आपने बहुत ठीक कहा है शिवनाथ बाबू! ब्याह करना कोई गुनाह नहीं है। अगर ब्याह करना गुनाह है, तो बालचर बनना भी संसार में पाप है।

संजय ने ये बातें कहीं कुछ इस ढङ्ग से कि दल के सब के सब, यहाँ तक कि सत्य भी हँस पड़ा। संजय बोला—देखो सत्य, जब तुमने 'शेम' कहा है, तब तुम्हें शिवनाथ बाबू से क्षमा माँगनी चाहिये।

ऑल राइट। अपनी गलती के प्रतिकार को मैं बाध्य हूँ। मैं एक स्काउट हूँ शिवनाथ बाबू!

शिवनाथ ने जल्दी-जल्दी उठकर उसका हाथ पकड़ लिया। बोला—अरे नहीं-नहीं, मैंने बुरा थोड़े ही माना है। वी आर फ्रेंड्स।

सर्टेनली।

बीच में कोई बोल उठा—यू मस्ट प्रूव इट, बोथ ऑव यू।

सत्य बोला—कैसे? हम इसका प्रमाण देने को तैयार हैं।

कहनेवाले ने कहा—इस तरह कि तुम दो रुपये दो और दो रुपये दें शिवनाथ बाबू।

संजय बोल उठा—तो, शिवनाथ बाबू नहीं, कॉल हिम शिवनाथ। सत्य दे दो रुपये, दो रुपये शिवनाथ और माई हंबल सेल्फ दो रुपये। बस, मिठाई-विठाई ले आओ।

सत्य ने कहा—कोई मुजायका नहीं, लेकिन नॉट ए कापर इन माई पाकेट नाव। एनी फ्रेंड टु स्टैंड फॉर मी?

शिवनाथ ने कहा—आइ स्टैंड फॉर यू माई फ्रेण्ड। अभी चार रुपये लाया। वह वहाँ से बाहर निकल गया।

संजय ने आवाज दी—गोविन्द, ओ गोविन्द। गोविन्द यानी मेस का नौकर।

शिवनाथ ने ज्यों ही संजय के हाथ में रुपए दिए कि सत्य ने जरा नाटकीय ढंग से कहा—भई, मेरा एक संशोधन है। वी आर एइट—आठ के लिए दो रुपया सिनेमा का टिकट, एक रुपया ट्राम ऐण्ड टी और तीन रुपये का यहाँ खाना। क्यों?

अधिकतर लड़कों ने चिल्लाकर अपनी सहमति जनायी। संजय ने कहा—बहुत ठीक, तो यहाँ महज़ चाय रहे, बाकी सब वहीं, सिनेमा में। मगर भई चार आनेवाली जगह तो बड़ी वाहियात है, अठन्नी के बगैर बैठा नहीं जा सकता। सो चन्दे की रकम बढ़ा देनी पड़ेगी शिवनाथ। तुम तीन, सत्य तीन और मैं तीन। इन नौ रुपये में पाँच सिनेमा और चार भोजन।

शिवनाथ ने ऐतराज नहीं किया, वह रुपये लाने को चला गया। जब से वह यहाँ आयाहै, सुशील और पूरन के आकर्षण के कारण इन लड़कों से दूर-दूर ही रहता आया है। सुशील और पूरन, उनके दल की चर्चा, यहाँ तक कि उनके हँसी-मज़ाक वू-त्रास भी जैसे अलग है, उनकी क्रिया भी स्वतन्त्र है। उस स्वाद और रस से मन-प्राण गम्भीरता से भारी हो उठते हैं। यहाँ तक कि धरती और आकाश के बीच की जो सीमाहीन शून्यता है। उस शून्यता में भी उस रस से परिपुष्ट मन किसी परम रहस्य का आभास पाकर प्रशान्त गम्भीरता से गम्भीर हो उठता है। और संजय की टोली में चलनेवाली चर्चा तबीयत में हल्की रंगीनी ला देती है, वह पानी के बुल्ले की तरह धीरे-धीरे विलीन हो जाती हैं, किरणों के कौतुक से उनपर खिल आनेवाली रंगीन छटाओं की छाप भर छूटपाती है प्राणों में। इसीलिए आज यकायक संजय की सोहबत में आकर इस नये स्वाद से शिवनाथ खिल उठा।

अपने कमरे में पहुँचते ही वह चकित हो गया, सुशील वहाँ बैठा था। अपनी पैनी नजरों से चुपचाप वह बाहर के मेघ भरे आकाश को देख रहा था। शिवनाथ उसके पास पहुँचा। धीमे से बोला—सुशील भैया!

हाँ।

कब आये आप? अभी अभी तो मैं उस कमरे में गया था।

बस, अभी-अभी ही आया। तुमसे कुछ कहना है।

कहिए।—शिवनाथ कुछ घबरा-सा गया।

किवाड़ बंद कर लो।

किवाड़ बंद करके शिवनाथ ने पास आकर पूछा—क्या ज्यादा देर होगी? ऐसा हो, तो मैं उन लोगों से कह आऊँ?

नहीं। तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं?

कितने?

पचास।

नहीं। दस-पन्द्रह रुपये हैं।

वही सही। दो रुपये तुम रख लो। नहीं, एक रखकर बाकी दे दो। शिवनाथ जरा मुश्किल में पड़ गया। अभी-अभी तो उसे दो रुपये देने हैं—एक अपना और और एक शिवनाथ के हिस्से का।

सुशील बोला—बस, दे ही दो। देर न करो। अरजेंट है। पचास रुपये में दो-दो रिवाल्वर! वे जहाज के खलासी हैं, रुक नहीं सकते।

शिवनाथ ने जरा देर क्या तो सोचा। फिर बक्स खोलकर सोने की एक सिकड़ी निकाली। कम-से-कम डेढ़ सौ तो इसके मिल ही जायेंगे। जो रुपये बच जायँ, उनसे दूसरा काम कीजियेगा।

सुशील ने बिना कुछ हिचके जंजीर ले ली। बोला—एक बात। जरा इन लोगों से ज्यादा मत मिलना-जुलना। द्वार खोलकर वह चला गया।

उसके दूसरे दिन प्रातःकाल।

बदली अभी भी एकबारगी नहीं गयी है। अपनी आदत के मुताबिक शिवनाथ बरामदे की रेलिंग पर झुककर खड़ा था। भीगी और फिसलन भरी सड़कों पर अभी भीड़ नहीं हो पायी थी। स्यालदह स्टेशन से साग-सब्जी, मछली, अण्डे आदि की टोकरियाँ लिये बेचनेवाले लोग बाजार की ओर जा रहे थे। दो-एक बैलगाड़ियाँ भी जा रही थीं। बग्गी, रिक्शा, टैक्सी की भीड़ का समय होता जा रहा था। मुसाफिरों को लेकर गाड़ी शायद स्टेशन पर आ लगी होगी।

शिवनाथ को बरसात की घटाओं से सँवरा हुआ रूप बड़ा भला लगता है। उसे अपने यहाँ का ख्याल आ रहा था, अपने बगीचे को वह कल्पना में ला रहा था—दूर से वह एक हरे-भरे विशाल स्तूप-सा दिखाई देता। बीचवाले बरगद की डाल अब जाने जमीन चूमने लगी होगी। आँवले के

नये कोमल पत्तों की वह हरियाली देखते ही बनती है। बगीचे के किनारे-किनारे नालों में पानी के दौड़ने की आवाज। खेतों में झर-झर शब्द का विराम नहीं, एक से दूसरे खेत में पानी गिर रहा है। श्री पोखर अब लबालब भर गया है। अब घोड़े का शरीर कुछ गदरा जायगा। इस झड़ी बदली में भी फूफी अब तक महापीठ पहुँच गई होंगी। माँ ज़रूर ही इस टोह में कि पानी कहाँ से चू रहा है, घर-भर का चक्कर काट रही होंगी।

कोई सीढ़ियों पर चढ़ता आ रहा था। उसकी चिन्ता-धारा रुकी। वह सीढ़ी की ओर ताकने लगा। अरे, यह तो सुशील भैया हैं। सुशील चञ्चल गति से आ रहा था, जैसे किसी आवेगमय उत्तेजना से भरा हो। उसका चेहरा, उसकी आँखें दपदपा रही थीं।

'बहुत बड़ी खबर है शिवनाथ।'—उसने हाथ का अखबार सामने फैला दिया। "यूरोप के आकाश में युद्ध की घनघोर घटाएँ। सेरा गेवो शहर में आस्ट्रिया के प्रिंस फर्डिनेण्ड और उनकी स्त्री किसी अनजाने हत्याकारी के गोली के शिकार हो गये। आस्ट्रियन सरकार ने सर्विया से अड़तालिस घंटे में कैफियत पूछी है। युद्ध की जोर-शोर तैयारी।"

शिवनाथ सुशील की ओर देखा, वह जैसे आग की लपट-सा दमक उठा है!

शिवनाथ ने कहा—यह सर्विया जैसा एक दाने भर का देश—

बाधा देकर सुशील ने कहा—ओस की एक नन्हीं बूंद में सूरज बँध जाता है शिवनाथ। तुच्छता देह की नहीं होती, मन की हुआ करती है। फिर यूरोप की राजनीति की खबर तुम्हें नहीं मालूम। लड़ाई छिड़कर ही रहेगी। सिर्फ छिड़ेगी ही नहीं, उसकी लपटों में सारा यूरोप सन जायगा। हम लोगों के लिये यही बेहतरीन मौका है।

सुशील जिस ओज से दमक रहा था, उसीका स्पर्श संभवतः शिवनाथ को भी लगा। उसकी आँखों में सारी की सारी प्रकृति अर्थहीन हो उठी—

कल्पना से उसका गाँव दूर हट गया, माँ, फूफी, सब दूर जा पड़ीं। सब कुछ जैसे खो गया।

सुशील ने कहा—उन्नीस सौ चौदह—ग्रेटेस्ट इयर ऑफ ऑल। ओः, अब तक जानें युद्ध की घोषणा हो गयी होगी! आस्ट्रियन फौज कूच कर रही होगी!

अब कुछ लोग बिस्तर से उठ-उठ कर जाने लगे थे। नीचे सड़क पर भीड़ बटुरती जा रही थी! अखबार फेरी करने वालों की पुकार पाकर खबरों की चुहल से लोगों में चंचलता जाग उठी थी

इधर-उधर देखकर सुशील ने कहा—कमरे में चलो। उफ्, इस कंबख्त ने इतना तड़के भी मेरा पीछा किया है। मार्क दैट मैन—वह, वह जो फुटपाथ के उस पार हा किये भौंचक्का-सा खड़ा है, वह खुफिया है।

खुफिया!

हाँ। कमरे में चलो।

कमरे का दरवाजा बन्द करके सुशील ने कहा—अब काम का समय आ पहुँचा शिवनाथ! किसी भी वक्त हम लोगों की जरूरत हो सकती है।

शिवनाथ ने उत्तर नहीं दिया। वह बेखौफ और दीप्त आंखों से उसकी ओर निहारने लगा—जैसे कि कोई सैनिक अपने सेनापति की ओर देखता हो।

सुशील ने फिर कहा—अब रुपयों की भी जरूरत पड़ेगी। क्या तुम घर से रुपये ला सकोगे?

सोचकर शिवनाथ बोला—आप तो जानते हैं कि बालिग होने तक घर के मामलों में मैं दखल नहीं दे सकता।

हूँ। तुम्हारे पास जो वेशकीमत चीजें हैं, सौं दे दो।

शिवनाथ ने अपने बटन, घड़ी, अँगूठी, कलाई का सोने का धागा—एक-एक करके सब उतार दिया। सुशील ने उन चीजों को अपनी जेब में

भर लिया। बोला—जरा खबरदार रहना। अब पुलिस वाले जरा सजग हो जायँगे। हाँ, तुम इस चिट्ठी को लेकर पूरन के पास जाओ। बल्कि चिट्ठी को पढ़ लो और फाड़ फेंको। जबानी ही उसे कह देना। उसके यहाँ पुलिस का खतरा ज्यादा है, मैं वहाँ नहीं जाता। चिट्ठी लेकर जाना भी ठीक नहीं।

शिवनाथ ने चिट्ठी को पढ़ लिया। चप्पल उतार कर जूते पहन लिये और सुशील के साथ-साथ ही बाहर जाने को तैयार हो गया।

नीचे को ओर देखकर सुशील ने कहा—दरवाजे पर कोई मोटर आकर रुकी। उझक कर शिवनाथ ने देखा, मोटर से रामकिंकर बाबू और कमलेश उतर रहे थे। वह पूरन के पास जाने के लिये अधीर-सा हो उठा था। सुशील का कुरता खींच कर बोला—चलिये, इन लोगों को मैं जानता हूँ।

सुशील ने और कोई सवाल नहीं किया। नीचे उतर पड़ा। शिवनाथ को आगन्तुकों के पास छोड़ कर अपने अपरिचित की नाईं निकल गया।

रामकिंकर बाबू ने हँसते हुए कहा—अरे रे, शिवनाथ! मुझे तो तुम्हारा पता ही न था कि खोज-खबर लेता। मगर तुम तो मेरे डेरे तक जा सकते थे?

शिवनाथ ने कोई उतर नहीं दिया। रास्ते ही में उसने झुककर राम बाबू को प्रणाम किया और चुप खड़ा रहा। कमलेश भी चुपचाप फुटपाथ पर योंही अपना जूता रगड़ रहा था।

रामकिंकर बाबू ने कहा—चलो, गाड़ी पर चलो। हमारे यहाँ से घूम आना।

शिवनाथ ने कहा—अभी मुझे एक मित्र के यहाँ जाना है।

तो हर्ज क्या है, गाड़ी से पहले अपने दोस्त के यहाँ हो लो, फिर वहाँ चलना। मा काशी से लौट आयी हैं। तुम्हें देखने को उतावली हो रही हैं।

मा, यानी नान्ती की नानी ! फिर—! शिवनाथ की छाती के भीतर कुछ उथल-पुथल-सी होने लगी। नान्ती, नान्ती आयी है—गौरी !

उसे चिट्ठी का वह अंश याद आ गया—इसके बाद अब किसी भद्र-कन्या का रहना असंभव है। मा और फूफी से रामकिंकर बाबू का दुर्व्यवहार भी स्मरण हो आया। धीरे-धीरे उसका अन्तःकरण विद्रोही होता आ रहा था। उसका वह विद्रोह जाहिर हो पड़ा, इसके पहले ही उसकी नजर पड़ गयी एक चाय की दूकान पर खड़े सुशील पर। सुशील इशारे से उसे पूरन के यहाँ जाने की ताकीद कर रहा था। उसने फिर एक पल विलम्ब नहीं किया—बढ़ चला। बोला—जी गाड़ी से वहाँ नहीं जाया जा सकता। जाना बहुत जरूरी है, मैं चला।

दूसरे ही क्षण रामकिङ्कर बाबू उग्र हो गये। कड़ी नजर से उन्होंने शिवनाथ की ओर देखा, किन्तु तब तक शिवनाथ उनलोगों को पार करके तेज कदम बढ़ाता हुआ निकल गया।

अपमान और अभिमान से कमलेश के दोनों होंठ थरथर काँपने लगे।

बीस

सामाजिकता और आत्मीयता से रामकिङ्कर बाबू को कभी वास्ता नहीं रहा। सबेरे से रात के सो जाने तक उन्हें एक ही फिक्र रहती, वह फिक्र थी—सम्पत्ति की, व्यापार की, अर्थोपार्जन की। इसके सिवाय उन्हें आत्मीयता, सगे-सम्बन्धियों से व्यवहार, यहाँ तक कि सामाजिक सौजन्य दिखाने की भी फुर्सत नहीं मिलती। धनी पिता के लड़के, ताबेदारों के कन्धों पर ही बड़े हुए। जवानी की देहली पर पाँव रखते ही सबके मालिक और अन्नदाता बनकर कर्मक्षेत्र में आये; लिहाजा प्रभुपने का जो हक होना चाहिये, वह कड़ा मिजाज, उनका स्वभाव हो गया है। और एक बात, वह शायद उन्हें पिता की विरासत में मिली है, काम करने का एक नशा-सा उनके खून में मौजूद है। काम के इस नशे की बदौलत वह सब कुछ भूले-भूले रहते हैं और इसलिये सामाजिकता, कुटुम्बिकता आदि भूल जाने से उसमें अनभ्यस्त-से हो पड़े हैं। मगर वास्तव में वह आदमी ठीक ऐसे ही नहीं हैं। इस गढ़े गये नकली जीवन के बीच कभी-कभी उनके सच्चे रूप की झाँकी मिल जाती है। उनके उस रूप में अपनों के लिये असीम ममता है, अनोखा खयाल है, जिस खयाल में आने पर वह मुट्ठी भर सोने को भी धूल के समान फेंक दे सकते हैं। काशी में अचानक प्लेग फैला। कमलेश जाकर नानी और गौरी को लिवा आया। यहाँ आते ही गौरी को देखकर अचरज से रामकिङ्कर बाबू बोले—नान्ती, तू तो खासी बड़ी हो गयी, एँ!

मामा को प्रणाम करके गौरी मुँह झुकाये खड़ी रही। इन दो ही महीनों के अर्से में गौरी के सर्वाङ्ग से जीवन की स्वच्छन्दता क्षीण-मलीन-सी हो गयी है। शिवनाथ के लिये पत्र में उसने जिस भाषा से काम लिया था, हकीकत में वह उसकी अपनी अभिव्यञ्जना नहीं थी, किसी और की भाषा थी वह, वह फटकार किसी और की थी; शिवनाथ के लिये उसकी जो अकथ कथा है, अब वह उसके रूप में इस प्रकार जाहिर होती आ रही है। गौरी के उस रूप का अभिनव प्रकाश रामकिङ्कर बाबू की नजरों में पड़ा, दूसरे ही क्षण बोले—ऐसी सूखी-सूखी-सी क्यों लग रही है तू?

नान्ती की नानी—रामकिङ्कर बाबू की माँ अब तक अपनी पूजा की झोली खोजने में लगी थीं; झोली लेकर ऊपर जाते समय सीढ़ी पर से उन्होंने यह सब सुना और कहा—इसकी जड़ तो तुम्हीं हो। तुमलोगों ने हाथ-पाँव बाँधकर बच्ची को पानी में डाल दिया और फिर पूछ भी रहे हो कि सूखी-सूखी क्यों लग रही है?

नानी की बातों का रुख देखकर गौरी खिसक कर अन्दर चली गयी। रामकिङ्कर बाबू चौंक-से उठे। उन्हें एक-एक कर सभी बातें याद आ गयीं—शिवनाथ की माँ की बात, फूफी की बात, उन्हीं के साथ-साथ शिवनाथ के सेवाकार्य की प्रशंसावाली बात भी याद आ गयी। यह भी स्मरण हुआ कि शिवनाथ से गौरी की भेंट-मुलाकात तक नहीं है। उन्होंने कहा—अच्छा, ठहरो, आज ही पता लगाता हूँ वह किस कालेज में पढ़ता है, कहाँ रहता है। आज ही पकड़ लाता हूँ उसे।

कमलेश कहने लगा—रहने दीजिये मामूजी।

क्यों? रहने क्यों दूँ?—रामकिङ्कर बाबू ने अचरज से पूछा।

उनकी माँ भभक पड़ीं—उसे लाने की कोई जरूरत नहीं, वह नीच है, कमीना, एक डोम की लड़की के·········

रामकिङ्कर बाबू बोले—छिः-छिः, क्या कहती हो अम्मा, कौन, किसके बारे में कह रही हो तुम ?

नान्ती की नानी के जब क्रोध हो आता है, तो उन्हें भले-बुरे की सुध नहीं रहती। उन्होंने अङ्गार की तरह लहक कर उस डोम लड़की का किस्सा शुरू से आखीर तक कह सुनाया। बोलीं—यह रिश्ता तुमने ठीक किया है, इसका प्रतिकार तुम्हीं को करना पड़ेगा। मुझे बता दो कि तुम इसका क्या उपाय करोगे, तभी मैं इस घर में अब पानी पीयूंगी।

रामकिङ्कर बाबू बोले—मुझे तो इस बात में कोई सार नहीं दिखायी देता माँ। आज ही मैं वहां के मैनेजर को लिखता हूँ, उनसे ठीक-ठीक खबर मिलेगी। मगर मुझे तो इस पर विश्वास नहीं आता।

चिट्ठी भेजी गयी, समय पर उत्तर भी आ गया। मैनेजर ने लिखा—मैंने इसकी काफी छान-बीन की, यहाँ तक कि यहां के दरोगा से भी इसकी पूछ-ताछ की, हकीकत में यह अफवाह है। दरोगाजी ने तो कहा—अरे, वैसे लड़कों का नाम बुराई की बही पर दर्ज नहीं होता, ऐसों के लिये बही ही और होती है। मैंने कहा, जरा साफ-साफ बतायें ? तो वे बोले—साफ बताने का इसमें कुछ हो भी ? हाँ, इतना कहे देता हूँ कि यह अफवाह उस लड़की के जेठ और सास ने उड़ायी है। वह लड़की अपने मायके के एक अपनी ही जाति के जवान के साथ भागी है, जो कलकत्ता में रहता है और मेहतर का या झाड़ूदार का काम करता है। यहाँ कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं करता, बल्कि सेवा कार्य के लिये इलाके भर के लोग उनका सुयश ही गाते हैं।"

खुद चिट्ठी को पढ़कर रामकिङ्कर बाबू ने कमलेश को बुलाकर कहा—लो, पढ़ देखो। वहाँ से अपने मैनेजर साहब ने लिखा है।

पत्र को पढ़ते-पढ़ते रुलाई के आवेग से कमलेश का गला रूँधता आ रहा था। शिवनाथ एक तो उसका लँगोटिया यार है, फिर गौरी से विवाह

होने के कारण और भी प्रिय हो उठा है। उसके प्रति किये गये अन्याय के अपराध की बात सोच उसका जी दुःख और ग्लानि से भर गया। कमलेश शिवनाथ को भली तरह जानता है। जब दोनों नंगे ही घूमते थे, तब से साथ हैं। जरूरत से ज्यादा घनिष्ठता होते हुए भी छुटपन से ही दोनों में परस्पर श्रेष्ठता की होड़ है। किशोरावस्था के आगमन से ही कामों में आपसी सहयोग के बावजूद दोनों ने एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में यौवन के आँगन में कदम रखा है। इसलिये दूसरे के दोष, दुर्बलता की जितनी खबर है, उतनी अपनी भी नहीं है। इसीलिये अपना यह अपराध कमलेश के अन्तर को बुरी तरह छेद गया। कमलेश के आगे वह जैसे बहुत छो हो गया हो। गौरी को अब वह कौन-सा मुँह दिखाये !

रामकिङ्कर बोले--कमलेश, माँ को चिट्ठी पढ़ कर सुना आओ। नान्ती को भी पढ़ने देना।

चिट्ठी सुनकर नान्ती की नानी खुशी के मारे खिल पड़ी। उसी समय उन्होंने आवाज दी--नान्ती, अरी ओ नान्ती।

नान्ती अपनी हमजोली मौसेरी-ममेरी बहनों से बोल-बतिया रही थी। नानी की पुकार पर दौड़ी-दौड़ी आयी। उन्होंने कहा--ले, पढ़कर देख रे दईमारी। वही कहावत हुई कि कौआ कान ले गया और अपना कान न देखकर कौए के पीछे दौड़ा। कहाँ से किसने क्या लिख दिया कि इधर रो-पीट कर······ओह, आज की लड़कियों को साक्षात् दण्डवत् !

गौरी सांस रोक कर चिट्ठी को पढ़ने लगी। नानी के मन का रोष अभी खत्म नहीं हुआ था, सो अपनी भूल गौरी के कन्धों पटकती हुई बोल उठीं—यह युग तो फिर भी गनीमत है कि औरतें अपने पतियों पर बिगड़ तो सकती हैं। उस युग में तो औरत रखना और कुत्ता-बिल्ली पालना एक-सा था। क्या नाम तो है, हाँ श्यामादास बाबू की थी एक रखेल—कादम्बिनी, उसने कहा था, बाबू, गोबर में अपनी पत्नी की छाप तो चुपचाप

मैं भी देखूँ कि वह कैसी सुन्दरी है। उन दिनों कहीं तू होती तो या तो फांसी लगाकर मरती या जहर खा लेती

गौरी की दोनों आँखें भर आयीं। आँसू की लज्जा से बचने के लिये पत्र फेंक कर वह कमरे में भाग गयी। बिछावन में मुँह गाड़कर पड़ रही।

कमलेश ने माथा झुकाकर ही कहा—नानी!

नानी कड़क उठीं—बस तू जो है, बड़ा वो है, बेबात में लाल अंगारा बन गया और लेक्चर झाड़कर यह अनर्थ कर बैठा। जा, अब तो जा, खोज-पूछ करके ले आ उसे।

लेकिन; वह न आवे तो?

नहीं आये तो? नहीं क्यों आयगा, कान पकड़कर ले आना। मेरी [illegible]री क्या फेंकने की चीज़ है। उसने मेरी गौरी से विवाह क्यों किया?

इसके बाद नानी का गुस्सा डेरे के लोगों की ओर मुड़ गया। आखिर ये लोग कौन-सा भाड़ झोंकते रहे कि आज तक उसकी खोज-खबर नहीं ली? अगर अपना दामाद होता, तो क्या ये इसी तरह बेखबर बैठे रहते? और होते-होते अपनी स्वर्गगत बेटी, गौरी की माँ के लिये रो पड़ी। हाय, उसने यह कैसा बोझ मुझपर लाद दिया!

इसी घटना का वह नतीजा था कि रामकिंकर बाबू और कमलेश उसे सादर लिवाने गये थे, किन्तु शिवनाथ किसी तन्मयता से उनलोगों को छोड़कर भीजते-भीजते ही निकल गया, ये लोग उसके पास तक नहीं फटक पाये।

नानी की बुझी हुई क्रोधाग्नि फिर लहक उठी। इस लपट के चपेटे में शिवनाथ की माँ और फूफी आ गयीं। उन्हें इस बात में राई भर भी सन्देह न रहा कि शिवनाथ ने इन लोगों की ऐसी जो उपेक्षा की, उसका कारण उन्हीं लोगों की दी हुई शिक्षा है। अपनी बुढ़ारी की झुकी हुई सीधी करके उन्होंने बड़ी दृढ़ता से कहा—मैं अपनी नान्ती को

रहा

रानी बना जाऊँगी। अगर मर भी गयी, तो जहाँ रहूँगी, वहीं से देखूँगी कि उन्हें नान्ती के पास आना पड़ता है कि नहीं !

मन ही मन रामकिंकर बाबू भी दुखी हुए थे। उन्होंने माँ की बात का कोई विरोध नहीं किया। गम्भीर होकर नीचे उतर गये।

कमलेश बरामदे में टिककर चुपचाप खड़ा रहा। गौरी कमरे में खिड़की के सामने बैठ कर ऊन बीन रही थी। खिड़की से सड़क साफ दिखायी दे रही थी। इधर उसकी अँगुलियाँ ऊन के घर पर घर बनाती जा रही थीं और आँखें सड़क पर जाने-आनेवालों पर थीं। यह सब सुनकर उसकी बिनाई थम गयी, वह राह की ओर देखती रह गयी।

उस दिन शाम को रामकिंकर बाबू ने घर के सभी लोगों को थियेटर में भेज दिया।

ठीक इसके महीने भर बाद की बात है।

यह खबर बिजली की तरह तमाम दौड़ गयी कि चौथी अगस्त को ब्रिटेन ने जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी के खिलाफ लड़ाई की घोषणा और फ्रांस, रूस, बेल्जियम तथा सर्विया से सन्धि कर ली है। सारी कलकत्ता नगरी जैसे उन्मत्त सागर की तरह खलबला उठी। हजारों-हजार कोस की दूरी पर रहनेवाले मनुष्यों के मन के विक्षोभ की छूत उड़कर यहाँ भी आ लगी। उस दिन शेयर मार्केट की वह भीड़, व्यवसायी हल्कों की वह दौड़-धूप देखकर कमलेश का मन उत्तेजित-सा हो उठा। जिसे देखो, वही जैसे उत्तेजना से तनकर, तौल-तौल कर पाँव रखते हुए सीधा-सीधा चल रहा है।

अब देखते ही देखते कोयले का भाव बेतरह बढ़ जायगा, अपार धन अतुल ऐश्वर्य से घर भर जायगा। किसी व्यवसायी की जगह पर अपने को बिठाने की कल्पना करते समय कमलेश को सहसा शिवनाथ याद आ गया। उसके जी में आया, फिर एकबार उसे देख लिया जाय, तो क्या हर्ज है? हो सकता है, उस दिन सचमुच ही काम रहा हो। कम- चुपचाप

एकबार उससे खुलकर सब कुछ कह-सुन लेने की तो जरूरत है। मतलब यह कि युक्ति चाहे जो भी हो, एकबार जाने की इच्छा ही असली बात थी। इसी बहाने अपने शीघ्र ही फलनेवाले सौभाग्य की भी खबर देनी थी।

शिवनाथ कमरे में कुछ लिख रहा था कि कमलेश ने जाकर कहा—यह रहे!

शिवनाथ ने सिर उठाकर देखा, देखकर कागज को हिफ़ाजत से बक्स में बन्द कर दिया और बोला—आओ-आओ।

उसे देखकर कमलेश ने पूछा—यह क्या, तुम्हारा चेहरा ऐसा उखड़ा-खड़ा-सा क्यों लगता है? तबीयत कुछ खराब है?

वास्तव में ही रूखे बाल थे, बिना धोया हुआ सूखा चेहरा और उसका शरीर भी थोड़ा-बहुत दुबला दिखायी दे रहा था।

शिवनाथ हँसकर बोला—नहीं, तबीयत ठीक है। आज अब तक नहाना-खाना नसीब नहीं हो सका है।

विस्मय के इसी एक अदना कारण को पकड़ कर कमलेश स्वच्छन्द हो गया। बोला—क्यों, अब तक नहाना-खाना क्यों नहीं हुआ?

काम था। सबेरे ही निकल पड़ा था। अभी कोई पन्द्रह मिनट पहले लौटा हूँ।

कॉलेज नहीं गये?

ये बात रहने दो। यह बताओ कि गाँव कब जा रहे हो?

गाँव अभी नहीं जाना होगा। तै यह हुआ है कि यहीं पढ़ूँ। मगर अपनी बात तो बताओ? उस दिन मामा खुद आये और तुम उस तरह चल दिये?

कह तो दिया था कि काम है।

ऐसा भी क्या काम था कि खड़े-खड़े दो बातें करने का समय भी रहा है!

अब शिवनाथ ने चिकोटी काटी-और यदि यह कहूँ कि कोई नयी प्रेम कहानी थी, जिसके मोह में आदमी अपने आपको एकबारगी खो देता है !

कमलेश जरा चुप रहा। फिर बोला—जाने दो, समझ गया कि बात कहने की नहीं।

शिवनाथ ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। एक पेपरवेट को लोकते-लोकते बोला—एक प्याला चाय पिओगे ? और कहते ही कहते उसने आवाज दी—गोविन्द, दो प्याला चाय।

अखबार को सामने खींचकर कमलेश ने कहा—आज की खबर, बहुत मार्के की खबर है।

हँसकर शिवनाथ बोला—नये इतिहास की सन् तारीख है दोस्त—नाइनटीन फोरटीन—फोर्थ अगस्त।

आज ही बिजनेस मार्केट में विचित्र-सी घटना हो गयी। कोयले की दर तो देखते ही देखते ऊँची जा रहेगी। मामा मुझ से कह रहे थे—अब पढ़-लिख कर क्या होगा-व्यापार में जुट जाओ। तुम्हारे बारे में भी कह रहे थे, बशर्ते कि तुम चाहो।

बिजनेस बेशक अच्छी चीज है।

कमलेश ने हँस कर कहा—मगर तब कविता लिखना बन्द कर देना पड़ेगा।

वह लिख क्या रहे थे, मुझे देख कर छिपा दिया। कविता ही होगी ?

नहीं।

फिर ! जरा देखूँ तो, है क्या बला ?

शिवनाथ ने हँसते हुए कहा—वह एक नया प्रेम-व्यापार है, प्रेम पत्र—दिखाया नहीं जा सकता।

कमलेश फिर चुप हो गया। नौकर चाय रख गया। चुपचाप

प्याले को उठाकर कमलेश ने पीना शुरू किया। शिवनाथ भी अनमना-सा चुपचाप खिड़की की ओर देखने लगा।

यह चुप्पी कैसी तो लग रही थी। शिवनाथ ने ही उसे तोड़ कर कहा—तुम लोगों ने काशी से बोरिया-बधना समेट लिया!

हाँ।

अच्छा!

कमलेश ने कहा—नानी और नान्ती भी मेरे साथ यहीं आ गयी हैं।

शिवनाथ चुप रहा।

कमलेश बोला—डेरे पर चलो न एक दिन।

घुटने पर मुँह रखकर बाहर की ओर देखते हुए शिवनाथ जैसे तन्मय हो गया।

कमलेश बोला—गौरी दिन-दिन कैसी तो होती जा रही है। उसका दुःख देखकर रोना आता है।

शिवनाथ ने एक लम्बी निश्वास छोड़कर कहा—अभी तक मेरा कलंक दूर नहीं हुआ, मैं वहाँ नहीं जा सकता।

कमलेश मानो उच्छ्वसित हो उठा—झूठ, बिल्कुल सफेद झूठ है। किसी चालबाज ने यह अफवाह उड़ा दी थी—हम लोगों ने उसकी छान-बीन की है।

शिवनाथ का मुखमंडल सहसा ओज से दमक उठा। उसने कहा—जो हो, मगर मुझ पर तो तुम लोग विश्वास नहीं कर सके। जिस दिन मैं अपने आपको वैसा विश्वास-पात्र प्रमाणित कर सकूंगा, मेरा कलंक मोचन उसी दिन होगा।

लज्जा से कमलेश का माथा झुक गया। वह कमरे की सतह को देखने लगा। शिवनाथ धीमे-धीमे हँसकर बोला—जब समय आयगा, तो जाऊँगा।

दरवाजे के पास ही बाहर रेलिंग पर भार देकर एक नवयुवक उदास-सा खड़ा था। उस पर नज़र पड़ते ही शिवनाथ जरा चञ्चल हो उठा। बोला, तो अब तो यहीं रहना है तुम्हें। समय-समय पर आ जाया करो। एक ही दिन में कहने की सारी पंजी खत्म करने से कैसे चल सकता है।

कमलेश ने उठ जाने के इस साफ इशारे को समझने में गलती नहीं की। वह एक दीर्घ निश्वास के साथ उठकर चला गया। उसका जाना था कि बाहर वाला नवयुवक अन्दर आ गया। पूछा—तैयार हो गया?

शिवनाथ ने बक्स से कागज निकाल कर उसे दिया। कहा—ज़रा सुशील भैया को इस पर एक नजर डाल लेने को कहेंगे।

वह एक विद्रोह सम्बन्धी इश्तहार का मजमून था।

उस लड़के ने कागज को मोड़ कर अपनी धोती में छिपा लिया। बोला-पूरन भैया से एक बार मिल नहीं लेंगे आप—बड़ी सख्त जरूरत है।

मिलूँगा।

और कुछ न कहकर वह लड़का चल दिया।

पूरन जैसा मिठ बोला था, वैसे ही उसकी बातें बड़ी मुख्तसर हुआ करतीं। जरूरत से बाहर एक शब्द भी वह नहीं बोलता। वह बेसब्री से शिवनाथ का ही इन्तजार कर रहा था। उसके आते ही उसने किवाड़ बन्द कर लिये और कहा—शिवनाथ बाबू, अब आपको एक विपत्ति का सामना करना है।

शिवनाथ ने कहा—कौन-सी विपत्ति, कहिये?

पूरन ने कहा—इधर अरुण पर पुलिस के दाँत गड़ गये हैं। उसके पास हम लोगों के कुछ हथियार हैं। उन हथियारों को वहाँ से खिसकाने का कोई उपाय नहीं दीखता। आप अपना मेस छोड़कर अरुण वाले मेस में चले जायँ। वह और कहीं चला जायगा, हथियार आपके पास रह जायँगे। ऐसा करने से जब पुलिस अरुण की तलाशी लेगी, तो

उसके हाथ कुछ न आयगा। फिर आपके पास से हम हथियारों को हटा लेंगे।

एक क्षण के लिये शिवनाथ का कलेजा काँप गया। उसे अपनी माँ अपनी फूफी याद आ गयीं। एकबार मलिन मुँह से गौरी भी झांक गयी।

पूरन बोला—तो दो-तीन दिन के अन्दर ही आप जाने का ठीक-ठाक करलें। हो सके तो कल ही। यह लीजिये अरुण का पता। वह वहाँ से चल देगा, कमरे के कोने में कागजों में ढँका एक सूटकेस पड़ा रहेगा। उसी में आपके रहने का इन्तजाम हम लोग कर रखेंगे।

इस बीच में शिवनाथ ने अपने को सम्हल लिया था। बोला—ठीक है।

पूरन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—शुभकामना।

सारी रात शिवनाथ की आँखों में ही बीती।

तरह-तरह की उत्तेजनाओं के बीच भी उसे अपने प्रियजन याद आते रहे। यकायक उसे खयाल आया, यदि गिरफ्तार ही होना है, तो क्यों नहीं माँ और फूफी को प्रणाम करके पहले ही विदा ले ली जाय? और गौरी? ऐसे वक्त भी क्या उसके साथ वंचना ही की जाय? नः, ये कर्त्तव्य उसे कर ही लेने हैं। उसने माँ और फूफी को खोल कर तो कुछ नहीं लिखा, पर क्षमा माँगते हुए संकेत से विदा-याचना की। उसके बाद उसने गौरी को पत्र लिखना शुरू किया। उसके अन्तर में एक उथल-पुथल-सी मच गयी। गौरी तो यह रही-यहीं, कोई दस मिनट का रास्ता। भेंट ही कर आया जाय, तो क्या हर्ज है, शायद जीवन में फिर भेंट होना बदा न हो। अधूरी चिट्ठी को उसने फाड़कर फेंक दिया और कुरता पहनते-पहनते ही नीचे उतर पड़ा।

फाटक बन्द मिला। इस मेस का नाम भर ही मेस था, हकीकत में इसकी देखभाल कालेज के अधिकारियों के हाथों है। मेस सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास इसकी कुंजी रहती है। बन्द फाटक के सामने कुछ क्षण खड़ा रहकर

वह फिर ऊपर आकर पत्र लिखने बैठा। लिखना समाप्त करके थका-माँदा-सा वह बिस्तर पर लुढ़क गया। कुछ आराम कर लेने के बाद उसे लगा, अरे, यह मैंने क्या किया ? क्या इतना कमजोर हो गया हूँ मैं ? इस विदाई की क्या जरूरत आ पड़ी ? यह विदाई क्यों, काहे की ? उसने दियासलाई जला कर पत्रों को फूँक दिया।

दूर के किसी घंटा घर की घड़ी ने टन-टन करके तीन बजाये। कलेजे को मजबूत करके वह फिर लेट गया। आदत के अनुसार जब सबेरे उसकी आँख खुली, तो लगा, सारा शरीर जैसे टूट रहा है। फिर भी वह दुबारा नहीं सोया, जो थोड़ा-सा आराम मिल गया था, उसी में मन बहुत कुछ थिर हो गया था। आगे की उतनी बड़ी जिम्मेदारी की बात सोचकर वह उठ बैठा। मन में वही एक लगन थी। किस उपाय से इस मेस को छोड़कर दूसरी जगह जाया जाय ?

एक-एक करके दूसरे लड़के जग रहे थे। संजय भी जगकर बाहर आया। यद्यपि उससे उसकी वैसी घनिष्ठता नहीं हो सकी है, तथापि वैसा फासला भी नहीं रह गया है। उसने कहा—हलो शिवनाथ, हुआ क्या है तुम्हें ? न तो तुम कॉलेज जाते हो, न यहीं रहते हो। बात क्या है ? अरे, तुम्हारी सूरत ऐसी क्यों दिखायी पड़ रही है ? जी खराब है ? ठंड में न रहो, कमरे में चलो, कमरे में।

शिवनाथ संजय के साथ ही उसके कमरे में घुस पड़ा। सामने दीवार पर एक आदमकद आइना टंगा था। पहले ही दिन से उसने न नहाया-खाया, न सोया। सो आइने में अपनी परिछांई देखकर वह अवाक रह गया। सच ही तो, कैसा हो गया है चेहरा ! मगर अस्वस्थता का अनुभव तो उसे नहीं हुआ !

संजय ने कहा—बदपरहेजी से तुमने अपनी तन्दुरुस्ती मिट्टी कर दी शिवनाथ ! क्या जो करते हो, तुम्हीं जानो। सच कहा जाय, तो तुम

एक रहस्य हो उठे हो। हर किसी का ध्यान तुम्हारी ओर खिंच आया है।

शिवनाथ बोला—जानते हो, कलकत्ता में जीवन में पहली बार आया हूँ। नशे की तरह यह मुझ पर सवार हो गया है। संक्षेप में समझ लो कि गाँव का गँवार, रुकतिया हो उठा हूँ।

गर्दन हिलाकर संजय ने कहा—नॉट एट ऑल, इस पर यकीन नहीं आया। खैर ; मुझे तुम्हारा सीक्रेट नहीं जानना है। लेकिन, मेरा कहा मानो, घर हो आओ, तुम्हें विश्राम की जरूरत है, शरीर को स्वस्थ कर लेना जरूरी है।

शिवनाथ खिल पड़ा। अस्वस्थता के नाम पर घर जाने के बहाने मेस छोड़ा जा सकता है। उसने यही निश्चय कर लिया। अपने रूखे बालों को अँगुलियों से पीछे की ओर फेरते हुए वह बोला—मैंने भी वही तै किया है। बहुत कमजोरी आ गयी है। मैं आज ही घर चल दूँगा। लेकिन ; देखूँ, सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब क्या फरमाते हैं!

वे क्या कहेंगे? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। हमारा अभागा देश ही ऐसा है, यहाँ तन्दुरुस्ती का कोई मूल्य ही नहीं, जो कुछ है, सो यह डिग्री है। नानसेन्स! मैंने क्या ठीक किया है, जानते हो, और इट इज़ सर्टेन कि आइ० ए० का इम्तहान देकर मैं विलायत जाऊँगा। मामा ने लड़ाई कहकर आपत्ति की थी, लेकिन टाइम इज़ मनी, उम्र ही बीत जायगी पढ़ने की, तो विलायत जाकर क्या होगा?

शिवनाथ ने नेक सलाह और सहायता के लिये संजय को धन्यवाद दिया। संजय ने ही उसके सरो-सामान सम्हाल दिये। विदा होते समय कहा—ज्यादा दिन घर मत रह जाना। दो साल में किसी कदर पर्सेन्टेज पूरा हो जायगा।

शिवनाथ ने हँसकर कहा—जितनी जल्दी बन पड़ेगा, लौट आऊँगा।

हँसकर संजय बोला—अपने बेटर-हाफ को मेरा नमस्कार कहना।

कह दूँगा।

अरुण के मेस में सारा प्रबन्ध हो चुका था। कुछ ही क्षण पहले अरुण मेस से विदा हो चुका था। खूँखार हथियारों से भरा सूटकेस कागज से ढँका एक कोने में पड़ा था। जाते ही शिवनाथ ने उसे अपने ट्रङ्क में बन्द कर दिया और चीजों को सँवारने में लग गया।

सब सहेजकर नौकर को बुलाकर उसने कहा—जरा इसे बुहार दो, बड़ा गन्दा हो गया है।

नौकर ने कहा—कुछ न कहिये साहब, वह बाबू जो थे न, उनकी आदत ही कुछ ऐसी थी। किसी भी हालत में घर की सफाई नहीं करने देते थे। खैर; अभी साफ किये देता हूँ।

कुछ ही देर में वह मेस की झाड़ूदारिन को साथ लिवा लाया। बोला—भली तरह बुहार दो, कहीं कागज का एक टुकड़ा भी पड़ा न रह जाय।

शिवनाथ को जैसे काठ मार गया। एकटक वह झाड़ूवाली को देखता रह गया। यह तो वही डोम की बहू है, जो भाग आयी है। शरीर खासा तन्दुरुस्त, शहर की आबहवा से रंग निखर आया है, कायदे से अच्छी-सी साड़ी पहने, कलकत्ते की जमादारिन जैसी साफ-सुथरी कुरती देखकर पहचान में नहीं आती कि यह वही डोम-बहू है। मगर शिवनाथ ने उसे पहली ही नजर में पहचान लिया।

उस औरत ने भी उसे देखा और शुरू में अचरज से अवाक हो रही—मगर एक पल के लिये। दूसरे ही क्षण उसका मुख-मण्डल दीप-शिखा के समान आलोकित हो उठा। हँसकर उसने कहा—बाबू! दुलहा बाबू! और झाड़ू को जमीन पर पटककर उसने माथा टेककर प्रणाम किया।

इक्कीस

आश्चर्य की स्थिति पार करके शिवनाथ ने पूछा—तुम यहाँ कहाँ ?

सर के घूँघट को थोड़ा और खींचकर वह बोली—मैं तो यहीं रहती हूँ बाबू, जमादारिन का काम करती हूँ।

शिवनाथ ने फिर पूछा—मगर तुम कलकत्ता आ कैसे गयी ?

शर्म से हँसती हुई उसने नजर झुकाकर कहा—अपने नये खसम के साथ बाबू !

तुमने चुमौना कर लिया है न ?

जी हाँ बाबू। सास और जेठ से तंग आकर मैं मौसी के यहाँ भाग गयी थी—वहीं—

वहीं यह नया विवाह सम्पन्न हो गया—शिवनाथ को इतना समझने में देर नहीं लगी। उस औरत से उसे झुँझलाहट तो थी ही, इस कैफियत से वह दूर न हुई। उसने रुखाई से कहा—अगर चुमौना करना ही था, तो अपने जेठ से ही कर लेने में क्या हर्ज था ?

लहमे भर के लिये औरत के चेहरे पर एक तेज खेल गया। वह झाड़ू उठाकर बुहारने लगी और बोली—उसे सुनकर आप क्या करेंगे बाबू ! मन तो कोई हुक्म का बंदा नहीं होता।

शिवनाथ ने न तो इसका कोई जवाब दिया, न कुछ पूछा ही। चुपचाप बाहर की ओर देखने लगा। नयी जगह, खिड़की से बाहर राजपथ का

रूप भी नया। उस मेस की खिड़की से बाहर पान की दूकान, बगल में काँच के बर्तनों की दूकान, हारमोनियम की दूकान, ट्राम, मोटर, बग्गी, चलनेवालों की भीड़ दिखाई देती थी। कभी-कभी ऐसा लगता, मानों सड़क ही भागी जा रही है। और यह एक छोटी-सी चौमुहानी है। यहाँ ट्राम नहीं है, चौराहे के चारों ओर किनारे-किनारे रिक्शों की कतार। दूकानें नाम को यहाँ दो ही हैं—एक उस कोने पर फलों की और एक इधर चाय की। खरीद-विक्री का यहाँ वैसा समारोह नहीं है, वहाँ से यहाँ जीवन की गति मंथर-सी है। यहाँ तो सड़क पर खड़े होकर लोग बात-चीत कर सकते हैं! शिवनाथ को यह अच्छा ही लगा।

बाबू! दुलहा बाबू!

मुड़कर शिवनाथ ने उधर देखा। उस डोमिन ने कहा—देखिये तो हो गया साफ? उसने कमरे को देख लिया, कुशल हाथों के जतन से झकमका-सा उठा था। जबानी सन्तोष जाहिर करते हुए उसने कहा—वाह, बहुत ही बढ़िया—खूब!

डोमिन खुश हो गयी! हँसकर ही उसने पूछा—मा और फूफी कुशल से हैं?

मुख्तसर में शिवनाथ बोला—हाँ।

गाँव में फिर हैजा-वैजा तो नहीं हुआ बाबू?

नहीं।

एक बात और पूछनी है। गुस्सा तो न होंगे बाबू?

कौन-सी बात?—भँवें सिकोड़कर शिवनाथ बोला।

यही कि गौरी जीजी कैसी हैं?

मजे में हैं।

अब कितनी बड़ी हुई हैं वह?

शिवनाथ झुंझला गया। कहा—यह सब सुनकर तुम्हें क्या

करना। इससे तो बेहतर है कि तुम अपना काम करो जाकर।

मेस का नौकर इस-उस काम से जा-आ रहा था। इस बार जब वह पानी की सुराही लिये अन्दर आया, तब उसने शिवनाथ का अन्तिम वाक्य सुना। रुखाई से उसने उसी को दुहरा दिया—जा-जा, अपना काम कर। भले आदमी के कमरे में खड़ी होकर बड़र-बड़र बक रही है!

डोमिन साँप जैसी फुँफकार उठी—कैसे आदमी हो तुम! तुम्हारी यह चटर-पटर बात! बाबू हमारे मुलुक के हैं, मालिक हैं हमारे, भला उनसे बोलूँगी नहीं में—देश की खोज-खबर भी नहीं लूँगी?—कहते-कहते वह कमरे से बाहर चली गयी। यों तो उस औरत से शिवनाथ को विरक्ति थी, फिर भी नौकर का अनधिकार बीच-बचाव उसे अच्छा नहीं लगा। उसने अन्त में अच्छा कहा—ये हमारे मुलुक के हैं—मालिक हैं हमारे।

यह मेस बहुतकुछ होटल-जैसा ही है। बहुत प्रकार के लोग इसमें बसते हैं। छात्रों की संख्या नहीं के बराबर ही कहनी चाहिए। नौकरी-पेशा लोग ज्यादा हैं। लगभग पाँच बज रहे थे। ऑफिस के बाबू लोग दो-एक करके मेस में आने लगे थे। दिनभर मुँह बन्द किये बैठे रहने के बाद अब तुमड़ी बजने जैसी बोलचाल शुरू हो गयी। एक ने खुले किवाड़ में से शिवनाथ के कमरे को देखकर कहा—जय हो, ब्लैंक फिल्ड अप! एक गया तो दूसरा राजा उपस्थित, भारत का सिंहासन खाली नहीं रहा। निमाई बाबू की तकदीर है!

निमाई बाबू इस मेस के मालिक हैं। शिवनाथ उस डोमिन की बात सोच रहा था। किसी बुरे ग्रह की तरह उसके भाग्याकाश में वह फिर निकल आयी! गाँव में तो योंही अफवाह थी, फिर अब कहीं यह समाचार वहाँ जा पहुँचे, तो लाहौल विला कूवत! यह झूठा कलंक अमिट होकर जीवनभर उसके ललाट पर लिखा रहेगा।

अचानक रोषभरे चीत्कार से सारा मेस काँप-सा उठा। किसी औरत की चीख, उसके साथ-साथ कई पुरुषकंठों की सम्मिलित पूछताछ की आवाज। कौतूहलवश शिवनाथ भी बाहर निकल आया। देखा, बरामदे के एक कोने में कुछ बाबू लोग भीड़ लगाये खड़े हैं। और एक ओर डोमिन युवती दमकते हुए चेहरे से चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है—यह आपलोगों का जो नौकर है, वह कम्बख्त मुझे यह कहता है कि इस नये बाबू से मुझे इतनी प्रीत क्यों है। बाबूजी, वे हमारे मुलुक के हैं, गाँव के हैं। इसके सिवाय वे मेरे मा, बाप, भाई, जो भी कहिये, वही हैं। यह समझिये कि हैजे में मेरा पति मर गया। लगी-लगी मैं हैजे में पड़ी। बात पूछनेवाला कोई नहीं। हालत ऐसी कि पास ही बैठकर गीध मेरे मरने की घड़ियाँ गिनने लगा। ऐसी दशा में इन्हीं बाबू ने काम दिया। मा की तरह मेरी घिनौनी देह को गोद में रख-रखकर सेवा-जतन किया और मुझे बचा लिया। ऐसा केवल मेरे ही लिये किया हो, सो नहीं। गाँव में जहाँ भी, जिसके यहाँ भी रोग हुआ, बाबू समान रूप से वहाँ खड़े रहे। आप ही बताइये बाबू, उनसे भी मैं हँसूँ-बोलूँ नहीं! उनसे हाल-चाल भी न पूछूँ! कहिए, आप ही लोग कहिये—मैं उनको प्रणाम नहीं करूँ!

शिवनाथ वहाँ रुक नहीं सका। बड़ाई की ममता और यश के गौरव-भार से उसका सर झुकता जा रहा था। वह स्त्री मानों उसी की जीत की डंका पीटती हुई सारे संसार को उसका जयगान सुना रही है। वह झट-पट अपने कमरे में आ गया।

उस युवती के प्रति वह और विरक्ति न रख सका। स्नेह से उसका हृदय लबालब हो उठा।

काल का अंश है कल्प; इसीलिये कल्पना में कल्पलोक बनाकर आदमी काल को जीतना चाहता है।

भावी इतिहास बनाने की कल्पना से बंगाल के जो तरुण भारत की

आजादी के लिये आसान रास्ते की खोज में बावले होकर अँधेरी राह पर निकल पड़े थे, इस समय उनकी प्रगति तेज हो उठी। भविष्य के किस मणिमण्डित मन्दिर में स्वाधीनता की दीपशिखा जलती है, वह दूरी कितनी है, काल के घने काले जटाजाल का अन्धकार कितना गहरा है; आदि-आदि बातों पर विचार करने का उन्हें अवकाश नहीं। यूरोप के रणक्षेत्रों के मारूबाजे की आवाज, सैनिकों के कूच करने की ध्वनि, तोप और गोलों की गड़गड़ाहट से बेताब होकर उन्होंने भी वर्त्तमान के घेरे को तोड़कर भविष्य पर कब्जा जमाने के लिये अपना अभियान शुरू कर दिया।

सुशील की अब झाँकी भी नहीं दिखायी देती। वह सारे उत्तरापथ यानी लाहोर से कलकत्ता के बीच तमाम एककुछ व्यवस्था की चेष्टा में घूम रहा है। शिवनाथ को इस बात की भनकभर मिली है, इसकी कोई पक्की खबर उसे नहीं। यह जानने का उसे अधिकार भी नहीं। एक सैनिक की तरह हुक्म बजा लाना ही उसका काम है।

बीमारी का बहाना बनाकर घर जाने के नाम से वह यहां आ गया है—कॉलेज तो जाया नहीं जा सकता, पढ़ने में भी जी नहीं लगता। तो बैठा-बैठा कल्पना का ताना-बाना ही बुनता। किसी नये आदेश, किसी सम्वाद की हर घड़ी प्रतीक्षा करता रहता। यहाँ तक कि बीस दिनों से वह घर चिट्ठी लिखना भी भूल गया है। इस अर्से में माँ या फूफी को याद करने का भी उसे अवकाश नहीं मिला। वह बार-बार कल्पना करता, बारूद से आकाशचुम्बी इमारतें ढहकर धूल हो रही हैं, रेल के पुल टूट रहे हैं, तार के खम्भे उखड़ गये हैं। और, उधर फ्रांस में जर्मन फौज कैले की ओर बढ़ती जा रही है।

बगल के कमरे में लड़ाई की गरमागरम बहस चलती है। शाम को कई लोग सामने नक्शा फैलाकर चिह्न लगाते हुए लड़ाई की खबरें पढ़ते हैं। युद्ध-कौशल और रीति पर गम्भीर-से-गम्भीर आलोचनाएँ होतीं और तम्बाकू

तथा सिगरेट के धुएँ से कमरा घुटने लगता। कोनेवाले कमरे के फ्रेंचकट दाढ़ीवाले सज्जन अकेले ही ह्विस्की की नाटी बोतल लेकर बैठते हैं, ग्लासभर शराब उँडेलकर बड़े ध्यान से शेयर-मार्केटवाली बही निकालकर नोट करते और बीच-बीच में एक घूँट गटक जाते हैं, उनके बाँये हाथ की जलती हुई सिगरेट का धुआँ, टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी, ऊपर को उठता रहता है।

इस युद्ध को लेकर मैनेजर से नौकर की रोज ही एक झड़क हो जाती है। मैनेजर कहते हैं—अरे बाबा, लड़ाई तो विलायत में होती है, यहाँ सब्जी की दर क्यों बढ़ायी जाती है ?

नौकर कहता—यह बात आप सब्जीवाले से पूछ सकते हैं। मैं इसका क्या जवाब दूँ ? कल से आप ही बाजार जाइये, मुझसे न होगा।

उस दिन सबेरे दोनों में ऐसी ही कहा-सुनी शुरू हो गयी थी। शिवू सुन-सुनकर खुशी से हँस रहा था। बरामदे में वह डोमिन युवती झाड़ू लगा रही थी। शिवनाथ के द्वार पर उसने कूड़े की बाल्टी रख दी और अन्दर आ गयी। कहा—दुल्हा बाबू !

शिवनाथ ने पूछा—क्या ?

एक बात कहूँ आपसे ?

कहो।

नीचे हरदम एक आदमी खड़ा रहता है, देखा है आपने ? वह बराबर मुझसे आपके बारे में पूछा करता है।

अरे, यह तो वही खुफिया है ! शिवनाथ चौंक उठा। डोमिन कहती ही गयी—और यहाँ का जो नौकर है, वह भी उससे फुसफुसाता रहता है। मुझसे कहता क्या है कि बाबू के घर में क्या-क्या है देखना, कागज-पत्तर उठा लाना। ऐसा करने से सरकार* इनाम देगी। उस नौकर ने बताया कि वह आदमी खुफिया है।

इतने में शिवनाथ ने अपने को सम्हाला—हँसकर बोला—बेजा क्या है, मैं रोज तुम्हें कागज बीनकर दिया करूँगा, दे आया करना।

उसने अजीब तरह से शिवनाथ को देखकर कहा—हमलोग छोटी जाति के हैं, इससे क्या हमलोगों को धर्म का भी डर नहीं है बाबू? भला जिस काम से आपका नुकसान होगा, वह काम मैं कर सकती हूँ? कहते-कहते उसका गला भर आया, आँखें भी सजल हो आयीं।

शिवनाथ ने कहा—नहीं-नहीं, उससे मेरा नुकसान नहीं, लाभ ही होगा।

अचानक वह बड़े ध्यान से कमरा बुहारने लग गयी और बोली—वह शायद नौकर आ रहा है, पाँव की आहट।

सच ही वह नौकर आ पहुँचा। हँसकर शिवनाथ से बोला—यह जमादारिन आपका बड़ा यश गाती है बाबू, आप पर बड़ी भक्ति रखती है।

उत्तर में शिवनाथ ने सवाल ही किया—मेरी कोई चिट्ठी-विट्ठी नहीं आयी है?

जी नहीं। आयी होती, तो मैं तुरन्त दे जाता।

चिट्ठी की बात आते ही शिवनाथ वास्तव में चिन्तित हो उठा। कई दिन हो गये, घर से कोई खबर नहीं आयी। लगभग बीस दिन से उसने भी चिट्ठी नहीं लिखी है। एक हफ्ता पहले ही फूफी की चिट्ठी आयी थी। चिट्ठी फूफी की ओर से थी। लिखा था माँ ने। उस चिट्ठी का जवाब वह अबतक नहीं दे पाया है, इसलिये कि उन लोगों ने सिर्फ कुशल ही नहीं माँगा है, कुशल के सिवाय बहुत-कुछ जानना चाहा है।

डोमिन युवती बोल उठी—दुल्हा बाबू, लगता है, आपकी चिट्ठी इसी ने ले ली है। आप जरा सावधान रहें।

नजर उठाकर शिवनाथ ने देखा, नौकर कब का जा चुका है और डोम-बहू उसे सावधान कर रही है। उसकी आँखों में असीम उद्वेग की कातरता है। वह जब चली गयी, तब शिवनाथ ने पत्र को निकाला।

फूफी ने लिखा है, कालेज के मेस को छोड़कर तुम दूसरे मेस में क्यों चले गये, कुछ समझ नहीं सकी। जो कारण तुमने लिखा है, उससे सन्तोष नहीं हुआ। तुम्हारी सारी चिट्ठी ही मानों कैसी-सी लगी, मन को शान्ति नहीं मिली। तुम्हारे लिये हमलोगों की चिन्ता बढ़ गयी। रात को नींद नहीं आती। आकाश-पाताल सोचती हूं। तुम्हारी माँ के पिछले कई दिनों से बुरे सपने आ रहे हैं, उन्होंने देखा है, तुम्हारा सारा शरीर लहूलुहान है, कमरे की सतह खून से भर गयी है।

शिवनाथ ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। यह है उसके जीवन का भावी स्वरूप! किन्तु जो चीज उसके अन्तरके कल्पलोक में छिपी है, उसकी परिछांई इतनी दूरी पर रहनेवाली उसकी माँ के मनोदर्पण पर जाकर कैसे पड़ी? सोचते-सोचते उसे ऐसा लगा, माँ की अन्तरात्मा की आँखें मानों ऊपर आकाश पर स्थित हैं और दो जलते हुए नक्षत्रों की तरह वे सदा-सर्वदा उसके माथे पर जागती रहती हैं। उन नक्षत्रों की ज्योति सभी जड़ वस्तुओं के आवरण को भेदकर शिवनाथ के प्रत्येक काम को देख रही है। सोचकर उसकी आँखों में पानी भर आया। मन-ही-मन माँ को प्रणाम करके वह बोला—माँ, तुम्हारा जो पुत्र-गौरव है, उस पर मैंने धब्बा नहीं लगाया है। वैसा काम मैं हर्गिज नहीं करूँगा, नहीं करूँगा। आँखें मूँदकर उसने माँ और फूफी को ध्यान में लाने की कोशिश की। फूफी मारे चिन्ता के मानों जड़ पुतली-सी अवाक् उदास बैठी हैं। और उसकी माँ छाती में सब कुछ दबाये अग्निगर्भा धरती के बाहरी श्यामली शोभा की तरह हँस-हँसकर उन्हें दिलासे दे रही हैं। पेट की असह्य पीड़ा से खाट पकड़ लेने पर भी कभी किसी ने उनके मुँह से एक भी कातर शब्द नहीं सुना, उस हालत में भी उनकी यह हँसी एक क्षण को मलिन नहीं हो सकी है। उसकी आँखों पर माँ की रोगशय्यावाला रूप तैर आया।

शिवनाथ पूछता—बड़ी तकलीफ है माँ ? डॉक्टर को बुला दूँ ?

बड़े मन्द स्वर में माँ कहतीं—नहीं-नहीं, अभी तो मर्फिया मिक्स्चर पिया है, बल्कि तू मेरे पास बैठ, और पास आ जा।

सहसा भावावेश में वह व्याकुल हो उठा, नजरों से पृथ्वी की सब तस्वीर ही पुँछ गयी, केवल उसकी रोगिणी माँ का स्थिर, अवश शरीर अन्धकार के कलेजे में अकम्प दीप-शिखा की दुबली ज्योति-रेखा जैसा मूर्च्छित होकर पड़ा रह गया।

सुबह का सारा समय बेचैनी से बिस्तर पर लोट-पोट करते बीता। आखिर में उसने रात को घर जाने का निश्चय किया। लेकिन ; तुरन्त ही मन निराशा से टूट गया। घर जाना तो हो ही नहीं सकता। उसे बक्स में बन्द उन चीजों की याद आ गयी, याद आ गयी उस खुफिया की, मेस के नौकर की। अभी भी मानों डोम-बहू की बात उसके कानों में गूँज रही थी—"यहाँ का जो नौकर है, वह भी उससे फुसफुसाता रहता है।" मान लो, उसकी गैरहाजिरी में सूनी दोपहरी को कोई ताला तोड़कर देखे! हताश-सा वह फिर बिछावन पर लुढ़क गया।

मेस लगभग सूना पड़ा है। लोग अपने-अपने काम-काज से जहाँ-तहाँ निकल गये हैं ; रसोई-पानी, खाना-पीना सब खत्म करके रसोइये-नौकर इस समय सो गये हैं। सामने का रास्ता भी लोगों से खाली है। कभी कोई जाता-आता दिखाई पड़ जाता है। वह खुफिया भी ऐसे समय पेड़ के नीचे बैठकर ऊँघता रहता है। बीच-बीच में खोंमचेवालों की आवाज और भिखमंगों की अजीब ढंग से माँगने की आवाज सुनायी पड़ती है।

किसी ने किवाड़ के कड़े खटखटाये—शिवनाथ बाबू!

शिवनाथ ने तुरन्त दरवाजा खोला—अरे, पूरन बाबू!

पूरन चुपचाप अन्दर आ गया। भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। बोला—आज रात को आपको मेरे साथ कलकत्ता से बाहर जाना है।

शिवनाथ जिज्ञासाभरी आँखों से उसकी ओर देखने लगा। पूरन ने कहा—जब कि हमें बहुत बड़ी जरूरत है, तभी हमारे एक नेता हमसे जुदा होना चाह रहे हैं। अद्भुत् आदमी हैं भाई, सारी जिन्दगी इसी की साधना में संन्यासी के समान बितायी है। कलकत्ता से बाहर एक आश्रम तैयार करके उन्होंने अनेक कार्यकर्त्ता तैयार किये हैं, लेकिन पता नहीं क्यों, दल के सहसा ही विरोधी हो गये हैं। उन्हींके पास जाना है।

शिवनाथ ने कहा—मैं तैयार हूँ।

पूरन के धीर स्वर की दृढ़ता और आँखों की चमक ने शिवनाथ के सर्वाङ्ग में जादू फेर दिया। सुबह से उसे जो बेचैनी थी, छूमंतर हो गयी

पूरन ने कहा—रात के दस बजे हवड़ा में दस नम्बर प्लैटफार्म पर भेंट होगी। टिकट दूसरा कोई लिये रहेगा।

शिवनाथ ने कहा—लेकिन ; यहाँ जो हथियार पड़े हैं, उनका क्या होगा! हमारा खयाल है, यहाँ का नौकर भी खुफिया है।

जैसे चौंक गया हो, इस तरह पूरन बोला—हाँ, यह तो सोचने की बात है। हथियारों को तो जैसे भी हो, यहाँ से हटा ही देना पड़ेगा! कलकत्ताभर में तलाशी की धूम पड़ जायगी, किसी भी दिन शुरू हो सकती है, कल भी हो तो ताज्जुब नहीं। पुलिस तैयार हो रही है।

लेकिन ; ले भी कैसे जाया जाय? यहाँ का नौकर भी खुफिया है और वह खुफिया भी आठों पहर पास-पास मँडराता रहता है।

कुछ क्षण सोचकर पूरन ने कहा—कोई तरकीब सोचिये, मैं भी सोचूँगा। शाम-शाम तक आपको खबर मिल जायगी। मैं अब चल ही पड़ूँ। बेला झुक आयी, रास्तों की भीड़ बढ़ जायग ।

पूरन चुपचाप चल दिया। मन ही मन शिवनाथ मेस में किसी एक ऐसे स्थान की खोज करता रहा, जो गुप्त और सुरक्षित हो। न, ऐसी कोई जगह नहीं। बाहर से ले जाने का भी कोई उपाय नहीं। चोकसी

निगाह बिछाये कम्बख्त खुफिया बैठा है, कुछ ही दूर पर चार सिपाही और एक सार्जेंट खड़े हैं। हाँ, एक उपाय हो सकता है कि हथियारों के जोर से इनके व्यूह को तोड़कर निकल जाया जाय।

कौन ?

कोई दरवाजा खोल रहा था। चौंककर शिवनाथ ने पूछा—कौन ?

तेजी से द्वार को खोलकर वह डोम बहू अन्दर आ गयी। द्वार को उसने भीतर से बन्द कर दिया। उसने शिवनाथ के दोनों पाँव पकड़ लिये और गिड़गिड़ाकर बोली—दुल्हा बाबू, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, आप यह सब न करें।

शिवनाथ की छाती के अंदर भूकम्प-सा हो गया। थरथराती हुई आवाज में उसने पूछा—क्या ?

बाबू, मैंने सब कुछ सुना है। उस नौकर ने मुझ से कहा है कि अपने बाबू की दशा देखना कि क्या होता है। आपके पास क्या तो बम है, पिस्तौल है। वे लोग आपको जेल ले जायँगे, फाँसी देंगे।

शिवनाथ चुपचाप थिर होकर खड़ा रहा। उसके भीतर का रोष बार-बार फुँफकार उठने लगा— आखिर इस खुफिया का काम तमाम कर दिया तो कैसा रहे ?

पैरों पड़ती हूँ बाबू। आपके पास जो है सो मुझे दे दीजिये, मैं मैले की बाल्टी में भरकर बाहर फेंक आऊँगी। इस समय नौकर सो रहा है, दे दीजिये, दीजिये मुझे।

आशा, आनन्द और एक अनोखे अचरज से शिवनाथ लहमे में जानें कैसा तो हो गया ! अपलक आँखों वह अस्पृश्य का काम करनेवाली छोटी जाति की उस स्त्री को देखता रह गया। वह रो रही है, उसी के मुंह की ओर देख-देखकर कातर प्रार्थना करती हुई रो रही है। शिवनाथ की आँखें भी गीली हो गयीं।

उसने फिर मिन्नत की—अब देर मत कीजिये, अभी-अमी वह मुँह-झौंसा जग जायगा।

अब शिवनाथ आपे में आया, तोभी उसके हाथ-पाव काँप ही रहे थे। काँपते हाथों उसने बक्स खोलकर एक-एक करके सब सत्यानाशी हथियार डोम-बहू के मैला फेंकनेवाले डोल में डाल दिये। उसने उसे ढेर-सा कूड़ा डालकर एहतियात से ढँक दिया और भीत चाल से बाहर हो गयी।

धीमे-धीमे पुकारकर शिवनाथ ने कहा—खबरदार, कहीं धक्का न लग जाय, नहीं तो जान पर आ बनेगी।

उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं। बोली—आपने ही जान बचायी थी, न होगा, आपके लिये ही यह जायगी।

शिवनाथ ने फिर कहा—देखो, मेरे नाम से जो पहुँचे, उसे दे देना।

उसने कहा—नहीं, गौरी जीजी का नाम बताकर भेजना। आपका नाम तो ये दई के मारे भी ले सकते हैं। इतना कहकर वह झूमती-झामती चली गयी, जैसे मजाक करके गयी हो। शिवनाथ की आँखों के आगे सारी धरती जैसे सुनहली हो उठी। इतनी सुन्दर!

वह बरामदे में आ खड़ा हुआ। उधर उस ओर वाले फुटपाथ पर डोम-बहू ने खुफिया से हँसी-मजाक शुरू कर दिया था। हँस-हँसकर ढुलक पड़ते हुए उसने खुफिया की नाक तक ले जाकर अपना अँगूठा बार-बार हिला दिया और झमकती हुई एक लहर उठाती-सी चली गयी।

वह आदमी एक आवेश के मोह से मुँह बाकर हँसता हुआ उधर को देखता रह गया।

शिवनाथ भी हँसने लगा, लेकिन उसकी हँसी अचानक ही रुक गयी। बेवजह ही उसे गौरी याद हो आयी।

बाईस

दूसरे दिन शाम को वे अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचे। संथाल परगने के बिलकुल भीतरी भाग में। उस हल्के में उस स्थान को लोग 'संन्यासी का आश्रम' के नाम से ही जानते थे। स्टेशन से पचीस मील दूर। पहाड़ और जंगल के बीच का दुर्गम पथ। इतनी दूर चलकर जाने से मारे थकावट के दोनों का शरीर जैसे चूर-चूर हो गया था। किन्तु, इतनी थकावट के बावजूद आश्रम में पहुँचकर शिवनाथ आनन्द और अचरज से खिल पड़ा। संथाल परगने की लाल कंकरीली मिट्टी पर शस्य-श्यामली शोभा की कैसी अपूर्व छटा! बहुत बड़ा रकबा—कोई दो सौ बीघे से भी अधिक का यह चकला चारों ओर से मिट्टी के अड्डे से घेरा हुआ है, घेरे पर झाड़-झुरमुट, बीच की विस्तृत भूमि में तरह-तरह की फसल; सिंचाई के लिये बीच-बीच में कुँआँ, कुँएँ के डँडे के बाँस आकाश की ओर उठे हुए। मुख्य द्वार से भीतर तक एक साफ-सुथरी सड़क। सड़क के पास मिट्टी के छोटे-छोटे घर—खैराती दवाखाना, रात्रि पाठशाला, विद्यालय, करघाघर, अन्न का गोला, आदि-इत्यादि। उस रात शरत् चाँदनी की धुली हुई जोति में सबकुछ ने अनोखी शोभा में सनकर शिवनाथ का जी जुड़ा दिया।

इतना बड़ा आश्रम, चारों ओर प्रयत्नों के ऐसे-ऐसे चिह्न, मगर वहाँ आदमी के होने का पता नहीं चल रहा था। एक अजीब सन्नाटा-सा था। दोनों आगन्तुक चुपचाप बढ़ते जा रहे थे। पूरन ने ही पहले उस नीरवता

को भंग किया। बोला—राय बदल जाने के कारण सभी कार्यकर्त्ता आश्रम छोड़कर चले गये हैं। यहाँ आठों पहर पचास नौजवान रहते थे, जिनके अथक परिश्रम, अटूट लगन से यह आश्रम बन सका है।

शिवनाथ ने पूछा—जिनके लिये हमलोग आये हैं, वह कहाँ रहते हैं? अँगुली के इशारे से पूरन ने बताया—उन पेड़ों की आड़ में एक छोटे-से घर में, वह वहाँ, जहाँ से छनकर रोशनी दिखायी दे रही है।

शिवनाथ ने देखा, दूर पर, इस खिली चाँदनी में भी जमे हुए अंधकार-जैसे कुछ पेड़ों के पत्तों से छनकर आलोक की एक लम्बी लाल रेखा दिखायी दे रही है। उसके हृदय में न जानें कैसी एक अनुभूति हुई कि जिसका ऐसा महान् कार्य है, बंगाल के क्रान्तिकारियों का एक खास दल, जिसे अपने नेता के आसन पर बैठाना चाहता है, न जाने वह कैसा है? मन ही मन उसने एक विराट व्यक्ति की कल्पना की।

पेड़ों की उस भीड़ में घुसने के बाद एक छोटा-सा घर मिला। अन्दर रोशनी जल रही थी, उस रोशनी की झलक खिड़की से छिटककर पेड़ों पर पड़ी थी। घर का किवाड़ अन्दर से बन्द। दरवाजे को मुट्ठी से ठोंककर खबर कर दी गयी कि बाहर कोई इन्तजार में है।

दरवाजा खोलकर अन्दर से एक महज मामूली आकृति के आदमी निकले। प्रसन्न होकर हार्दिकता से उन्होंने कहा—आओ। यही उम्मीद थी, मन कह रहा था कि तुम लोग आओगे। चाय का पानी तैयार है—मुँह-हाथ धो लो। चाय पी लो, तो न होगा तो थोड़ा पानी उबाल दूँगा। पैदल पचीस मील चलकर आये हो, गरम पानी से नहा लेने पर थकावट जाती रहेगी।

पूरन ने दृढ़ स्वर में कहा—दादा, सब से पहले काम की बात। बात खत्म हो जाय।

हँसकर उन्होंने कहा—आखिर डरने की क्या बात है, चाय में तो बस

दूध और चीनी रहेगी, नमकीन कुछ नहीं दूँगा। और नमकीन भी दूँ तो क्या एतराज हो सकता है? तुम्हारे रसायनशास्त्र में नमक के किसी ऐसे गुण का जिक्र तो कहीं नहीं है कि जिससे किसी पर आक्रोश होने पर भी आदमी उसका एहसानमंद हो जाता है। इतना कहकर उन्होंने स्टोव पर से खौलते हुए पानी को उतार लिया। उसमें चाय डालते हुए फिर कहने लगे—बाहर जाकर देख—पानी, तौलिया, सब कुछ तैयार है। राजा भैया मेरे, झटपट मुँह-हाथ धो ले। हाँ, तुम्हारा नाम क्या है भाई?

शिवनाथ ने श्रद्धालु होकर अदब के साथ कहा—शिवनाथ बनर्जी। खूब, बहुत अच्छा नाम, मंगल के देवता!

हाथ-मुँह धोकर हाथ में चाय का प्याला लेकर पूरन ने पूछा—लेकिन आप में यह कैसा परिवर्तन दादा?

दादा जरा हँसे—बोले, कहूँगा, पहले तुम लोगों के लिये भात-भुरता का इन्तजाम करूँ।

पूरन ने जोरदार एतराज करके कहा—नहीं-नहीं, वह सब रहने दीजिये। हमें रातोरात लौट जाना है। एक-एक क्षण की कीमत इस समय बहुत है।

सो मैं जानता हूँ। मगर यह भी तो जानते हो कि सुजाता की खीर खाने में जो देर लगी, उससे गौतम को बुद्धत्व पाने में बाधा नहीं हुई, बल्कि मदद ही पहुँची। जिस जीवन के मूल्य पर तुम लोग भारत की स्वाधीनता खरीदना चाहते हो, स्वयं उस जीवन का भी तो कोई मूल्य है।

भोजन के बाद बातें शुरू हुईं।

दादा ने कहा—मैंने इस पर बहुत सोचा-विचारा पूरन, मैंने समझा कि यह रास्ता गलत है।

पूरन ने भँवें सिकोड़ीं। कहा—भूल? आप इतिहास को गलत कह रहे हैं? राजनीति के निर्देश को आप नहीं मानना चाहते?

मैं इतिहास को अस्वीकार नहीं करता, मगर इसे भी नहीं स्वीकार करता

कि इस देश में उसकी पुनरावृत्ति एक ही ढंग से, एक ही रूप से होगी। और राजनीति ? वास्तव में मैं पश्चिमी राजनीति को नहीं मानता।

इसका कारण ?

कारण यही कि मन्दिर के अन्दर मिल नहीं बैठायी जा सकती और न मिल के ऊपर ही मन्दिर का कलश बैठाया जा सकता है।

पूरन खिजला गया। बोला—यह पहेली न बुझाइये, जो कहना हो, साफ-साफ मुझ से कहिये।

हँसकर उन्होंने कहा—अच्छा, साफ-साफ ही सही। पहली बात सुनो। मेरा अपना खयाल है कि अंगरेजों को भगाने का नाम ही स्वाधीनता नहीं है। विदेशी शासन को उखाड़ फेंककर साम्प्रदायिक शासन चलाने का नाम राज्य की छीनाझपटी है। देश की सच्ची स्वतन्त्रता इससे सर्वथा परे की वस्तु है।

यह तो हमारे मिशन पर आप कटाक्ष कर रहे हैं।

हर्गिज नहीं। तुम लोगों को मैं कभी गलत नहीं समझ सकता। तुम्हारा मिशन कैसा पवित्र और स्वार्थहीन है, यह क्या मैं नहीं जानता ? धर्म-अधर्म नहीं, प्रवृत्ति-निवृत्ति नहीं—देश ही तुम लोगों का हृषीकेश है—आदि जननी। भला हम तुम लोगों को नहीं पहचानते ?

पहचानते हैं, तो फिर ऐसा क्यों कहते हैं ?

अच्छा, हमारी एक बात का जवाब दो। देश जब आजाद हो जायगा, तब शासन कौन सम्हालेगा ? बिगड़ मत जाना, सोचने की बात है। तब यहाँ के शासन की बागडोर होगी इस भद्र सम्प्रदाय, शिक्षित सम्प्रदाय के हाथों। देश में जो उच्च वर्ग के लोग हैं, वही शासन करेंगे, जो धनी हैं वही करेंगे। लेकिन; असली आजादी तो यह नहीं है। स्वाधीनता के मानी मैं क्या समझता हूँ, जानते हो ? जनता द्वारा स्थापित जनता की सरकार, न कि जनता के लिये स्थापित सरकार। किसी की कृपा नहीं, किसी का

दान नहीं, जिस पर तैंतीस करोड़ लोगों का समान हक है, उसे पाने के लिये स्वतः छियासठ करोड़ हाथों का आगे बढ़ आना जरूरी है।

पूरन अनिमेष आँखों से धरती की ओर शिवनाथ दमकती हुई आँखों से प्यासे की तरह उस वक्ता की ओर देखता रहा। उन्होंने फिर कहा—इस इलाके के चारों ओर भारत की आदिम जाति के संथाल फैले हुए हैं। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक घूम आया हूँ। मैंने अपनी आँखों देखा है, ब्राह्मणधर्म को जन्म देनेवाली, आर्यसभ्यता की गौरवशालिनी भारतभूमि में तमाम शूद्र ही-शूद्र, अनार्य ही अनार्य भरे पड़े हैं। हजारों हजार साल बीत गये, अवस्था आज भी वही है। यही कारण है कि भारत बार-बार विदेशियों से मुँहकी खाता रहा है। अपनी इस अवस्था के होते हुए स्वाधीनता के लिये आगे बढ़ने को पागलपन के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

पूरन ने कहा—लेकिन; राजनीतिक जटिलता से आज जो सुयोग मिला है, बीत जाने पर फिर क्या ऐसा सुयोग मिलेगा?

हो सकता है कि फिर न मिले। लेकिन; यह भी सही है कि तैंतीस करोड़ आदमियों के अधिकार को दबाकर रख सके, ऐसी भी शक्ति किसी की कभी न होगी। दूसरी बात यह भी है कि विदेशी राजनीति की देन यह जो आतंकवाद है, मैं उससे भी सहमत नहीं। यह गलत रास्ता है।

इसके मानी?

मानी मैं बताता हूँ, पहले मेरी एक बात का जवाब दो। इस स्वाधीनता की क्या जरूरत है? भावावेश में यह मत कह देना कि स्वाधीनता के लिये ही स्वाधीनता की जरूरत है।

देश की यह दुर्दशा देखने के बाद भी आप इसका जवाब माँगते हैं?

यानी तुम्हारा मतलब यह हुआ कि अनाज और कपड़े की सुविधा और धन-ऐश्वर्य के लिये स्वाधीनता की आवश्यकता है।

बेशक। खेती, शिल्प, सम्पत्ति, शिक्षा में देश की चरम उन्नति—

ठीक है। किन्तु मैं इससे कुछ अधिक चाहता हूँ। चाहता हूँ कि चरम उन्नति के साथ-साथ परम उन्नति हो। हमारी सभ्यता के उन्नति-साधन का हमें अवकाश, सुअवसर और अधिकार मिले और वह हमारी जातीय भावनाधारा के अनुरूप हो। अपने ऊपर विदेशी सत्ता द्वारा जबरन लाद दिये गये जीवन-दर्शन को मैं नहीं अंगीकार करना चाहता। पूरन, आज विदेशी सत्ता के दबाव से, उनके जीवन-दर्शन के दबाव से चरम की फेर में हमारा परम भुला गया है। मैं स्वाधीनता का उपासक इसीलिये हूँ और इसीलिये विदेशियों की विरासत यह आतंकवाद या विप्लववाद मैं नहीं ग्रहण कर सकता।

पूरन अजीब ढंग से हँसकर बोला—इसके लिये कौन-से उपाय की शरण लेनी पड़ेगी—तपस्या की या यज्ञ की?

वह अभी ठीक-ठीक नहीं मालूम है, अभी सोचकर मैं कुछ त नहीं कर सका। तब इतना तो ठीक ही जानो पूरन, कि वह गुप्त हत्या और षड्यन्त्रों का रास्ता तो नहीं ही है। यह न तो यथार्थ की ही दृष्टि से ठीक है और न हमारे देश की विशेषता, सभ्यता और शास्त्र के अनुरूप ही। हँसो मत पूरन, कभी मैं भी ऐसी बातें सुनकर हँसा करता था। मगर यह हँसने की बात नहीं है। परशुराम जैसे वीर्यवान की मातृहत्या तक का पाप छूट गया था, लेकिन ब्राह्मण होकर कुल्हाड़ी उठाने का पाप किसी भी पुण्य के प्रताप से नहीं गया, उससे उनके जीवन की उन्नति का पथ सदा के लिये अवरुद्ध हो गया।

पूरन ने कहा—तर्क की जरूरत नहीं है दादा, मैं आपको जानता हूँ, तर्क से मैं आपको नहीं जीत सकता। हाँ, एक बात कह लूँ कि इस आग को जिन लोगों ने जलाया है, आप भी उनमें से एक प्रधान व्यक्ति हैं। जब आपने आग जलायी थी, तभी अगर मेघ लाने की

तपस्या भी कर ली होती, तो आज ऐसा कहने में लाभ की गुंजाइश हो सकती थी।

दादा ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा—वह मैं जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि अपनी उस भूल का मुझे हर्जाना भी चुकाना होगा।

अकस्मात गिड़गिड़ाकर पूरन बोल उठा—आप निराश न हूजिये दादा, एक बार आप उसी उत्साह से खड़े हों, असम्भव सम्भव हो जायगा। हमलोगों ने अपने कार्यों को आतंक और विप्लववाद के दायरे में ही आबद्ध नहीं रखा है। हमलोग सशस्त्र विद्रोह करेंगे। लाहोर से लेकर रंगून तक प्रत्येक छावनी में हमारे कार्यकर्त्ता सचेष्ट हैं। उधर हमारे प्रतिनिधि जर्मनी जा रहे हैं—वहाँ से हमें धन और हथियार मिलेंगे। देखते ही देखते एक दिन भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक विद्रोह की आग भड़क उठेगी।

गम्भीरता से कई बार अपनी गर्दन हिलाकर उन्होंने कहा—नहीं पूरन, वास्तविकता से भी यह असम्भव है और हमारे धर्म की दृष्टि से भी। यह मत और पथ ग्रहण करने योग्य नहीं। यह नहीं हो सकता।

पूरन ने गम्भीर होकर कहा—आपकी खुशी! हमारे हथियार और धन, जो कुछ आपके जिम्मे हैं, हमें दे दीजिये।

स्थिर आँखों से पूरन की ओर देखकर उन्होंने कहा—ठहर जाओ, इसका उत्तर मैं दूँगा। यह कहकर कागज के दो टुकड़े खींचकर घिस-घिस करके कुछ लिखा। उन लिखे कागजों को अपने तकिये के नीचे रख-कर बोले—यह यहाँ रखा रहा। जाते समय इसे पढ़ लेना।

पूरन ने कहा—रात बहुत जा चुकी दादा, मेरी बातों का जवाब दीजिये।

जवाब?

हाँ।

तुम्हें क्या जवाब दूँ पूरन ? जिस मत, जिस पथ और काम की मैं ताईद नहीं करता, जिसमें मैं निश्चित सर्वनाश देखता हूँ, उसपर आगे बढ़ने में मैं तुमलोगों की मदद भी तो नहीं कर सकता।

पूरन की आँखें जल उठीं—बोला—यह तो आपका सहायता करना नहीं, बल्कि अपने जिम्मे रखे हुए हथियार और धन लौटाकर उससे अपना रिश्ता ही तोड़ लेना है। फिर रखी हुई दौलत नहीं लौटाने का आपको हक भी क्या है ?

मैंने उन चीजों को बर्बाद कर दिया है पूरन।

ऐं ?

हाँ, हथियारों को तोड़कर मैंने फेंक दिया है।

देखते ही देखते एक व्यतिक्रम आ गया। पूरन का हाथ पिस्तौल लेकर साँप के फन-सा पाकेट से बाहर निकल आया। दूसरे ही क्षण तीखी आवाज हुई, बारूद की गन्ध और धुएँ से घर भर गया। शिवनाथ की अचरज से विस्फारित नेत्रों के आगे ही पुराने विप्लवी की लहूलहान देह धम्म से मिट्टी पर गिर पड़ी। गोली शायद छाती को छेदती हुई एकदम उस पार निकल गयी।

अब एक तीखे रोष के साथ पूरन ने कहा—ट्रेटर !

शिवनाथ बोला—नहीं-नहीं ; यह क्या किया आपने ?

ठीक ही किया है। इसी तरह के कुछ लोगों ने बंगाल के विप्लव-वादियों का सर्वनाश कर दिया है। रुपये हजम कर जाने का लोभ नहीं रोक सके।—बात समाप्त करके उसने तकिये के नीचे से उन दोनों कागजों को निकाला। उन्हें पढ़ते ही उत्तेजना से लाल हुआ पूरन का चेहरा कागज के समान ही सफेद हो गया। हाथ के साथ-साथ दोनों पत्र भी थरथरा उठे। उसने विह्वल दृष्टि से शिवू को देखकर दोनों पत्र उसकी ओर बढा दिये।

शिवू ने पढ़ा—एक में लिखा था—अपने किये कामों के फलस्वरूप जीवन भार हो गया है। इसीलिये मैं आत्महत्या कर रहा हूँ!

दूसरे में लिखा था—आज तुम्हारी आँखों में मैंने जो चिनगारियाँ देखीं, उससे लगा, मुझे अपनी भूल का हर्जाना आज ही चुकाना पड़ेगा। यदि ऐसा ही हो कहीं, तो मैं जानता हूँ कि संस्था के आदेश से यह काम तुम्हें ही करना पड़ेगा। इस नियम के बनानेवालों में से एक मैं भी था! तुमपर इसका कोई अपराध नहीं होगा। लेकिन जाते वक्त दूसरी चिट्ठी को मेरे तकिये के नीचे और अपनी पिस्तौल मेरे हाथ के पास रख जाना। इससे तुमलोगों पर कोई खतरा नहीं रहेगा। लेकिन; तुमलोगों से मेरा अन्तिम अनुरोध रहा भाई, कि इस रास्ते पर कदम नहीं बढ़ाना।

शिवनाथ ने स्तम्भित होकर पूरन की ओर देखा, उसके हाथ में अभी भी पिस्तौल तैयार थी। शिवनाथ ने झपटकर पिस्तौल को उसके हाथ से ले लिया और लाश के पाँव के पास गिरा दिया।

भादों वदी दूसरी की रात! आकाश में लगभग पूरा चाँद। खिली चाँदनी से शरत् का नीला आकाश नीले मर्मर की तरह झलमला रहा है। बीचोबीच एक सफेद छायापथ किसी लम्बे उत्तरीय के समान एक से दूसरे छोर तक फैला हुआ है। पूरी चाँदनी होने से आकाश में नक्षत्रों की कमी। उत्तर की ओर ध्रुवतारा की प्रदक्षिणा करके सतभैया पश्चिम की ओर झुक पड़ा है। पहाड़ी चढ़ाई, ढाल के बाद सूनसान पगडण्डी, पगडण्डी के दोनों किनारे घना जंगल। जंगल के माथे पर चाँदनी सो गयी है, जिसकी छाया से पगडण्डी पर अजीब धूपछाँही शोभा। लेकिन; इस सौन्दर्य का आनन्द उठाने योग्य मन की स्थिति उन दोनों की नहीं थी। शिवनाथ के अन्तर में तो एक विचित्र ही आवेग की लहर-सी दौड़ रही थी। मन मानों मूक और जड़ हो रहा था। केवल बीच-बीच में लम्बा निश्वास छूट पड़ता था। पूरन की आँखें जमीन में ही गड़ी थीं। इसलिये नहीं

कि वह होशियारी से चल रहा था, बल्कि इसलिये कि आकाश की ओर ताकने को अकारण ही एक अनिच्छा-सी हो आयी थी।

राह चलते-चलते पूरन ने शिवनाथ को खींचकर रोकते हुए कहा—साँप! साँप! शिवनाथ ने देखा, कोई बीस हाथ की दूरी पर एक बहुत बड़ा विषैला नाग फन खोले खड़ा है और फुफकारकर फूल-फूल उठता है। पूरन ने कहा—जल्दी से अपनी पिस्तौल निकालिये, कहीं उसने खदेड़ा, तो आफत आ जायगी।

अपनी पिस्तौल निकालकर शिवनाथ ने पूरन के हवाले की। एक दीर्घ श्वास छोड़कर पूरन बोला—मुझी को दे रहे हैं?

शिवनाथ ने भी एक लम्बी साँस ली और कहा—पता नहीं, क्यों तो अपनी जान बचाने के लिये इस साँप को मारने का भी आत्मबल मुझ में नहीं रह गया है।

पूरन ने सम्हाली हुई पिस्तौल को उतारकर कहा—चलिये, पेड़ों की ओर से कतराकर निकल जाया जाय। जब धावा ही बोल देगा, तो देखा जायगा।

वे लोग रास्ता छोड़कर आड़ से बढ़े कि साँप फन समेटकर वहीं आराम से लेट गया। शिवनाथ बोला—शरत काल की ओस और चाँदनी साँप को बड़ी प्यारी लगती है। इन दिनों ये इसी तरह पड़े रहते हैं।

इसके उत्तर में पूरन निहायत अप्रासंगिक-सी बात कह उठा! लगता है, इस मौत के-से सन्नाटे में यह बात बड़ी देर से उसके मन में घुमड़ रही थी। उसने कहा—मैं क्या करूँ, मुझे ऐसा ही आदेश था।

शिवनाथ केवल एक दीर्घ निश्वास छोड़कर रह गया। न तो उसने उसका समर्थन किया, न तो प्रतिवाद। पूरन ने कहा—दादा इसे समझ गये थे। भूल के हर्जाने की बात याद है न आपको? और उनके वे दोनों पत्र तो इसके जलोरतुल सबूत हैं। मुझे क्या आदेश मिला था,

मालूम है ? यही कि यदि रुपये और हथियार लौटा दें, तब तो ठीक है, नहीं तो—

इसके आगे उससे बोला नहीं गया। इतनी देर बाद इस सूनसान जंगली रास्ते पर वह बच्चे के समान फफक-फफक कर रो पड़ा। रो तो शिवनाथ भी रहा था, लेकिन उसके रोने में वेग नहीं था। केवल दोनों गालों से होकर आँसू चूते जा रहे थे।

बड़ी देर के बाद शान्त होकर पूरन ने कहा—शिवनाथ बाबू, इसी आश्रम में मैंने विप्लव के मन्त्र की दीक्षा ली थी।

शिवनाथ चुप रहा। वह उस व्यक्ति के बारे में सोच रहा था। महज दो-तीन घण्टों का परिचय, उससे उन्होंने सिर्फ दो ही तो बातें पूछी थीं, किन्तु इसी में वह उसके अन्तरतम में अक्षय होकर रह गये। उफ्, कैसी निर्भीकता थी! उनकी एक-एक बात उसके कानों में गूंज रही थी।

पूरन ने कहा—इस तरह फूट-फूटकर मैं और कभी नहीं रोया शिवनाथ बाबू! इसे मेरी तारीफ कहिये या निन्दा, दलभर में भावुकता सुनते हैं, मुझी में सबसे कम है। यही वजह है कि यह जिम्मेदारी मुझे सौंपी गयी थी। यह सुशील की आज्ञा थी, काशी में विचार-विनिमय के बाद बड़े-बड़े नेताओं ने यह कहला भेजा था।

शिवनाथ के कानों में मानों ये बातें पहुँचीं ही नहीं। वह उन्हीं बातों में उलझता हुआ राह चल रहा था। कोई उत्तर जब नहीं मिला, तब उसका हाथ धरकर पूरन ने पूछा—इससे आपके जी में बड़ी चोट पहुँची है, न?

अब की लम्बा निश्वास छोड़ते हुए शिवनाथ ने कहा—और यह चोट क्या मुझ से ज्यादा आपको नहीं लगी है पूरन बाबू?

शिवनाथ की ओर पिस्तौल बढ़ाकर पूरन ने कहा—इसे आप रख छोड़िये। मेरा मन बहुत ही कठोर है, लेकिन आज मानों भूकम्प में पत्थर के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं।

शिवनाथ ने घबड़ाकर डरा-डरा-सा उसके हाथ से पिस्तौल लेकर अपनी जेब में रख ली। बोला—भूल भूल ही है पूरन बाबू!

पूरन ने हँसकर कहा था—दादा की बातें याद हैं, क्या कहा था उन्होंने? भूल का हर्जाना चुकाना पड़ता है। थोड़ी देर चुप रहकर बोला—अपनी इस भूल का हर्जाना मैं उसी समय चुकाता शिवनाथ बाबू, किन्तु हमारा मिशन पाप-पुण्य के परे है, एब एवरीथिंग, मुझे उसी के लिए जिन्दा रहना है।

पश्चिम क्षितिज पर पीछे की ओर चाँद अस्ताचल के करीब पहुँच रहा था। शिवनाथ की नजर सामने के आकाश पर पड़ी—पूरब आसमान में कुछ ही ऊँचे शुक्र दमक रहा था। उसने घबड़ाकर कहा रात तो खत्म हो चली पूरन बाबू और राह तो अभी बहुत बाकी है।

देखिये तो, क्या बजे।

घड़ी तो नहीं है।

क्या हो गयी आपकी—? ओ, हाँ-हाँ, मालूम है। सुशील ने कहा था मुझसे। लेकिन; चाँद तो अभी डूबा नहीं है।

हँसकर शिवनाथ ने कहा—यह तो अँधेरे पक्ष का चाँद है। यह डूबेगा नहीं, सूरज की रोशनी में ढँक जायगा। गाड़ी नौ बजे है। जरा तेज कदम से चला जाय।

मगर पाँव जैसे बढ़ना नहीं चाह रहे थे। इतनी-इतनी दूर चलने से मानों थककर चूर हो गये हों। ललाट के दोनों बगल की नसें जोर-जोर से थिरक रही थीं। अचानक पगडण्डी के किनारे पेड़ की आड़ से कोई कह उठा—कौन है रे? कौन हो तुम लोग?

चौंककर अपनी पैनी नजरों से उन्होंने देखा कि पेड़ के तने-सा ही काला-कलूटा एक आदमी अँधेरे में मिल-सा गया है।

पूरन ने पूछा—और तुम कौन हो?

वह बोला—मैं माँझी हूँ, संथाल ।

शिवनाथ ने कहा—थोड़ा पानी पिला सकते हो माँझी ?

माँझी जैसे कृतार्थ हो गया—अरे पानी काहे खायगा बाबू, गरम-गरम दूध दुहे देता हूँ, खाओ ।

पूरन ने कहा—थोड़ा गरम पानी भी चाहिये । पाँव धोना है ।

तुम चलो भी तो बाबा, गरम पानी भी देंगा । कहाँ जांगा तुमलोग ।

रेल का स्टेशन कितनी दूर है, बता सकते हो तुम ?

कितना दूर होगा बाबा, जोर-से-जोर एक कोस, दू कोस, तीन कोस । एहे, तुमका चेहरा कैसा हो गिया बाबू, एकदम से काला भूसा । हाय हाय !

पूरब क्षितिज पर प्रकाश की रंगसाजी शुरू हो गयी थी । धुमैला प्रकाश धीरे-धीरे लाली लिये पल-पल उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता जा रहा था । शिवनाथ पूरन के चेहरे की ओर देखकर सिहर उठा—ओह, किसने इस तरह उसके चेहरे पर कालिख पोत दी !

पूरन ने खुद ही कहा—दादा का कहना याद हो गया शिवनाथ बाबू । ब्राह्मणधर्म को जन्म देनेवाली आर्यसभ्यता की गौरवमयी भारतभूमि पर शूद्र, शूद्र ही शूद्र, अनार्य ही अनार्य भरे पड़े हैं । ये लोग वही शूद्र, वही अनार्य हैं ।

हवड़ा में उतरने से पहले ही पूरन ने कहा—न हो, तो आप सुशील के यहाँ चले जायँ । वहीं खा-पीकर आराम करके तब मेस जाइयेगा । ऐसी सूरत लिये जायँगे, तो लोग शक-शुबहा करेंगे । मैं तो श्रीरामपुर ही उतर पड़ूँगा—कल कलकत्ता पहुँचूँगा ।

अपनी जेब के अन्दर ही पूरन ने पिस्तौल को कागज में मोड़ा और शिवनाथ को देते हुए कहा—इसे आप ले जाइये । और एक बात—। कहकर वह चुप हो गया ।

कुछ क्षण चुप रहकर पूरन ने कहा—कहिये ।

और उन चीजों को, जो मेरे पास थीं···

हाँ-हाँ···

वे उस डोम-युवती के पास रखी हैं। जब भी जायँगे और कहेंगे कि गौरी ने भेजा है, मिल जायँगी। गौरी का नाम न भूल जायँ।

अरे भैया, इतना याद भी कौन रखे। न हो तो आप ही ले आयेंगे।

मैं तो घर चला जाऊँगा पूरन बाबू।

ताज्जुब से पूरन ने पूछा—घर चले जायँगे ?

हाँ। मेरा मन बड़ा डाँवाडोल हो गया है।

पूरन ने दीर्घ निश्वास फेंकते हुए कहा--तब तो मेरे लिये खुदकशी के सिवाय कोई चारा नहीं रह जायगा। शिवनाथ बाबू, इतने भावुक न बन बैठिये। फिर त्योरियाँ सिकोड़कर उसने कहा--क्या आप हमलोगों का साथ छोड़ देने की सोच रहे हैं ?

खिड़की से उदास आँखों से बाहर की ओर देखते हुए शिवनाथ ने कहा--सो मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। लेकिन ; घर मैं दूसरे कारण जाना चाहता हूँ, बार-बार माँ की याद आ रही है। उनके लिये जाने क्यों तो मेरा मन बड़ा अकुला उठा है। आप तो सो गये थे, मैं सो नहीं सका। चक्कों की आवाज में मुझे माँ की पुकार सुनायी पड़ रही थी। लगा, गाड़ी के साथ-साथ जैसे माँ दौड़ती चल रही हैं। मैं आज ही घर चला जाऊँगा।

गाड़ी किसी स्टेशन पर आ लगी। चौंककर पूरन बोला—अरे श्रीरामपुर आ गया। मैं तो चला। लेकिन ; आज आप घर मत जाइये। इस शाम सुशील के यहाँ खा-पीकर तब शाम को न हो तो मेस ही में चले जाइये।

हवड़ा का पुल पार करके कुछ ही दूर पर चाय की एक दूकान मिली

गयी। शिवनाथ उसी दूकान में घुस पड़ा। अन्दर जाते ही उसे जैसे काठ मार गया हो। दीवाल पर के आईने में क्या यह उसी का चेहरा दिखायी दे रहा है! धूल से भूरे-भूरे रूखे बाल, लाल-लाल आँखें, आँखों के किनारे-किनारे स्याह डोरे, संथाल परगने की लाल धूल से रँगे-रँगे कपड़े, मुँह सूखकर जैसे और भी लंबा हो गया हो। ऐसी सूरत बनाये मेस जाना तो बिल्कुल गलत है। बेहतर है कि सुशील ही के यहाँ चला जाय। उसकी आठ साल की नन्ही प्रेयसी दीपा सेवा-जतन में धूमधाम से लग जायगी। उसीके साथ एक की और याद आ गयी—गौरी, नान्ती। अगर उसीके यहाँ जाया जाय! तरह-तरहँ की कल्पनाओं ने उसके सूखे मन को अनोखे आनन्द से सींच दिया। लेकिन नहीं, वहाँ जाना ठीक न होगा। सुशील के घर जाना ही ठीक है।

इसी दुविधा में वह दूकान से उतरकर चल पड़ा। चलते-चलते उसने देखा, वह शिमला स्ट्रीट के एक द्वार पर पहुँच गया है। वह जरा चौंका-अरे, यह तो रामकिङ्कर बाबू का डेरा है! लज्जा और दुविधा से उसका कलेजा जैसे आलोड़ित हो उठा। वह अपने से लड़कर बलपूर्वक ही जैसे अन्दर चला गया और आवाज दी—कमलेश!

घर के सभी दरवाजे बन्द पड़े थे, कोई कहीं नजर नहीं आ रहा था। उसने समझा, मर्द लोग तो काम-काज से बाहर निकल गये होंगे, कमलेश भी अपने कॉलेज चला गया होगा। फिर भी उसने पुकारा—कमलेश!

अब की एक घर का दरवाजा खोलते-खोलते किसीने व्यग्रता से कहा—कौन, शिवनाथ!

उस आवाज से शिवनाथ चौंक उठा—यह कौन, किसी की आवाज आयी! कि इतने में उसके मास्टर साहब बाहर निकल आये—वही रामरतन बाबू। वह अचरज के मारे बुत बना उनकी ओर ताकता रह गया।

उसके ऐसे रूप को देखकर रामरतन बाबू नेक भी विस्मित नहीं हुए। रूखे बालों पर स्नेह से हाथ फेरते हुए बोले—बहुत थक गया है तू तो!

मैंने थोड़ा-बहुत सुन रखा है, उस डोम-युवती ने सबकुछ बताया है मुझको। मैं कल से ही आकर तुम्हारे इन्तजार में बैठा हूँ। मेस ही में खबर पाकर तुम इस तरह उलटे पाँवों दौड़े आए हो, न!

उसी तरह अवाक होकर शिवू उन्हें देखता रहा। मास्टर साहब बोल उठे—इडियट् हैं सब। अरे बाबा, जरा आराम कर लेता, तब कहते सो नहीं, थका-माँदा आया कि खबर दे दी। मैं तो यह भी वहाँ कह आया था कि शाम को फिर आऊँगा।

इतने में ऊपर की खिड़की में खुरखार सुनाई पड़ी। शिवनाथ ने देखा एक लड़की है। पहचान भी गया, गौरी की ही ममेरी बहन है।

रामरतन बोले—मुझे फूफी ने भेजा है, तुम्हें और गौरी को लिवाने। माँ बहुत बीमार हैं।

माँ बीमार हैं! शिवनाथ के अन्दर जैसे किसी ने हथौड़ा पीट दिया! लहमे में उसे उस दिन की कल्पनावाली क्षीण दीपशिखा-सी माँ की जो रोगक्लिष्ट तस्वीर याद आ गयी, आज चक्कों की आवाज के साथ माँ की जो पुकार उसे सुनायी पड़ी, वह स्मरण हो आयी और माँ का वह मुख सामने भूल गया, जो उसने गाड़ी के साथ-साथ उन्हें दौड़ते हुए देखा था।

बीमार ही तो हैं—तू ऐसा घबरा क्यों रहा है! बी स्ट्रॉंग माइ बॉय, बी स्ट्रॉंग। कमजोरी मर्द का लक्षण नहीं।

शिवनाथ ने पूछा—और इन लोगों ने क्या कहा! कहते-कहते उसकी आँखें फिर खिड़की पर पहुँच गयीं। अब उस लड़की के पास एक दूसरी भी लड़की खड़ी थी—गौरी।

मास्टर साहब बोले—बहू तो सुनता हूँ, बीमार हैं। उनका जाना कैसे हो सकता है !

शिवू उसी दम मुड़कर चलने को हुआ। बोला—तब यहाँ ठहरकर भी क्या होगा सर ! चलिये, सब कुछ सहेज लेना है। बहुत-बहुत काम है।

तेईस

शिवनाथ के इन्तजार में ही ज्योतिर्मयी ने अपने प्राण जैसे रोक रखे थे। कॉलिक की असह्य पीड़ा दबाने के लिये उन्हें मार्फिया की सूई दी जाती थी—उसी के प्रभाव से वह अवश-सी पड़ी थीं। बीच-बीच में अपनी थकी हुई पलकें कुछ पसार कर चारों ओर देखती हुई पूछ बैठती थीं—शिवू नहीं आया ?

बिस्तर के पास शैलजा पत्थर की मूरत-सी बैठी थीं। आज इतने दिनों के बाद उन्हें यह महसूस हुआ कि भाभी को वह कितना प्यार करती थीं। उन्हें ऐसा लग रहा था कि इस घर और घर क्यों, सारे संसार पर उनके हक का जो असली दस्तावेज था, वह आज नष्ट होने को है। रोग में सेवा-जतन उनसे कभी भी करते नहीं बना, लेकिन विपत्तियों की आँधी में गिरस्ती की नाव की पतवार सख्त मुट्ठी से पकड़े वह धीरज धरे रह सकती हैं; किन्तु आज तो मानों उनकी वह शक्ति भी एकबारगी जाती रही है। ज्योतिर्मयी की सेवा में रसोईदारिन रतन और नित्तो लगी थीं। इलाज में कहीं त्रुटि नहीं हुई, उन्हें इसका अफसोस नहीं है। शहर से अंग्रेजी डॉक्टर भी बुलाये गये। उन्होंने कहा है—बीमार में इतनी शक्ति नहीं कि इतनी इतनी मार्फिया की सूई सह सके।

ज्योतिर्मयी ने जो पूछा, उसका उत्तर देने में शैलजा का मन असह्य उद्वेग से पीड़ित हो उठा। दो दिन हो गये, रामरतन बाबू शिवू को लिवाने

गये हैं, क्या बात है कि आज तक भी नहीं लौटे ? शिवू ऐसी किस कठिनाई में घिरा है कि माँ की बीमारी का हाल सुनकर भी नहीं आ सका है। साथ-साथ मनके छायापट पर एक रूपवती किशोरी की मूरत विंबित हो गयी, मानों वही गले लगने के भाव से खड़ी-खड़ी शिवू की राह रोक रही है। इतनी देर के बाद अब बुत में प्राणों का स्पन्दन आया ! दम घोंटनेवाले स्वप्न से असह्य पीड़ा और कष्ट में जैसे कोई जग जाता हो, ठीक उसी तरह शैलजा एक दीर्घ निःश्वास के साथ उठ खड़ी हुई। फिर से तार देना होगा, कम-से-कम रामरतन तो लौट आये ! मुश्किल से धीरज और संयम रखते हुए वह स्वाभाविक ढंग से नीचे उतरीं। पुकारा--सतीश !

नीचे सूनसान-सा पड़ा था—कोई कहीं नहीं। यहाँ तक कि दो सौ उन्नीस नम्बर तौजी का विहारी बाग्दी, जिसे खास तौर से इस मुसीबत में घर की रखवाली के लिये बुलाया गया था, वह भी गायब। उनकी ऐसी इच्छा होने लगी कि ऐसा चीखें, ऐसा चीखें कि ईंट-पत्थर की दीवारें भी चूर-चूर हो जायँ। किन्तु ; इतने ही में सदर फाटक पर कई जूतों की आवाज साथ ही सुनाई पड़ी। भिन्न-भिन्न आदमी के पैरों की आहट होते हुए भी उनके अन्तर की शब्दानुभूति एकाग्र हो उठी। कौन ! कौन है ? किसके पैरों की आहट आ रही है ! तब तक उनके सभी सन्देहों का अन्त करते हुए शिवू ने आंगन में पाँव रखा। उसके पीछे-पीछे रामरतन बाबू, सब के पीछे राखाल सिंह।

दुबला हो जाने के कारण वह कुछ लम्बा दिख रहा था। रूखे-लम्बे बाल, सफेद चमकनेवाली आँखों में पैनी दृष्टि, मानों भावी की सारी कठोरताओं का सामना करने के लिये तैयार होकर ही आ रहा है। मनुष्य की भी प्रकृति अजीब होती है। अबतक शैलजा का जो हृदय वज्र-सा कठोर था, वह बरसना चाहने लगा। उनके दोनों होंठ काँपने लगे, बड़ी मुश्किल से अपने को रोकती हुई बोलीं—अब आ पाया बेटा ?

शिवू ने स्थिर नजरों से उनकी ओर देखकर शांत, किंतु करुणाभरे स्वर में पूछा--और माँ ?

आँसू की बूँदें रोके नहीं रुकीं और फूफी की आँखों से दो-चार टपक ही पड़ीं। अपनी आँखें पोंछ, एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उन्होंने कहा--तेरी माँ ऊपर हैं, चल।

इसी समय बिहारी, रंगीन साड़ी के सिले ढँकने से ढँके शिवू के बक्स को लेकर, अंदर आया। रामरतन बाबू ने कहा--दो दिन हो गये, शिवू ने कुछ खाया-पिया नहीं है। पहले इसे एक ग्लास् शरबत दीजिये।

फूफी ने इसपर हाँ-हूँ कुछ नहीं कहा! बक्स पर रंगीन ढँकने को देख प्रश्नभरी आँखों से मास्टर साहब की ओर देखती हुई बोलीं—बहूरानी कहाँ हैं मास्टर ?

मास्टर साहब बोले--सुना कि उनकी तबीयत बहुत जोरों से खराब है, वह न आ सकीं।

शिवू ने कहा—यह तो उनका महज बहाना है फूफी, असल में उन्होंने बहू को भेजा नहीं।

नहीं भेजा ?

नहीं।

मारे क्रोध के फूफी का चेहरा खौफनाक हो उठा। किन्तु; उसे जाहिर करने का उन्हें मौका नहीं मिला। ऊपर के बरामदे से उझककर नित्तो ने कहा—भैयाजी को माँ बुला रही हैं।

शिवू और नहीं रुक सका। जल्दी-जल्दी ऊपर चला गया। शैलजा भी उसके पीछे लग ही गयीं। भाभी के सिरहाने बैठकर बोलीं—बहू, तुम्हारा शिवू आ गया।

ज्योतिर्मयी अधमुँदी आँखों, अलसायी हुई-सी शिवू के मुख की ओर निहार रही थीं। शिवू हलके-हलके उनके कपाल पर हाथ फेर रहा था।

ज्योतिर्मयी ने शैलजा को कोई उत्तर नहीं दिया। थकी-सी आवाज में शिवू से बोलीं—कोई अन्याय तो नहीं किया है बेटा ?

अपलक आँखों माँ को देखते हुए उसने कहा—नहीं माँ।

बड़े कष्ट से ज्योतिर्मयी ने अपना हाथ शिवू की गोद में रखा और अपनी आँखें बन्द कर लीं।

शैलजा ने पुकारा—बहू ?

ज्योतिर्मयी ने आँखें न खोलकर भँवों के इशारे से कहा—ऊँ।

शैलजा बोलीं—अपने शिवू को बताओ कि क्या कष्ट है तुम्हें।

धीरे-धीरे अपना सिर हिलाकर बोलीं—नहीं।

शिवनाथ ने पूछा—मुझे बताओ माँ, कैसा लग रहा है ?

उनके होंठों पर एक फीकी हँसी निखर आयी। बड़ी ही धीमी आवाज में रुक-रुककर उन्होंने कहा—मैं जा रही हूँ—लगता है मैं बड़ी दूर चली जा रही हूँ। लगता है, तुम लोग बड़ी दूर से बोल रहे हो। सबकुछ अस्पष्ट होता जा रहा है।

कहते-कहते उनके कपाल पर पसीने की बूँदें झलक पड़ीं। शिवू ने जतन से उन्हें पोंछा और पंखा झलने लगा।

शाम होते-होते स्नेह चुके हुए दीये की लौ-सी ज्योतिर्मयी धीरे-धीरे मृत्यु में विलीन हो गयीं।

दाह-संस्कार के बाद शिवू अजीब-सा मन लिये घर लौटा। अपनी आँखों के आगे उसने दो-दो मनुष्यों की आकस्मिक मृत्यु देखी। उसका मन सारी सृष्टि की नश्वरता को गम्भीरता से अनुभव करना चाह रहा था, किन्तु उस अनुभव में खेद नहीं था, आक्षेप से उत्पन्न हुआ वैराग्य नहीं था, मृत्यु से भय नहीं था। जिन दो व्यक्तियों पर मृत्यु ने छापा मारा, उन दोनों ही ने हँसते हुए मौत को गले लगाकर उसके हमले की भयंकरता को नष्ट-सा कर दिया। अपने बरामदे में एक कम्बल पर बैठे-बैठे शिवू यही सोच रहा

था। रात खत्म हो चली थी। दूध-सी धुली चाँदनी में सारा मानव-समाज सोया पड़ा था, किन्तु मिट्टी की शिरा-शिरा से उठती हुई कोटि-कोटि कीट-पतङ्गों की सम्मिलित ध्वनि ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानों धरती के अन्तर का संगीत हो। उसी में शिवनाथ ने समूची सृष्टि के जीवन की धड़कन का अनुभव किया, खिली चाँदनी में नहायी-सी जो सीमित प्रकृति उसकी आँखों के आगे थी, वह बड़ी व्यापक और विस्तृत होकर उसके मन में अंकित हो गयी, उसीमें उसने समग्र पृथ्वी के स्वरूप के दर्शन किये। जन्म-मृत्यु के सागर-मन्थन से निकली हुई पृथ्वी युग-युग से ऐसी ही मनोहारी मूर्ति ग्रहण कर खड़ी है। आज की धरती का यह रूप कैसा अनोखा है! मेरी माँ इस चाँदनी से धुली हुई रात जैसी ही प्रशान्त थीं, जिनमें दिन के कोला-हल का पागलपन नहीं था—वह इस निशीथ जैसी अविराम मर्मसंगीतमयी थीं। उसे याद आ गया—शुभ्र ज्योत्स्ना-पुलकित यामिनीम्, फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्; सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्, सुखदां वरदां मातरम्।

इन पंक्तियों को मन ही मन दुहराते हुए यकायक उसे ऐसा लगा कि उसकी माँ की जीवन-धारा में शरत काल के आकाश में दिखायी देनेवाले छायापथ के समान साधना का एक स्रोत रहा है। महज कुछ घण्टे के परिचयवाले उस आदमी की भी याद आ गयी, जिसने पाई-पाई करके भूल का हर्जाना चुका दिया।

शिवू!—लाश के साथ मसान तक गये हुए लोगों को विदा कर फूफी आ गयीं।

शिवनाथ ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ मुँह उठाकर कहा—फूफी!

हाँ। रात बीत चली बेटा, सो जा।

सोता हूँ।—कहकर उसने थकी-अलसायी देह को कम्बल पर फैला दिया। बोला—दुःख की रातें अक्सर लम्बी ही हुआ करती हैं फूफी!

उसके माथे को स्नेह से सहलाते हुए फूफी ने कहा—दुःख की रात

काटे नहीं कटती बेटा, घड़ी युग हो जाती है। लेकिन; धीरज तो धरना ही होगा। विपत्ति के बाद भी करने को कर्त्तव्य रह ही जाता है, जिसे किये बिना कोई चारा नहीं।

शिवनाथ ने फिर एक दीर्घ निश्वास फेंका और आँखें बन्द कीं। नीरव निशीथ की ओर देखती हुई शैलजा रो-रोकर अकुलाने लगीं। उसके सुख-दुख में हाथ बँटानेवाली, बिल्कुल सगी बहन जैसी, सखी की तरह मधुर बोलनेवाली उसकी बहू, ज्योतिर्मयी नहीं रही—पता नहीं कहाँ, किस अलक्षित लोक में खो गयी।

दूसरे दिन, इस शोक-संतप्त परिवार में किसी तरह शक्ति बटोर अपने सहज स्वाभाविक रूप में सब से पहले शैलजा ही जगीं। प्रत्येक कमरे के दरवाजे दरवाजे जा, पानी के छींटे मार-मारकर उन्होंने नित्तो, रतन और मानदा महरी को जगाया। कहा—और मत सो बेटी, जग जा। दुनियाभर का काम पड़ा है, उठ।

रतन ने ठंडी आह भरकर कहा—उठना तो पड़ेगा ही मौसी। खाना भी पड़ेगा, पहनना भी पड़ेगा। बन्द कौन-सा काम रहेगा, कहो।

शैलजा बोलीं—बेटी, इस धरती की ओर देख, शोक-दुख मनाने से उसका तो काम नहीं चल सकता। चाहे भूकम्प आये, चाहे अंधड़-पानी से छाती टूटकर बह जाय—मगर दिन-रात का यही क्रम होगा और सृष्टि को इसी प्रकार सब कुछ को छाती से चिपकाये रखना पड़ेगा। नित्तो आँख-मुँह धो ले, मेरे साथ जरा कचहरी तक चलना है।

सारी कचहरी भी जैसे शोक से उदास और स्तब्ध पड़ी थी। बरामदे की चौकी पर गाल पर हाथ रखे राखाल सिंह सूनी आँखों धरती देख रहे थे, नीचे दीवार से पीठ सटाये किसन आसमान की ओर देख रहा था और सतीश दोनों हाथों से सिर थामें उकडूं होकर बैठा था। एक केवल रामरतन बाबू बरामदे में पायचारी करते हुए 'मोहमुद्गर' की आवृत्ति कर रहे थे।

इनके सिवा और किसी में किसी तरह की चञ्चलता नहीं दिखायी पड़ती थी।

इसी समय शैलजा ने आकर कहा—सिंह जी, इस तरह बैठे रहने से तो काम नहीं चल सकता! जो होना था, सो तो हो चुका। अब श्राद्धादि का प्रबन्ध तो करना पड़ेगा। कुल दस दिन का समय, उसमें भी एक दिन तो निकल ही गया।

राखाल सिंह जैसे कुछ शर्मिंदा हो गये। ठीक ही तो, इस कर्त्तव्य के लिये सबसे पहले उन्हीं को सचेष्ट होना चाहिये था। उन्होंने किसन से कहा—देख, सबसे पहले लकड़ियाँ फड़वा लेनी हैं। इमली या कैथ के दो पेड़ कटवा डालो।

एक लम्बा निश्वास छोड़कर वह बोल उठा—पेड़ कहाँ का कटवा दूँ?

कह। आस-पास ही होना चाहिये, नहीं तो कादो-पानी के इस दिन में दुर से लाना भी मुसीबत होगा।

रामरतन बाबू पायचारी छोड़कर चौकी पर आ बैठे। इस कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व में अपनी इच्छा से हाथ बँटाने का भाव दिखाते हुए बोले—पेड़ कहाँ कटाना है, मछली कहाँ से आये, चावल का इन्तजाम कहाँ किया जाय, ये काम किसन के जिम्मे रहे। यह सब उसी पर छोड़ दीजिये। अंग्रेजी में इसे डिविजन ऑव लेबर कहते हैं। कोई भी बड़ा काम बगैर ऐसा किये नहीं हो सकता। आप सबसे पहले कामों की एक सूची बना डालिये—दि फर्स्ट ऐंड दि मोस्ट इम्पॉर्टेंट थिंग।

राखाल सिंह दूरदेश आदमी हैं। उन्होंने कहा—ऐसे में गाँव के बड़े-बूढ़ों को बुलाकर फिहरिश्त के लिये उनकी भी राय ले लेनी जरूरी है। यों वे लोग खुद भी आते ही होंगे।

रामरतन बाबू बोले—येस। यह उनकी भी सामाजिक जिम्मेवारी है।

राखाल सिंह ने कहा—बाबू के ममिया ससुर को भी खबर देनी होगी—उनकी क्या राय होती है, क्यों मास्टर साहब?

शैलजा ने कहा—क्यों नहीं, खबर तो देनी ही पड़ेगी, राय-सलाह भी लेनी होगी। किंतु ; सबसे पहले बहूरानी को भेज देने के लिये उन्हें तार दे देना है। मास्टर, एक तार तो लिख दो।

राखाल सिंह बोले—न हो तो उनके मैनेजर को बुलाकर उनसे भी एक पत्र लिखाया जाय।

शैलजा ने कहा—इस हद तक तो मैं नीचे नहीं जा सकती नायब जी। बहू हमारी है, उसे लिवाने के लिये बहू के मामा के कर्मचारी की सिफारिश नहीं करा सकती मैं।

इसी बीच कचहरी के फाटक से कई भले आदमी अंदर आये। शैलजा ने माथे का घूँघट थोड़ा सरका लिया। बोलीं—कुछ भले लोग आ रहे हैं। अब मैं अंदर जाती हूँ, शिबू को भेज दूँगी। लेकिन ; मास्टर, तार अभी ही लगा देना।

फूफी जल्दी-जल्दी अंदर चली गयीं। नायब जी ने कहा—सतीश, गुड़गुड़ी का पानी बदल दे और दफ्तर का कमरा खोल दे।

सतीश ने कमरे को खोला, फिर सारी खिड़कियाँ खोलीं। नायब जी बरामदे से नीचे उतर आये और अतिथियों का हाथ जोड़कर स्वागत करने लगे।

अन्दर जाकर शैलजा ने देखा, इस परिवार के संन्यासी मित्र—शिबू के गोसाईं बाबा, शिबू के पास बैठे हैं। उन्हें देखकर शैलजा आह भर कर बोलीं—बहू नहीं रही भैया, रोककर उन्हें नहीं रख सकी।

संन्यासी अपलक आँखों सामने की ओर देखते रहे। इस परिवार से उनका कोई साधारण परिचय नहीं, गंभीर और हार्दिक अपनत्व है। उसी आंतरिकता से उन्होंने अपने जीवन की सारी ममता को यहाँ उँड़ेल दिया था। आँखें फोड़कर जैसे आँसू निकल पड़ना चाह रहा था, इसीसे आँखों को स्थिरकर, उसके उत्ताप में उसे सुखाने की वह चेष्टा कर रहे थे।

शिवनाथ ने उनसे पूछा—आप कह सकते हैं गोसाईं बाबा, यह मौत क्या है ?

संन्यासी फीकी हँसी हँसकर बोले—मैं नहीं कह सकता बेटा। अगर यही जानता होता, तो एक बार संसार त्यागकर फिर उसी माया-मोह के जाल में क्यों लिपटता ?

शैलजा कल से ही शिवू की ऐसी तीव्र अनुभूति को देखकर शंकालु हो उठी हैं। लगता है, उसके मन को वह छू नहीं पा रही हैं। उन्होंने इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देने की नीयत् से कहा—ऐसी-ऐसी बातें दिमाग में नहीं लाते बेटा ! जन्म और मरण, दोनों ईश्वर की लीला हैं। यह सदा से है, इसी से यह दुनिया चलती है, इसका भी कोई जवाब है भला !

शिवनाथ के चेहरे पर, अचरज से मुग्ध हो जाने की एक दुबली मुस्कान दौड़ गयी। उसने कहा—बुद्धदेव ने इसे 'निर्वाण' कहा है, विज्ञान कहता है कि शारीरिक यन्त्रों का नष्ट हो जाना ही मृत्यु है और आम लोग इसे जन्मान्तर कहते हैं।

यासी जी भी शिवू की बातों से परेशान-जैसे हो उठे। बोले—अरे बेटा, इन बातों को छोड़ दे, ईश्वर को भजते हुए अपना कर्त्तव्य किये जा। मरण से डरना भी क्या !

शैलजा ने कहा—संन्यासी दादा, इन बातों को छोड़िये, शिवू को लेकर आप बैठके में जाइये। खोज-पुछार के लिये लोग आ रहे हैं। उसे कहना-सुनना है, पाँच भाइयों की राह-सलाह लेकर ही तो काम-काज करना होगा।

संन्यासी ने पूछा—लोग-बाग आये हैं ? अरे रे, जल्द चल बेटा, भला क्या सोच रहे होंगे लोग ?

शिवू उठ बैठा। उसके जी में आया, यह समाज में बसने का महसूल है, यह महसूल देना ही पड़ता है, बिना दिये खैर नहीं।

बैठके में तब तक और भी लोग आ जुटे थे। गुड़गुड़ी की चिलम चढ़ा दी गयी थी, हुक्का भी भर दिया गया था। राखाल सिंह एक तरफ अदब से खड़े थे, दूसरी तरफ बैठकर मास्टर साहब लोगों की गप-शप सुन रहे थे।

शिवनाथ का अभिभावक कौन हो, इसी पर बात चल रही थी। कृष्णदास बाबू के गुजर जाने के बाद, नाबालिग शिवनाथ की अभिभाविका तो जायज तरीके पर उसकी माँ रहीं। उसके बालिग होने में अभी भी तीन साल की देर थी।

माणिक बाबू शिवनाथ के पिता के मित्र रहे हैं—गाँव के प्रतिष्ठित आदमी और जमींदार भी हैं। उन्होंने कहा—अब तो शिवनाथ की फूफी ही उसकी अभिभाविका होंगी। मगर जहाँ तक मैं समझता हूँ, अदालत के मार्फत वह अभिभाविका नहीं बनें, तो अच्छा हो।

किसी दूसरे ने कहा—हों भी तो क्या हर्ज है? मेरी राय में तो उन्हें होना ही चाहिये।

माणिक बाबू बोले—अर्थ अनर्थम् भावय नित्यम्। यह संपत्ति समझ लो कि विष है, अमृत की भी मिट्टी पलीद किये देती है। मान लो, आगे चलकर कहीं अनबन हो जाय, तो इस जिम्मेवारी के चलते ही उन्हें मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा।

रामरतन बाबू ने बार-बार नकारते हुए कहा—नहीं, हर्गिज नहीं। शिवनाथ को ऐसी दुर्मति कभी हो ही नहीं सकती। अपनी फूफी की किसी बात में वह नहीं नहीं कर सकता!

माणिक बाबू हँसकर बोले—आप तो मास्टर साहब शिक्षक हैं—दुनियादारी की जानकारी आप को वैसी नहीं। हाँ, ऐसे भी मास्टर हैं,

जो वाणिज्य-व्यापार करते हैं, माली मुकदमे में भी पैठ रखते हैं, मगर आप वैसों में नहीं हैं। इसीलिये खोलकर कहना पड़ता है। शिवनाथ फूफी को बहुत मानता है, उनपर श्रद्धा रखता है, यह बात मैं मान लेता हूँ। लेकिन ; शिवनाथ की स्त्री से उनकी न पटी तो ? शिवनाथ इन दो कूलों में तब किसको छोड़ेगा, फूफी को या अपनी स्त्री को ?

सब कोई दङ्ग रह गये। इतनी दूर दृष्टि से किसी ने आगे की बात नहीं सोची थी ! और ; इस तरह उघारकर कह देने से लोग कुछ शर्मिन्दा भी हुए। बात के सत्य होने के बावजूद उसमें शर्म का लेश था। सो लोग अवाक-से थे। इसी समय शिवनाथ वहाँ पहुँचा।

माणिक बाबू ने स्नेहपूर्वक कहा—आओ बेटा, आओ। हम सब लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा में बैठे थे।

कुछ आगा-पीछा करके शिवनाथ बोला—अभी तो प्रणाम नहीं कर पाऊँगा ?

नहीं-नहीं। छूत में प्रणाम करना मना है। बैठ जाओ—पास ही कंबल डाल लो।

तब तक किसी ने उसी प्रसंग को फिर उठाया—ऐसी हालत में यह भार शिवनाथ के ससुर को दिया जाय। गाँव के लोगों में श्रेष्ठ हैं, संपत्ति भी बहुत बड़ी है। उन्हीं की जायदाद के साथ इस इस्टेट का भी इन्तजाम हो जायगा।

माणिक बाबू ने कहा—यह एक बात हुई। जहाज के पीछे बोट की तरह इस्टेट चलता भी जायगा। लेकिन ; यह मुझे अच्छा नहीं लगता कि कृष्णदास भैया का लड़का घरजमाई न होकर भी ससुर का मुँह जोहे।

शिवनाथ को बात कुछ समझ में न आयी। लेकिन ; उनकी बात के अन्त में जो एक तीखा खोंच था, वह उसे चुभा। उसने पूछा—इसका मतलब मेरी समझ में नहीं आया चचाजी !

माणिक बाबू बोले—तुम्हारा अभिभावक कौन हो, इसी पर बातें चल रही हैं। तुम्हारी माँ तो रहीं नहीं, अदालत से मंजूर अभिभावक कौन होगा? मेरी राय में तुम्हारी फूफी का होना ठीक नहीं होगा। ये लोग तुम्हारे ससुर की बाबत कह रहे हैं। मुझे तो यह भी नहीं जँचता।

शिवनाथ बोला—यह तो बाद में भी तै हो लेगा। अभी आपलोग इसका प्रबन्ध कर दें कि मेरी माँ के श्राद्धादि कार्य ठीक-ठीक हो जायँ।

एक अनावश्यक और कटु चर्चा से फुर्सत पाकर लोगों के जैसे जी में जी आया। सब ने शिवनाथ की बात पर हुँकारी भरी। ठीक ही तो कह रहा है, यह तो बहुत बाद की बात है। अभी सिर पर जो भार आ पड़ा है, उसी से निबटने का इन्तजाम किया जाय।

माणिक बाबू ने कहा—हर्ज क्या, वही किया जाय। पहले यह तो मालूम हो जाय कि कितनी रकम खर्चा करने का इरादा है, उसी हिसाब से हम लोग सब कुछ बतायेंगे। क्यों राखाल सिंह, कितना खर्चा किया जा सकता है, जमींदारी क्या बोझ उठा सकेगी—यह तो तुम्हीं ठीक-ठीक बता सकोगे, बताओ।

माणिक बाबू की बात का उत्तर देना सहज नहीं था। कहने से इस्टेट का सारा भेद ही बताना पड़ेगा। सो वे कुछ मुश्किल में पड़ गये। ठीक इसी समय सतीश ने आकर कहा—नायबजी, आपको फूफी जी याद कर रही हैं. यहीं पासवाले कमरे में।

नायबजी झटपट वहाँ से बाहर निकल पड़े।

सतीश ने गुड़गुड़ी की चिलम बदल दी। दूसरी ओर से हुक्का हाथ में लिये हुए एक सज्जन बोल उठे—अरे भैया, जरा इसे भी बदल दो, केवल फरसी पर ही नजर मत रखो।

सतीश ने जल्दी-जल्दी कहा—जी, हुक्के की चिलम भी जगायी है, अभी-अभी लाया।

हुक्केवाले सज्जन बोले—भई, चिलम तो दो तरह की दिखायी दे रही है—तम्बाकू भी तो दोनों की दो नहीं है न ? और अपने मजाक से वह हा-हा करके हँस पड़े।

यकायक शिवनाथ बोला—अच्छा चचाजी, किसी वकील को अभिभावक बनाकर मैं स्वयं तो देख-भाल कर सकता हूँ ?

शिवनाथ को अपनी तेज निगाह से देखते हुए कुछ क्षण तक माणिक बाबू चुप रह गये। ऐसी जटिल समस्या का ऐसा सहज समाधान शिवनाथ ढूँढ़ निकालेगा, ख्वाब में भी उन्हें यह आशा न थी। वे उसके बाद ही तनिक हँसकर बोले—हाँ, यह सूझ अच्छी है। मगर यह खर्चीला होगा। वकील फीस लेगा।

शिवनाथ ने कहा—सो फीस ले। यही होगा—मेरा यही निश्चय रहा। खैर, आपलोग अब एक फिहरिस्त तो बना दें।

राखाल सिंह तभी आ गये थे, जब शिवनाथ कह रहा था। माणिक बाबू ने कहा—तुम्हारे नायब से वही तो मैंने पूछा कि कितना क्या खर्च किया जायगा। यह पता चल जाय, तो उसी के मुताबिक ठीक कर दिया जाय।

अब की राखाल सिंह जवाब ले आये थे। बात फूफी की ओर से ही कही गयी कि यह तो एक उत्तरदायित्व है, जैसे भी हो, निर्वाह करना ही पड़ेगा। इसमें जमा-जथा देखने से काम नहीं चलने का। रुपये का प्रबन्ध जैसे भी हो, होगा। आप दया करके उसी हिसाब से फिहरिस्त तैयार कर दें, जिस हिसाब से आपने अपनी माँ का श्राद्ध किया था।

माणिक बाबू ने बहुत गंभीर होकर कहा—कागज-कलम ले आओ

शैलजा पासवाले कमरे से निकलकर अन्दर चली गयीं। आंतरिक पीड़ा से उनका चेहरा अचानक उतर गया। नित्तो ने उन्हें देखकर पूछा—क्यों फूफी; जी कुछ खराब है ?

सक्षेप में फूफी ने उत्तर दिया—नहीं।

इस इतने बड़े दुःख के अवसर पर ही फूफी को दूसरी मार्मिक चोट लगी। शिवनाथ ने अभिभावक और जमीन-जायदाद की देखभाल की बाबत जो प्रस्ताव रखा, उसे उन्होंने अपने कानों सुना। आदमी भी क्या विचित्र जीव है! यही तो कुछ महीने पहले की बात है कि वह शिवनाथ को दफ्तर में बिठाकर उसके हाथों सारा भार स्वयं सौंपना चाह रही थीं, फिर भी शिवनाथ के इस निश्चय से उन्हें आंतरिक पीड़ा पहुँची। उन्हें ऐसा लगने लगा कि उनका जीवन ही सब प्रकार से निरर्थक हो गया। वह अवसन्न-सी होकर जमीन पर ही लेट गईं और कुछ सोचती रहीं। फिर कलेजे को कड़ा कर बोलीं—रतन, चूल्हा-चक्की सम्हाल बेटी। और नित्तो नौकर-चाकर को जलपान दे आ। मैं ठाकुर के पूजा-पाठ का बन्दोबस्त कर दूँ।

इस ध्वनि से पहली शैलजा को पहचाना नहीं जा सका।

दो ही दिनों में श्राद्ध के कामों का एक सिलसिला सा लग गया। इलाकों के गुमाश्ते आ पहुँचे, प्यादे-बेगार भी आ गये। कामों का बँटवारा कर, एक-एक को एक-एक भार दे दिया गया। इन सब की देखभाल का जिम्मा माणिक बाबू के ऊपर रहा, राखाल सिंह और रामरतन बाबू उनके सहकारी रहे।

जो सामान कलकत्ता से आयँगे, उनकी सूची तैयार हो रही थी। रामरतन बाबू को वहाँ जाना था। शिवनाथ कंबल पर चुपचाप बैठा था। अचानक ही उसने रामरतन से कहा—मास्टर साहब, एक काम है।

मास्टर बोले—कौन-सा काम शिवू?

आप जरा सुशील के घर हो लेंगे। उनसे मिलकर मेरी इस विपत्ति का हाल जरूर कह देंगे। उन्हें मेरी माँ पर बड़ी श्रद्धा थी।—कहते-कहते शिवू के दोनों होंठ कांप उठे। माता के वियोग में वह अबतक नहीं रोया, जैसे उसके कलेजे में अपार धीरज था। मगर जैसे-जैसे दिन निकलने लगे

हैं, वह भीतर से दुर्बल होने लगा है। ऐसे वक्त में उसके पास पूरन रहा होता तो बहुत अच्छा होता। यह सोचते ही एक लम्बी आह भरकर वह बोला—उनसे यह जरूर पूछ लीजियेगा कि पूरन कैसा है ?

नायबजी लिखते लिखते भी जैसे सब कुछ सुन रहे थे। उन्हें एक बात और याद आ गयी। कुछ आगा-पीछा करते हुए उन्होंने कहा—हाँ, एक बार—यानी बहू तो नहीं ही आयीं, उनकी कोई खबर भी नहीं मिल सकी है। एक बार वहाँ भी हो लेते तो कैसा होता ?

शिवनाथ ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं। हर्गिज नहीं।

रामरतन ने सहसा पूछा—अच्छा, हाँ, कई दिनों से तुमसे एक बात पूछने की सोच रहा था—तू क्या आगे और नहीं पढ़ेगा ?

जी नहीं। कालेज की पढ़ाई नहीं पढ़ूँगा।

वही तो रे शिवू! उन्होंने एक दीर्घ निश्वास फेंका।—आखिर इस मामूली जायदाद के घेरे में अपने को बाँध रखेगा तू!

शिवनाथ चिन्ताभरी आँखों से सामने की ओर देखता रहा। इतने में कई कुली, अनेक गाँठ और बक्स लिये कचहरी में घुसे। पूछा—सरकार, ये सामान कहाँ रखें ?

ये किसके सामान हैं ? कौन आये हैं ?—राखाल सिंह ने पूछा।

शिवू भी सब बक्सा-पिटारा देखकर चौंक-सा उठा। यह बक्स—

कुली बोला—हुजूर, इस घर की माँ जो आयी हैं और उस घर के भैया जी···

हर किसी की नजर पड़ी कि कमलेश के पीछे-पीछे घूँघट काढ़े गौरी अन्दर आ रही है।

शिवनाथ ने एक सन्तोष की साँस ली और आँखें बन्द कर लीं। उसकी आँखों में आँसू उमड़े आ रहे थे।

चौबीस

गौरी प्रणाम करने जा रही थी, कि शैलजा ने अपने पाँव खींच लिये। बोलीं—रहने दो बेटी। छूत में प्रणाम नहीं करते। मैं यों ही तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ।

गौरी ने बढ़े हुए हाथ समेट लिये और चुप खड़ी रही। शैलजा ने एँड़ी से चोटी तक एक बार बहू को देखा, फिर बोलीं—क्या बीमार थी बेटी, मास्टर साहब कह रहे थे!

गौरी इस बात का भी कोई उत्तर न दे सकी। अपना सिर झुकाकर वह जैसे और भी संकुचित हो गयी। उसकी ओर से कमलेश ने कहा—काशी से लौटी थी, तो बुखार आया था। फिर बदहजमी की शिकायत तो लगी ही है। इसी सबसे इसकी सेहत बहुत गिर गयी है।

शैलजा बोलीं—ओ, मैंने सोचा था कि कुछ सख्त बीमार रहीं। जो हो, हाथ-मुँह धो लो बेटी। यह रही तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हें ही सब समझ-बूझ लेना है। मुझे तो अब फुर्सत दे दो।

इस बात का जवाब ही क्या था और जवाब देता भी कौन! सो कमलेश और गौरी दोनों चुप खड़े रहे। शैलजा ने ही फिर शुरू किया—जब लिवाने के लिये आदमी भेजा गया था, तब आना चाहिये था और भेज देना भी तुमलोगों का कर्त्तव्य था। मुझ से जो भी कहो-करो, सास की आखिरी-घड़ी में न आना कुछ अच्छा नहीं हुआ!

कमलेश और गौरी का चेहरा उतर गया। आदमी का कसूर पश्चात्ताप में बदलकर खुद सजा हो जाता है, फिर उस पर याद और ताने भी पड़ें, तो वह सजा पहाड़ से भी भारी हो उठती है। गौरी के मन में शैलजा एक आतंक-सी हो गयी है, आज वही शैलजा जब दोष देती हुई दण्डदाता बनकर उसके सामने खड़ी हो गयीं, तब उसका सारा शरीर भय के मारे काँप उठा। लेकिन ; उन्होंने और कोई कड़ी बात नहीं कही। नित्तो को पुकारकर कहा—बहू रानी के लिये शिवूवाला रँगा हुआ कमरा खोल दे और इनके असबाब उसी में रख दे। फिर बहू से बोलीं—घर में ताला डाल देना बेटी, भीड़-भाड़ में होशियार रहना ही ठीक है।

नित्तो बहू को ऊपर ले गयी। फूफी ने बड़े ही शौक से जिसे सजा-वजा कर रखा था, वही कमरा खोल दिया और बोली—साफ-सुथरा तो किया-कराया ही है भाभी। बस, बक्सों को इस बेंच पर रखवा देना है। बरामदे में हाथ-मुँह धोने को पानी रखा है। और कोई जरूरत हो, तो आवाज देंगी।

गौरी और कमलेश मुग्ध होकर कमरे को देखने लगे। बड़ा ही सुन्दर सजा-सँवारा। कलकत्ता के धनी परिवारों के यहाँ इससे भी कीमती सामान और सजावट उन्होंने देखी थी, किन्तु इसके रंगों के विन्यास की एक शैली है, उसकी बारीकी में भी एक सतर्कता का आभास है। कमलेश बोला—वाह, शिवनाथ की रुचि तो खासी बढ़िया है। घर की सजावट बहुत-खूब बन पड़ी है।

अब गौरी बोली। उसने नित्तो से पूछा—यह हाल में सजाया गया है, न ?

हाँ भाभी। फूफी ने खुद खड़े होकर कमरे को रँगवाया है, माँ ने सब समझा-बुझा दिया था ! कहते-कहते नित्तो को शायद ज्योतिर्मयी की याद आ गयी। एक गहरा निश्वास छोड़ते हुए बोली—ऐसी सास के साथ

आपको गिरस्ती करने का मौका नहीं मिला भाभी। भैया के साथ भी आ गयी होतीं, तो उनके अन्तिम दर्शन तो हो जाते।

गौरी गम्भीर हो गयी। हृदय में भय के पीछे विद्रोह का जो क्षोभ घुमड़ रहा था, वह पात्र की दुर्बलता का सहारा पाकर फुफकार उठा। वह बोली—अब उसकी कैफियत क्या तुम्हारे सामने भी देनी पड़ेगी? कृपा करो बाबा, तुम्हें कोई काम-काज हो, तो करो जाकर, मुझे जरा सांस लेने दो।

नित्तो घर की बड़ी पुरानी नौकरानी है। घर के पाँच में से अपने को एक मानकर उसी अधिकार से काम करता रही है। गौरी की इस बात से वह क्षुब्ध हो उठी, मगर चूँकि वहाँ कमलेश था, इसलिये घर की मर्यादा के खयाल से चुप लगा गयी। वह चुपचाप ही वहाँ से निकल गयी।

कमलेश ने अचरज से कहा—यह दाई तो बड़ी जानवर है!

गौरी की आँखें छलछला आयीं। बोली—देखो, तुम्हीं सोचो। मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी।

कमलेश बोला—मैं शिवनाथ से खुलकर सारी बातें कहूँगा। कहूँगा कि अब वह युग नहीं रहा, जब सास बहुओं को पीटा करती थी। तब और अब में बड़ा अन्तर है।

'मुझे यह मालूम है कमलेश।'

इस आवाज से चौंककर दोनों ने देखा, द्वार पर शिवनाथ खड़ा है। सर में तेल नहीं पड़ा है, बाल रूखे हैं, कर्त्ता का वेश, कब से वह खाली पाँव वहाँ आकर खड़ा है, किसी को पता नहीं। शिवनाथ ने कहा—उस बात को तुमसे थोड़ा ज्यादा ही जानता हूँ मैं। वह भविष्य की बात है। बुढ़ौती में सास-ससुर को पिंजरापोल के पशुओं के समान मरने के लिये अस्पताल की शरण लेनी पड़ेगी, वह दिन भी आ रहा है।

कमलेश का चेहरा तमतमा उठा, घूँघट की आड़ में गौरी का मुँह एक

बारगी फीका पड़ गया। अपने को जब्त करके कमलेश बोला—यह कसूर हमलोगों का, गौरी के अभिभावकों का है, गौरी का नहीं। इस छोटी-सी बात को मामूली-से-मामूली आदमी भी समझ सकता है। एक तेरह-चौदह साल की लड़की खुद ससुराल जाने की इच्छा नहीं जाहिर कर सकती।

शिवनाथ ने रुखाई के साथ हँसकर कहा—मगर उससे भी एक छोटी लड़की अफवाह पर एतबार करके अपने स्वामी से नाता-रिश्ता तोड़ देने की बात लिख सकती है, यह और भी साधारण-सी बात है!

किसी पशु को कहीं बन्द करके, घेरकर मारने से, निराशा से वह जैसा पागल हो उठता है, कमलेश की दशा लगभग वही हो रही थी। वह बोल उठा—अगर वह बात सच होती, तो जैसा कहा गया था, वैसा ही किया जाता। हमने शादी इसलिये नहीं की थी कि हमें रोटी-कपड़े के लाले थे। उसका प्रबन्ध करने लायक स्थिति हमलोगों की है।

शिवनाथ के दिमाग में जैसे अंगारा दहक उठा। लेकिन; क्रोध, भय, आनंद, सुख-दुख के उद्वेग में संयत हो सकने की शिक्षा उसे मिल चुकी है, खासकर इन बीते कई महीनों की सोहबत से, महज कै दिन पहले उस एक आदमी के हँस-हँसकर मौत को गले लगा लेने के उदाहरण से। उसी ज्ञान के संकेत से उसने अपने आप को रोका, छूटते ही कोई जवाब नहीं दे बैठा। कमलेश की ओर से आँखें फेर लेने की इच्छा से उसने गौरी को देखा। उसका भय से उतरा हुआ चेहरा आँसुओं से तर हो गया था, इस गरमागरम बहस के बीच उसका घूँघट सर से करीब-करीब खिसक पड़ा था। गौरी के इस प्रकार आँसु बहाने से शिवनाथ के क्रोध से तपे मन पर बहनेवाली गरम हवा के झोंके जैसे ठंढे पड़ गये। उसने हलके हँसकर कहा—भई, तुमलोग ठहरे धनी आदमी, तुमलोग ऐसा कर भी सकते हो। मगर कोई गरीब की स्त्री ऐसा कर सकती है या नहीं, यह मैं उसी के मुँह से

सुनना चाहूँगा। तुम मेरे कुटुम्ब हो, इस क्रिया-कर्म के मौके पर पधारे हो, तुम अगर कड़वी बातें भी सुनाओ, तो मुझे सुननी पड़ेंगी।

कमलेश कुछ नहीं बोला—क्रोध को पीकर वह तरह-तरह की अजीब कल्पनायें करने लगा। शिवनाथ को अपने यहाँ कोई नौकरी देकर अपनी मेज के आगे खड़ा करके कैफियत तलब की जाय, तो कैसा रहे? या रुपये कर्ज देकर उसे उसी जाल से खींचा जाय, तो कैसा हो?

शिवनाथ ने कहा—'अच्छा तो तुम लोग आराम करो, मैं चला। बहुत सारे काम पड़े हैं।' वह चला गया।

कमलेश बोला—नान्ती, तू साफ-साफ कह देना कि मैं यहाँ नहीं रह सकती। शिवनाथ ही कलकत्ता चले, वहाँ अभी कोयले के व्यापार में लाखों-लाख का मुनाफा है। वह व्यापार करे; रुपये न होगा तो हम लोग कर्ज देंगे। अगर व्यापार करते न बने, तो कोई नौकरी ही सही। तू भी वहीं रहना। यह इत्ती-सी जमींदारी, फूँक दे कोई, तो उड़ जाय! इसी पर निर्भर रहने से कैसे काम चलेगा? यहाँ फूफी रहें, मजे में खायें-पियें और इन दाई-नौकरों पर आँखें लाल-पीली करती रहें।

गौरी ने अब अपने को सम्हाल लिया था। आँचल से आँखें पोंछकर कुछ कहने जा रही थी कि चुप हो गयी। आशंकित होकर धीमे से कहा—सीढ़ी पर पैरों की आहट सुनाई पड़ती है।

कमलेश ने बाहर निकलकर देखा। किसी की परिछाईं सीढ़ी से दीवाल पर पड़ी है। पर वह तुरन्त गायब हो गयी। जरा देर बाद रतन आयी। गौरी से बोली—चलो, घाट चलना है। शिवनाथ के लिये हविषान्न भी तुम्हीं को करना पड़ेगा।

गौरी शङ्कित होकर नीचे उतर गयी। शैलजा ने मीठे-मीठे कहा—नहा लो बेटी; नहाकर हविष चढ़ाना है। यह घर-द्वार सब कुछ तो

तुम्हारा ही है। शिवू की माँ का संस्कार है; ऐसे में तुम्हारा ऊपर बैठा रहना क्या ठीक है?

इन मीठी बातों से गौरी आश्वस्त होकर ढीठ-सी हो गयी। नम्रता से उसने पूछा—श्रीपोखर में ही तो नहाना होगा?

हाँ; रतन तुम्हारे साथ जा रही है।

श्राद्ध तो वृषोत्सर्ग ही हुआ, मगर क्रियादि मामूली ढंग से नहीं की गयीं। फिहरिश्त माणिक बाबू ने अपनी माँ के श्राद्ध के हिसाब से बनायी थी—सम्भवतः बड़ी कठोर निष्ठा से ही उन्होंने ऐसा किया था। खर्च और पूरी धूमधाम से श्राद्ध एक बहुत बड़ा समारोह हो गया। लेकिन अकेली शैलजा मानों दशभुजा बन गयीं। उनके व्यक्तित्व में जो एक स्पष्ट आभिजात्य है, वह किसी से छिपा नहीं, सम्पत्ति की देख-भाल में जो जन्मजात पैनी दृष्टि उनकी है, उसे सभी जानते हैं; किन्तु इतना अद्भुत परिश्रम भी वह कर सकती हैं, किसी को यह नहीं मालूम था। खास करके उस ओजमयी नारी के नम्र और स्नेहपूर्ण व्यवहार से तो सभी दंग रह गये। केवल यही नहीं, ममता से मानों वह स्नेहमयी बन गयी हैं। उस दिन का वाकया है, नित्तो एक डोलची में गुड़ निकाल रही थी। जब डोलची भर गयी, तो उसने फूफी से आकर पूछा—एक तो भर गयी फूफी, और निकालूँ?

शैलजा बोलीं—नहीं-नहीं, उतना ही रहने दे।—इसके बाद ही कह उठीं—अरे री पगली, कहीं ऐसा बेहोश होकर भी कोई काम करता है? तमाम चेहरे पर गुड़ लग गया है, पोंछ ले।

बायें हाथ की कलाई और केहुनी के बिचले हिस्से से नित्तो ने मुँह पोंछ लिया। फूफी ने कहा—उँ हुँ, नहीं गया। इधर मेरे पास आ जा, आ न जा री पगली, इसमें कौन-सी बुराई है भला? और एक अंगोछा लेकर उन्होंने ही नित्तो का मुँह पोंछ दिया—जैसे कोई अपनी बेटी के पोंछ देता है।

रतन ने अकेले में [illegible] —इनके भी दिन पूरे हो आये नित्तो। यह तो अद्भुत् परिवर्त्तन देखती हूँ मैं, वह आदमी ही जैसे नहीं रहीं? मेरी बात गाँठ बाँध ले नित्तो, बस, छः महीने से ज्यादा नहीं। भाभी ही अपनी ननद के पास-पास चल रही हैं जैसे।

नित्तो ने लम्बी साँस भरकर कहा—अरे राम-राम, ऐसा न कहो दीदी। यह घर ही मिट्टी में मिल जायगा।

श्राद्ध के दिन भोज-भात खतम होते-होते रात के बारह बज गये। शैलजा ने तब तक मुँह में एक दाना नहीं दिया था। यह खबर सिर्फ नित्तो और रतन को थी। रतन बोली, मौसी, अब आप कुछ खा लें, अभी तक भूखी ही रह गयी हैं।

शैलजा ने कहा—हाँ बेटा, मुझे एक ग्लास पानी पिला दे। लगता है, कलेजा सूखकर काठ हो गया है।

रतन ने पानी लाकर दिया। पूछा—न हो तो भात चढ़ा दूँ और उसमें आलू डाल दूँ। तमाम दिन कुछ भी नहीं खाया है आपने।

होंठों के ऊपर से ही ढालकर उन्होंने गटगट करके पानी पी लिया। बोलीं—कोई जरूरत नहीं रतन, बहुत खा चुकी, अब रुचेगा ही नहीं।

अचरज से रतन ने कहा—कहती क्या हैं आप? कब क्या खाया आपने!

शैलजा अजीब ढंग से हँसकर बोलीं—पति, पुत्र, भाई, भाभी, बैठी-बैठी बहुत कुछ खा गयी। अब भी भूख रह सकती है भला या रहनी चाहिये? बहू के श्राद्ध का अन्न भला मुझे खाना चाहिये रतन?—कहती हुई वह अपने सोने के कमरे की ओर बढ़ गयीं।

रतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। नित्तो ने कहा—आज तो पाँवों में तेल भी नहीं लगाया है, मल दूँ?

शैलजा को तेल लगाने की आदत शुरू से है। तेल न लगे, तो रात

को उन्हें नींद तक नहीं आती। लेकिन आज उन्होंने कहा—रहने दो।

नित्तो बोली—नहीं-नहीं, रात आपको नींद नहीं आयेगी।

उन्होंने शांत भाव से प्रतिवाद किया—नहीं-नहीं, भोग में रहते-रहते मैंने भगवान को दूर फेंक दिया है, खुद ही देवता बन बैठी हूँ। अब नहीं, अब मैं किसी से सेवा नहीं लूँगी।

अपने कमरे के द्वार पर पहुँचकर वह रुक गयीं। बरामदे की रेलिंग के सहारे खड़ी होकर पूछा—नित्तो, शिवनाथ सो गया? कहाँ सोया है?

वह और भाभी के भाई, दोनों माँ वाले कमरे में सोये हैं।

बहूरानी के पास तू रहेगी न?

हाँ।

कल से शिवू का बिछौना उसके अपने कमरे में लगा देना—हाँ!

नित्तो ने थोड़ा आगा-पीछा करके कहा—भाभी तो कह रही थीं कि कल-परसों वे कलकत्ते चली जायँगी।

हँसकर शैलजा ने कहा—कह देने से ही क्या जाना भी हो सकता है रे! उसका यह घर-द्वार कौन सम्हालेगा? कौन चलायगा?

उसके बाद फिर पूछा—किसन और बिहारी भी यहीं सोये हैं न? उनसे कह दे कि दरवाजे को अंदर से बंद कर लें। जरा चेत से ही सोयें, दुनिया भर का सामान बाहर पड़ा है।

सभी काम समाप्त करके वह अपने कमरे में चली गयीं।

दूसरे दिन सबेरे ही उन्होंने राखाल सिंह को बुलवाकर पूछा—अब तो काम-काज सब हो गया। अब आप यह बतायें कि सब मिलाकर रुपये कितने खर्च हुए। मैं खर्च और पास के रुपये को मिलाकर देख लूं।

राखाल सिंह ने कहा—यह कैसे होगा भला? अभी तो बहुत सारा

खर्च बाकी ही पड़ा है, फिर इतने बड़े खर्चा का हिसाब एक ही दिन में क्या पूरा किया जा सकता है ?

उन्होंने स्नेह से ही कहा—किया क्यों नहीं जा सकता सिंह जी ? यमराज के दरबार में जब देखिये, इतने बड़े विश्व-ब्रह्मांड का हिसाब पाई-पाई तैयार है। आप लोग हैं कायस्थ, चित्रगुप्त के वंशधर, अगर चाहें तो क्या नहीं कर सकते हैं आप ? हमारे भी पाप-पुण्य का लेखा-जोखा बताकर फुर्सत दीजिये।

राखाल सिंह बड़ी मुसीबत में पड़ गये। यद्यपि विषय-संपत्ति के बारे में इन जमींदार-कन्या की बुद्धि बड़ी पैनी है, तो भी यह लेखा-जोखा जो क्या होता है, कितना कठिन होता है, यह वह कैसे समझ सकती हैं। और जबानी उन्हें समझाया भी जाय, तो कैसे ? आखिर में वे बोले—न हो तो आप मास्टर साहब से पूछ देखें—इतना आसान थोड़े ही है यह ?

हँसकर उन्होंने कहा—इसमें मास्टर से क्या पूछना ? मैं यह कहती हूँ कि मैंने अपने पास से जितनी बार मुश्त-मुश्त रुपये दिये हैं, उनमें तो कोई हेर-फेर है नहीं, आप उन्हें ही जोड़कर बता दें कि मेरे हाथ से कितने रुपये खर्चा हुए। इससे ज्यादा की जिम्मेवारी तो मेरी है नहीं। मैं उस खर्चा और जो मौजूद हैं, उन्हें मिलाकर देखूं। दोनों का मुँह मिल जाय, तो छुट्टी हो जाय। उन रुपयों को आपने कैसे-कैसे खर्च किया, यह हिसाब बाद में होता रहेगा।

अपनी आदत के अनुसार शिवनाथ तड़के ही उठकर बाहर निकल गया था। वह लौटकर घर आया। फूफी ने उसे बुलाकर कहा—शिबू, राखाल सिंह के साथ बैठकर हिसाब मिला लेना चाहिये। मैंने कितने रुपये घर से दिये—संदूक खोलकर देख ले, बाकी कितने रह गये हैं। इससे मोटामोटी अंदाज हो जायगा। यह है कुंजी, देख ले तो कितना बच रहा है।

फूफी ने शिवू के हाथ में ुंजी दे दी। रुपये गिन-गूंथकर उन्होंने लंबा निश्वास छोड़ा, सिर से एक बोझ तो उतर गया। अब बर्तन-वासन रह गये। अरे नित्तो, जरा बहूरानी को तो बुला।

गौरी आकर खड़ी हो गयी। फूफी ने कहा—जरा अपने से बर्तनों को मिला लो। यह कुंजी लो, बर्तनवाला कमरा खोलो। —उन्होंने कुंजियों का एक झब्बा बहू को थमा दिया।

हिसाब-पत्तर में शिवनाथ से बार-बार भूल हो जाती थी। उसे यह सबकुछ भी नहीं सुहा रहा था। श्राद्ध के वे कई व्यस्त दिन आँधी की तरह ही आकर गुजर गये, उसकी अपनी भी सारी शक्ति उस काम की भीड़ में लगी थी। सोच-विचार का समय ही नहीं था। इच्छा-अनिच्छा जानें कहाँ खो गयी थी। आज मौका पाते ही उसका चित्त जाग पड़ा है। उसने मन ही मन बड़ी उदासी महसूस की। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था।

रामरतन बाबू बोले—रहने भी दो शिवनाथ, तुम्हारे दिल-दिमाग दोनों ही थक गये हैं। यू रिक्वायर रेस्ट, एब्सोल्युट रेस्ट।

अपने घुटे हुए सर पर हाथ फेरते हुए वह बोला—किसी भी काम में जी नहीं लग रहा है सर, कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

राखाल सिंह ने कहा—तब अभी रहने दिया जाय। न हो तो मैं ही जोड़-जाड़कर रखूँगा, आप एक नजर देख लेंगे।

शिवनाथ उठकर एक डेक-चेयर पर लुढ़क गया। बोला—अच्छा, वही कीजिये।

रामरतन बाबू जरा मुलायम होकर बोले—देख शिवू, तुझ से एक बात कहे बिना मैं नहीं रह सकता। मेरा खयाल है, इसके लिये शायद मैं ही रेसपान्सिबिल हूँ।

बहुत ही अनमना होकर शिवू ने कहा—कहिये।

मैं सोचता हूँ, मेरी ही शिक्षा का यह कसूर है कि तूने अपने लिये जीवन में ऐसा खतरनाक रास्ता पकड़ा है। मैं इसके बारे में विशेष कुछ तो नहीं जानता, लेकिन उस औरत की बात सुनकर और सुशील के घर की आबहवा देखकर ऐसा अनुमान कर रहा हूँ। यू मस्ट लीव इट माइ बॉय।

एक ही पल में, उद्दीप्त दृष्टि लिए शिवनाथ की आँखें सामने के आकाश की नीलिमा में गड़ गयीं—उसकी वह दृष्टि जैसे अतल को छूनेवाली हो। उसके अंगों का स्पंदन तक मानों उस गंभीरता से स्तब्ध और प्रशान्त हो।

रामरतन ने पुकारा—शिवू!

जी सर!

यू मस्ट गिव मी योर वर्ड ऑव ऑनर। मुझे वचन दो कि—

यह मुझ से नहीं होगा सर। मैं सोचकर आज तक भी कोई निश्चय नहीं कर सका, मगर मैं इसकी राह ढूँढ़ रहा हूँ।

मेरी बात पर भी तू इससे बाज नहीं आ सकता?

हँसी की एक दुबली रेखा शिवू के होंठों पर दौड़ गयी। उसने कहा—एक महापुरुष—अतिमानव ने भी मुझ से कहा है कि यह रास्ता गलत है। लेकिन उन्होंने दूसरे पथ का पता नहीं बताया। उसी पथ को मैं खोज रहा हूँ।

रामरतन एक दीर्घ निश्वास छोड़कर चुप हो रहे। उनका अन्तर मानों न सहे जा सकनेवाले दुःख से भर गया। महापुरुष, अतिमानव! आखिर वह कौन है? कैसा आदमी है?—यह प्रश्न उनके हृदय में चक्कर काट रहा था—फिर भी मुँह खोलकर इस बात को वह पूछ नहीं सके। यह उन्हें खूब मालूम है कि शिवू यह हर्गिज नहीं बतायेगा। पृथ्वी की कोई भी शक्ति इस लड़के से उस गोपन को छीन नहीं सकती।

थोड़ी ही देर के बाद शिवनाथ उस गहरी गंभीरता से जाग पड़ा। मन में कुछ अच्छा न लगने की वैसी ही आकुलता! वह डेक-चेयर से उठ

खड़ा हुआ। बहुत दिनों के बाद अस्तबल में वह घोड़े के सामने जाकर खड़ा हुआ। उसके चिकने-काले शरीर पर से सूरज की रोशनी गोया छिटकी पड़ रही है। उसके खुर के अविराम चञ्चल आघातों से अस्तबल धूल से भर उठा है। मगर उसके इस सुन्दर वाहन ने भी आज उसे आकर्षित नहीं किया। वह बेमन होकर घरभर में मानों यह ढूँढ़ता फिरने लगा कि उसकी इस आकुलता की सांत्वना किस जगह छिपी पड़ी है।

मालती की लता सादे फूलों से लद गयी है। खलिहान की जमीन पर हरी घासों की मखमल-सी बिछ गयी है। उन घासों से होकर वह श्री-पोखर तक पहुँचा। आश्विन का आरंभ। तालाब में घोर काला पानी टल-मल-टलमल कर रहा है।

वह घर लौट आया। फूफी संध्या कर रही थीं। बर्तनवाले घर के दरवाजे पर गौरी खड़ी थी। वह ऊपर चला गया। सजावटवाले कमरे का दरवाजा खुला पड़ा था। अन्दर में नित्तो बिछौनों का पहाड़-सा ढेर लगाकर झाड़-पोंछ कर रही थी। शिवनाथ अन्दर गया। एक बार कमरे के चारों ओर निगाह डालकर बिछौने के ढेर को देखते हुए बोला—बिछौनों को ऐसे उतार क्यों दिया ?

खुशी में भरकर हँसती हुई नित्तो ने कहा - नये सिरे से विस्तर लगाना है। आप अब इसीमें सोयेंगे।

शिवनाथ ने उसकी ओर तीखी नजर से देखा—उसकी बातों में, इस हँसी में कुछ संकेत था। दूसरे ही क्षण उसके मन की सारी बेचैनी शरीर के एक-एक रक्त-बिंदु में फैल गयी। लोहू के कण जैसे आँच और उत्तेजना से कुंकुम के समान फट पड़ने लगे।

नित्तो फिर हँसकर बोली—मुझे विस्तर लगाने का इनाम चाहिये।

शिवनाथ बेताब होकर जल्दी-जल्दी निकलकर नीचे उतर पड़ा। फिर

वह घोड़े के सामने जाकर खड़ा हुआ। उसके कपाल को स्नेह से थपथपा कर फिर बरामदे में आ बैठा।

राखाल सिंह ने कहा—हिसाब मैंने कर लिया। जमाखरच ठीक है। आप एक बार इसको देख जायँ।

हार्दिक अनिच्छा से गर्दन हिलाकर उसने कहा—नहीं, नहीं, रहने दीजिये। जब ठीक-ठीक मिल ही गया है, तब देखना क्या ?

मास्टर साहब गम्भीर होकर टहल रहे थे। शिवनाथ हिसाब का टंटा चुकाकर चुप हो गया! थोड़ी देर के बाद उसने पुकारा—निताई!

निताई साईस सामने आकर खड़ा हुआ। शिवू ने कहा—घोड़े की साज झाड़-पोंछकर दुरुस्त रखो। चार बजे घोड़े को तैयार कर देना।

सतीश आकर बोला—बेला बहुत हो गयी—नहा लीजिये।

उसने कहा—तेल और तौलिया ला। आज श्रीपोखर में नहाऊँगा—थोड़ा तैरूँगा आज।

तैरकर जब खूब थक गया, तब वह पानी से निकला। तब तक नींद जैसे आँखों को जकड़ने लगी।

घोड़े को उसने बेतहाशा दौड़ाया। गठे हुए मजबूत शरीरवाले वाहन की बेहिसाब तेज चाल के साथ-साथ उसका मन भी आनन्द से भर उठा। सवारी के हचकोले से शरीर की सारी पेशियाँ खिल उठीं। जब घर लौटा, तब उसका सारा शरीर पसीने से तर था। साईस को घोड़ा देकर वह बरामदे की आरामकुर्सी पर बैठ गया। बोला—घोड़े की चाल तो बेहतरीन बन गयी है!

राखाल सिंह चिन्तित बैठे थे। पास ही एक कुर्सी पर मास्टर साहब बैठे थे। उनका मुँह भी बड़ा गम्भीर हो रहा था। शिवनाथ की बात का किसीने उत्तर नहीं दिया। इधर-उधर देखकर उसने सतीश को आवाज दी।

सतीश एक एकान्त कोने में बैठकर गाँजा मल रहा था। शिवनाथ की पुकार सुनकर उसके हाथ निःशक्त-से हो गये। मगर महज एक पल के लिए। दूसरे ही क्षण उसके हाथ फिर गांजा मलने लगे। उसने आवाज नहीं दी।

जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब शिवनाथ स्वयं उठा। राखाल सिंह बोला—आप जरा भीतर जायँ। फूफी—

शिवनाथ बीच ही में बोल उठा—मैं अन्दर ही जा रहा हूँ।

अन्दर दालान में बैठी फूफी गौरी से कुछ कह रही थीं। शिवनाथ पर नजर पड़ते ही बोलीं—शिवू, तेरी ही राह देख रही थी। तुमसे कुछ कहना है।

शिवनाथ का उद्वेग अभी भी शान्त नहीं हुआ था। उसने कहा—अभी आया फूफी। जरा कपड़े बदल डालूँ, पसीने से सब ओदे हो गये हैं। आज घोड़े पर सवार हुआ था। उफ्, गजब का चलता है कम्बख्त! और वह तेजी से ऊपर चला गया। उसने हाथ-पाँव धोया, मुँह में साबुन लगाया। उन कपड़ों को बदलकर जरी कोर की एक धोती और चूड़ीदार कुरता पहना। उसके बाद नीचे उतरा। नन्हे बच्चे के समान फूफी की गोदी से लगकर बैठ गया। बोला—कहो अब।

फूफी ने एक बार बड़े गौर से शिवू को देखा और हँसीं। उसके बदन पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा—मैं एक चीज माँगूँ, तो दोगे?

शिवनाथ हँस पड़ा। फूफी के पास गौरी बैठी थी। तुरन्त ही वह ताड़ गया कि हो-न-हो, फूफी गौरी के कसूर के लिये क्षमा माँगेंगी। घूँघट के अन्दर से गौरी पर एक कटाक्ष फेंकते हुए उसने कहा—तो क्या प्रतिज्ञा भी करनी पड़ेगी। खैर, की प्रतिज्ञा। बोलो, क्या देना पड़ेगा।

अचानक नित्तो कह उठी—नहीं-नहीं भैया जी।

शैलजा बोलीं—नित्तो!

नित्तो ठक हो गयी। शिवू अचरज में पड़ गया। उसके ठीक-ठीक समझ पाने के पहले ही फूफी ने कहा—मुझे अब छुट्टी दे दे बेटा।

शिवनाथ का चेहरा उड़ गया। उसने ताज्जुब से दो ही अक्षरों में पूछा—छुट्टी ?

हाँ, छुट्टी। मेरी पुकार हुई है, जाना पड़ेगा। मुझे छुट्टी दो।

मानों बर्फीली हवा का एक झोंका आया और उसने शिवू को अवश कर दिया। फूफी बोलीं—मैं काशी जाऊँगी। आज कई दिनों से स्वप्न में जैसे मेरे गुरु कह रहे हैं कि और कितने दिनों तक मुझे भूले रहोगी। काशी आ जाओ।

शिवू ने मन को काबू में किया और आपे में आया। पर उसके दिनभर का आवेग विद्रोही बन गया। उसने समझा, यह गुरु महाराज की बुलाहट नहीं है, बल्कि गौरी के आने से ही उन्हें यह वैराग्य हुआ है। उसकी आँखें, उसका चेहरा तमतमाकर लाल हो उठा। लेकिन आवेश में बहकने की उसकी आदत नहीं, अपने कठोर संयम से उसे पीकर वह चुप बैठा रहा। बाद में बोला—हमलोगों के निजत्व का बंधन क्या सचमुच तुम्हें दुःख देता है फूफी ? ऊपरी आकर्षण से सचमुच ही यह बंधन नहीं रखा जा सकता।

फूफी चौंक-सी उठीं। उन्होंने ओज भरी आँखों से शिवू को देखते हुए कहा—आज इतने दिनों के बाद मेरी बात तुझे झूठ लगी शिवू ?—उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

शिवू ने सहज धीरता से कहा—असल में सपना मन का विकार हुआ करता है फूफी, वह कभी सच नहीं होता, इसी से कह रहा हूँ।

मन की जिस रहस्यमय गहराई से उनकी कामना ने गुरु का रूप धरकर उनका आवाहन किया है, उसी कामना ने उनके मन को शांत, इस्पात की तरह न झुकनेवाला भी बना दिया है। किसी भी प्रकार उसमें परिवर्त्तन

की गुंजाइश नहीं। उन्होंने अटूट दृढ़ता के साथ कहा—ऐसी बात न कहो बेटा, तुम्हें विश्वास नहीं है, मगर मैं विश्वास करती हूँ। उनको मैंने प्रत्यक्ष देखा है, उनके आदेश की उपेक्षा नहीं कर सकती।

शिवू कुछ क्षण चुपचाप बैठा रहा। मन के आसमान के किसी कोने में जैसे घटा घिर आयी है, वहाँ से रह-रहकर बिजली चमक उठती है, जिस की तेज चमक में शिक्षा-दीक्षा की दृढ़ आँखें भी चौंधिया जाती हैं। फिर भी वह गम्भीरता से विचार करने बैठा। और, उसने यह भली तरह अनुभव किया कि फूफी और गौरी का इकट्ठा रहना असम्भव है। दो में से कोई भी एक दूसरे को नहीं बर्दाश्त कर सकती।

फूफी ने फिर कहा—शिवू !

फूफी !

तुमने मुझे मुक्त कर देने का वचन दिया है।

एक तीव्र विद्युज्ज्योति से शिवू का हृदय झकमका उठा और इस बार भीतर से बादल की गरज भी सुनाई पड़ी। उसने गम्भीरता से कहा—वैसा ही होगा फूफी !

फूफी ने अपना गला साफ करके कहा—आज ही सुबह। मास्टर साहब से मैंने कह रखा है, वह मुझे काशी रख आयेंगे।

शिवू ने पूछा—आज ही ?

हाँ, आज ही। थोड़ी देर रुककर फिर बोलीं—ऊपर आकर्षण नहीं हो, तो बाबा विश्वनाथ मुझे शरण ही क्यों देंगे। कम-से-कम मरने के लिये भी मुझे यहाँ लौट आना पड़ेगा।

शिवू ने कहा—आज ही सही। उसने रतन को पुकारकर कहा कि जरा मास्टर साहब को बुला दे। रतन जीजी, जरा रोशनी उठाओ, आयरन चेस्ट खोलना है।

मेज पर नीले रेशमी शेड से ढँकी एक मेज-बत्ती जल रही थी। शिव-

नाथ बैठकर फूफी के बारे में सोच रहा था। किन्तु उसकी चिंता का कोई क्रम नहीं था। रह-रहकर अकुलाहट से सामने द्वार की ओर देखने लगता था। गौरी आयेगी—यह सोचकर उसकी एक-एक शिरा में सिहरन खेलने लगी।

रुनझुन,—सीढ़ी पर से आवाज आते ही एक व्यग्र उत्तेजना से शिवू उठ खड़ा हुआ। उसकी स्मृतियों की पुंजी मानों विस्मृति के अतल अँधेरे में डूबती जा रही है। उसकी नजरों में एक गौरी के सिवाय और कुछ रही नहीं गया। पाँव के नीचे धरती मानों डोल रही है, उसे और गौरी को झुलाने के लिये ही जैसे डोल रही हो। धीमे से वह गुनगुना उठा—
"और पेंग दे, झूले झूला; आज गोद प्रेयसि से पूरी, मन है मेरा फूला-फूला। और पेंग दे, झूले झूला!"

इसी समय सकुचायी चाल से धीरे-धीरे गौरी कमरे में आयी। उसके कपड़ों से उठती हुई सेंट की खुशबू से उसका जी भर गया, चूड़ियों की झनझनाहट से हृदय में एक लय जाग उठी। मेज-बत्ती को और थोड़ा उसकाकर उसने गौरी की ओर देखा। नीलापन लिये जो आभा निकल रही थी, उससे अपना मुँह रँगाये गौरी शिवनाथ के सामने खड़ी रही। पहनावे में नीली साड़ी, गोरे चिकने ललाट पर हरी मणि के समान एक टिकली, आँखों की काली पुतली में अजीब दृष्टि। उसके सारे शरीर में से शिवू को इतना ही दिखायी दिया।

गौरी की छोटी-बड़ी दोष-त्रुटि की कैफियत पूछने के लिये जो कर्त्तव्य-बोध किसी तपी की तरह गहरी तपस्या में सोया पड़ा था, उसका ध्यान भंग हो गया, मोहातुर होकर उसे अपने आप की सुध न रही। शिवनाथ ने कोई शिकायत नहीं की, बात नहीं की, खींचकर गौरी को छाती से लगा लिया। जानें कितना समय कट गया। दोनों ही एक दूसरे की बाहुओं में बँधकर सोफे पर सो गये थे। बीच में हाथ में किसी तरह की पीड़ा

होने से शिवू जाग पड़ा। गौरी के जूड़े का एक काँटा उसके हाथ में चुभने लगा था! धीरे-धीरे गौरी का सिर हटाकर अपना हाथ खींचते हुए वह मन-ही-मन हँसा। यकायक उसे ऐसा लगा कि बरामदे में कोई घूम रहा है!

जैसी कि उसकी आदत थी, भौंह सिंकोड़कर पूछा—कौन है?

शिवू चौंक उठा, आवाज फूफी ने दी। उन्होंने पूछा—क्या बजे, देख तो बेटा। अभी क्या तीन नहीं बजे हैं?

शिवू ने घड़ी देखी, महज बारह बज रहे थे। बोला—अभी तो सिर्फ बारह बजे हैं। अभी बड़ी देर है। सोओ जाकर।

शैलजा विस्तर पर पड़ गयीं जाकर। मन में फिर क्या तो हुआ कि उठकर जप करने लगीं।

रात तीन बजे की गाड़ी से फूफी काशी चल पड़ीं। शिवनाथ स्टेशन तक पहुँचाने गया था।

शेष रात के धुंधलके में मुँह किसी का साफ-साफ दिखायी नहीं दे रहा था। तोभी शिवनाथ ने प्रणाम करके गर्दन नहीं उठायी। सिर्फ बोला—फूफी!

फूफी ने उसकी ठोढ़ी छूकर कहा—देख बेटा, कभी अन्याय या अधर्म का सहारा न लेना।

गाड़ी ने सीटी बजायी।

पचीस

कई दिनों के बाद। कोई आठ बजे होंगे। शिवनाथ कचहरी के बरामदे में चिन्तित बैठा था। फूफी के सम्बन्ध में ही सोच रहा था। आखिर, यह क्या अच्छा हुआ ?–यह बात वह दूसरे ही दिन से सोचने लगा था! किसी भी उपाय से उसे इससे छुटकारा नहीं मिल रहा था। घर में जहाँ देखो, फूफी की कमी साफ खटकने लगी थी। घर की सारी गति-विधि ही जैसे बदल गयी है। और मन में यह कैसी असह्य ग्लानि! सिर झुक-झुक आता है। भला किस बेशर्मी और अकृतज्ञता से उसने फूफी और गौरी, इन दो में से गौरी को ही बड़ा बना लिया ? लेकिन, यह भी तो था कि फूफी को गौरी बर्दाश्त ही नहीं होती थी। फिर किस न्याय, किस नीति से वह गौरी को छोड़ दे ?

बीच ही में राखाल सिंह टपक पड़े—इधर एक मुसीबत आ पड़ी है।

अचरज़ से शिवनाथ ने पूछा—मुसीबत! मुसीबत कैसी!

सिर खुजाते हुए उन्होंने कहा—बकाया सेस का साटिकफिटिक आ गया है।

सेस का सार्टिफिकेट ? सेस क्या दाखिल नहीं किया गया था ?

जी हाँ, हमलोगों ने तो कौड़ी-कौड़ी चुका दिया है।

फिर यह क्या है ?

यह शरीकान महाल का है। मालूम होता है, किसी हिस्सेदार ने

बाकी रख छोड़ा है। फिर साटिकफिटिक विभाग की बात, 'खाय भीम निबटे शकुनि' कर दिया!

हुँ! कितने रुपये देने होंगे? दे दीजिये।

राखाल सिंह ने सिर खुजाते हुए कहा—यही तो आफत है। देने हैं एक सौ बारह रुपये पाँच आने तीन पाई। इतने रुपये हैं नहीं। शिवनाथ चौंक गया। अरे, एक सौ बारह रुपये पाँच आने तीन पाई कौन-सी बड़ी रकम है, और इतना भी उसके पास नहीं है। यह तो वह स्वप्न में भी नहीं सोच सका था।

राखाल सिंह बोले—रुपये जमा हो सकें, ऐसी नौबत ही कहाँ आयी! यही सोचिये कि आपकी शादी में काफी बड़ी रकम निकल गयी, फिर माँ का श्राद्ध! उसमें तीन हजार से ज्यादा खर्च हुए। यह लड़ाई का बाजार। एक रुपये की चीज तीन पर बिकती है। खर्चा तिगुना बढ़ गया है। मगर आय आपकी वही की वही है। फिर उस दिन फूफी गयीं। उन्हें भी सौ रुपये देने पड़े।

हुँ। आखिर होगा क्या?

आज पाँच रुपये घूँस देकर उसे लौटा दिया जाय।

पलक मारते भर में शिवनाथ में एक परिवर्त्तन आ गया, लहमे के अंदर उसकी वह उदासी जाने कहाँ गायब हो गयी, चेतना की स्फूर्ति से उसका अंग-अंग जैसे जाग पड़ा। उसने नजर उठाकर ओज से राखाल सिंह को देखा और कहा—नहीं।

उसकी उस नजर से राखाल सिंह सकुचा गये। शिवनाथ ने फिर बाहर की ओर उदासी से देखा। एकाएक खलिहान की मोरियाँ आज उसे एक नया ही रूप लिये दिखायी पड़ीं। वह रद्दा, फूस ओढ़कर ढेरों सम्पत्ति सञ्चित पड़ी है। उसे भरोसा हुआ। बोला—धान बेच डालिये, डेढ़ सौ, डेढ़ सौ क्या, दो सौ रुपये का बेचिये।

सिर खुजाते हुए राखाल सिंह ने कहा—धान !

हाँ।

लेकिन इस साल के आसार तो अच्छे नहीं, पिछले दो साल से फसल वैसी हुई नहीं। फिर कुआर में यदि पानी नहीं बरसा तो—' संकोच से वह अपनी बात समाप्त नहीं कर सके।

शिवनाथ अब ऊब-सा उठा। सवेरे से एक-पर-एक चिन्ता के मारे उसका हृदय भारी हो उठा। अब इससे छुटकारा मिले, तो जान बचे। इस आसन्न विपद से मुक्ति पाने के उपाय के नकारे जाने से वह खीझ उठा। फिर भी अपने को भरसक दबाकर उसने कहा—इस समय इस अगर-मगर को बाद ही दीजिये सिंहजी। आगे क्या होगा, यह फिर समझ लेंगे। अभी जो कह रहा हूँ, वही कीजिये।

राखाल सिंह ने फिर एतराज नहीं किया। वे चले गये। इस बेचैन बनानेवाली चिन्ता से बहरहाल फुर्सत पाकर शिवनाथ फिर फूफी की बात सोचने लगा। उनका रूठना, उनकी खामियाँ उसके हृदय में वैसे ही धीरे-धीरे बढ़ने लगीं, जैसे कि वैशाख की साँझ में बादल बढ़ा करते हैं। लेकिन किसी भी प्रकार वह अपने को उदासी से नहीं बचा सका। गंगा नहा-कर भी जैसे छूत की बीमारी के वीजाणु के प्रभाव को नहीं मिटाया जा सकता, उसी तरह चिंता के बीज उसके अन्तर में फैल गये थे, जिसके प्रभाव से ही यह उदासी थी। वह किसी भी जतन से नहीं मिटायी जा सकती थी।

थोड़ी देर के बाद राखाल सिंह फिर आये। उनके पीछे लगा आया गाँव का एक धान-व्यापारी। उसने शिवू को प्रणाम किया। राखाल-सिंह ने पूछा—क्या आज्ञा......

शिवनाथ उनकी अधूरी बात समझ गया। बोला—धान दे दीजिये।

सिर खुजाते हुए राखाल सिंह बोले—तीन रुपये का भाव ते पाया।

ठीक है।

व्यापारी ने कहा—सो आप बाजार बूझ लें। अगर पाई भी कम बनाई हो, तो दूना दूँगा। वह गिरहकटी किसुन नहीं करता। कोई साबित कर दे, तो गिनकर मुझे पचास जूते मारिये।

थोड़ा हँसकर शिवू ने कहा—अगर वैसा भी हो, तो यह जूते मारना तो मुझ से नहीं हो सकना। मैं जाँच-पड़ताल भी नहीं करता। काम करो अपना!

व्यापारी ने धोती की गाँठ खोलते हुए कहा—रुपये मैं साथ ले आया हूँ—गिन लीजिये। पहले आपकी यह जरूरत टल जाय, फिर मैं धान ले जाऊँगा। तब तक बोरे और गाड़ी लिये आता हूँ।

राखाल सिंह बजा-बजाकर रुपये गिनने लगे। व्यापारी ने कहा—बाबूजी, काम मैं साफ-साफ चाहता हूँ, रुपये पहले ले लो बाबा, चीज मैं फिर लेना रहूँगा। यह मैं सह ही नहीं सकता कि कोई कह दे कि मेरे जिम्मे उसकी पाई भी रह गयी है। मैं बोरा-मजूरा लेकर अभी आया। फिर वैसे ही एक बार उसे प्रणाम करके वह चला गया।

रुपये चुका दिये गये। रसीद मिल गयी। चपरासी ने लम्बा सलाम ठोंककर कहा—हुजूर, मेरे पावने के लिये हुक्म हो जाय।

शिवनाथ ने चकित होकर पूछा—तुम्हारा पावना कैसा?

फिर सलाम बजाकर बोला—हुजूर लोगों के दरबार से थोड़ा-बहुत इनाम मिला करता है।

शिवनाथ उसे गौर से देखने लगा। उसके एक आँख नहीं थी। देखने में वह जैसा ही नम्र दिखता था, वैसा ही क्रूर भी था। विचित्र जीव! फिर भी उसने उसकी कही अनसुनी नहीं की। बोला—सिंहजी, इसे एक रुपया दे दीजिये।

धान बेचते-बेचते एक बज गया। कुरता उतारने के लिये शिवनाथ

ऊपर गया। कुरता उतारकर उदास आँखों से वह दुमंजिले की खिड़की से बाहर देखने लगा। इस उदासी में उसके जीवन की गति खो-सी गयी है। शरत् के अन्तिम दिनों का आकाश गाढ़ा नीला दीख रहा था, कहीं भी मेघ का नाम-निशान नहीं। धूप आमतौर से शरत् में होनेवाली धूप से तेज थी। हरे-भरे कोमल पौधों के पत्ते मुरझा गये थे। गौरी एक ग्लास शरबत लेकर कमरे में आयी। उसने शिवनाथ की ओर शरबत का ग्लास बढ़ाते हुए कहा—भला, धान क्यों बेचा तुमने? धान तो खेतिहर बेचा करते हैं।

यह बात शिवनाथ को तीर-सी लगी। उसने गौर से गौरी की ओर देखा, उसके चेहरे पर उपेक्षा का भाव रेखाओं में फूट पड़ा था। उसने अपने को सम्हालकर कहा—यकायक कुछ रुपयों की जरूरत आ पड़ी; सेस का सर्टिफिकेट आ गया था।

अचरज से उसने पूछा—यह सर्टिफिकेट क्या बला होती है?

जमींदारी की लगान के साथ सरकार को सेस देना पड़ता है। वह सेस जब बाकी पड़ जाता है, तब सरकार कुर्क से इसी तरह वसूल करती है।

कुर्क? यानी जिसमें बर्तन-भाँड़े तक उठा ले जाते हैं?

हाँ, वही! रुपये चुका देने से चीज नहीं उठा सकते।

ऐं, तुम्हारे नाम कुर्क आया था? बर्तन-भाँड़े नीलाम करने आये थे लोग?—गौरी के स्वर में हताशा, उपेक्षा, क्रोध का एक अजीब-सा मेल हो गया था दूसरे ही क्षण वह रो पड़ी। लाज से शिवनाथ का सर बरबस झुक गया। और सिर्फ लाज ही नहीं, गौरी की ओर ताकते हुए वह सिहर उठा। रात मनुष्य-जीवन के जीवधर्म की जन्मजात प्रेरणा में, नस-नस को फाड़ देनेवाले खून के आवेग में, जवानी के स्वप्न की मोहभरी नजरों में, उस नीले आलोक की छटा में गौरी, फूल जैसी सुन्दर और कोमल दिखी थी, किन्तु आज दिन के निर्लज्ज प्रकाश में शिवनाथ गौरी का स्वरूप देखकर दंग

रह गया। उसकी आँख से, मुँह से, शिवनाथ को ऐसा लगा, उसके अंग-अंग से उस्तरे की पैनी धार-सी दंभ की कठोर हँसी छिटक रही है। रात के प्रकाश में उसके जिस स्निग्ध कपाल पर रोशनी की परिछाईं पड़ रही थी, दिन में शिवनाथ को उस पर विरक्ति की सिंकुड़न दिखायी दी। रात उसके होंठों के कोने पर आँकी हुई जिस हँसी पर दुनिया मोहित हो गयी थी, सवेरे अधरों के उसी कोने पर शिवनाथ आड़े व्यङ्ग्य की हँसी में छुरी की तेज धार देखकर काँप उठा।

खा-पी चुकने के बाद गौरी ने कहा—एक काम क्यों नहीं करते? भैया मुझसे कह गये हैं, तुम मामा के दफ्तर में एक नौकरी कर लो। कहते ही जगह मिल जायगी। वहाँ रहकर व्यापार का तजुरबा हो जाय, तो अपना कारबार शुरू कर दो। या अगर अभी से ही व्यापार करना चाहो, तो मामा तुम्हें रुपये दे सकते हैं। बाद में तुम चुका देना।

शिवनाथ चुप रहा। वह कमलेश और रामकिंकर बाबू की बात सोचने लगा। उसे सब कुछ याद आ गया, उसी के घर खड़े होकर उनका आँखें रँगाना, कलकत्ता के फुटपाथ पर उनका लाल-पीला होना, कमलेश की उस दिन की दून की बात—कोयले के रोजगार में लाखोंलाख का मुनाफा! एक-एक बात उसके सुई के समान चुभ रही थी।

गौरी बोली—चुप क्यों हो गये?

फीकी हँसी-हँसकर शिवनाथ बोला—जरा सोच देखूँ।

इसमें सोचने की कौन-सी बात है? नौकरी करोगे, आमदनी होगी। इसमें सोचना क्या?

शिवनाथ ने रंगकर कहा—गुलामी लिखने के पहले सोच तो लेना ही पड़ेगा। खास करके जिसकी गुलामी लिखनी पड़ेगी, उसके बारे में तो-विचारना जरूरी है।

गौरी का आँख-मुँह सूर्ख हो उठा। उसने कहा—क्यों, मेरे सगे-सम्बन्धियों को तुम हिकारत की निगाह से देखने हो?

शिवू ने दृढ़ता से कहा—नहीं-नहीं, मैं उन्हें तुच्छ नहीं समझता। हाँ, एक बात तुम्हें जान लेनी चाहिये कि मेरे लिये रुपये पैदा करना ही बड़ी बात नहीं है। मैं जीवन में उससे भी बड़ा काम करना चाहता हूँ।

गौरी अचम्भे में आ गयी। पूरी बात को वह समझ भी नहीं सकी और जले हुए जी से बिना कुछ कहे उससे रहा भी नहीं गया। वह बोली—यानी चूँकि मैं तुम्हारे पाले पड़ी हूँ, इसलिये मुझे भी तुम्हारे साथ दर-दर भीख माँगनी पड़ेगी?

शिवनाथ बोला—अगर भीख ही की नौबत आयी, तो मैं ही माँगकर तुम्हें खिलाऊँगा—तुम्हें माँगनी नहीं पड़ेगी।

गुस्से से मुँह फिराकर गौरी ने कहा—मेरी रहने दो, मेरे लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। मेरा ठिकाना मेरे माँ-बाप ही कर गये हैं। अपनी निबेड़ो।

शिवनाथ अवाक होकर क्रोध और अचरज से उसे देखने लगा। मारे गुस्से के वह बेताब हो रहा था, किन्तु फूट पड़ने के पहले ही वहाँ से चला गया।

कचहरी पहुँचकर वह इस तरह बैठ गया, जैसे बहुत अस्वस्थ हो। दबा हुआ क्रोध मन में अंगारे-सा जल-जल उठता था। इतने में सतीश अन्दर आया। शिवनाथ तलवे से सिर तक जल उठा। चिल्लाकर बोला—क्या है, किसने तुमसे यहाँ आने को कहा?

भयभीत होकर सतीश ने दो-तीन चिट्ठियाँ और अखबार मालिक के सामने रख दिये। बोला—डाक है सरकार!

डाक! नर्म होकर शिवनाथ ने चिट्ठी और अखबार को उठा लिया—। सतीश ने भागकर सन्तोष की साँस ली। दोनों चिट्ठियाँ सदर से वकील

की भेजी हुई थीं। उन्हें एक तरफ रखकर उसने अखबार को खोला।

उफ्, पश्चिम में न्यूपोर्ट, इप्रेस, मार्ने, बेल फोर्ट, माइन कोई छ-सात सौ मील के इलाके में घनघोर लड़ाई चल रही है। जर्मन फौज ने पेरिस के पास ही अड्डा गाड़ दिया है। उधर पूरब में लगभग नौ सौ मील के घेरे में लड़ाई फैल गयी है। राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के लिये लाखों लाख जीवन, अपार धन-ऐश्वर्य निछावर हो रहा है। भारत से भी फौज भेजने की तैयारी हो रही है।

अखबार पर से आँख उठाकर शिवनाथ ने आकाश की ओर देखा। राष्ट्र का सम्मान। राष्ट्र—देश, जन्मभूमि! सहसा जैसे जीवन के मंच का पर्दा बदल गया। जीवन के आसमान पर कामना की काली घटायें घिर आयी थीं। उनके फटते ही फिर से वही आकाश झाँकने लगा, उसके वही नक्षत्र जगमगा उठे। उसके मन की वही सोयी अभिलाषा फिर जाग उठी—देश की स्वाधीनता।

लेकिन उसकी राह कौनसी है? उस रास्ते की याद से ही, जो लाल खून से लथपथ है, वह काँप उठा। उसे उस दिन का वाकया याद आ गया, उस निहायत आकृतिवाले महापुरुष की बात याद आ गयी, साथ ही उसे अपनी माँ स्मरण आ गयी। गहरी चिन्ता में डूबे रहते-रहते वह बाहर निकल पड़ा। गाँव से बाहर खेतों से होकर वह काली के मन्दिर की ओर चल पड़ा। मेड़ों पर की पतली पगडंडी के दोनों किनारे धान के लहलहाते खेत। कमर जितने ऊँचे-ऊँचे पौधे। यकायक लगातार उठनेवाली सों-सों की आवाज उसके कानों में आयी। वह ठिठककर खड़ा हो गया। कहाँ से आ रही है यह आवाज? काहे को आवाज है? बहुत गौर करके तेज निगाह से देखने पर उसे पता चला, आवाज जमीन से उठ रही है। बारिश न होने से, धूप की आँच से जमीन का पानी सूखता जा रहा है—मिट्टी में दरारें पड़ रही हैं।

उफ्, यह प्यासी मिट्टी का हाहाकार है—मिट्टी पुकार रही है। मिट्टी, माँ—देश—जन्मभूमि बोल रही हैं। उसकी आँखों में पानी भर आया। हाँ, बोल ही तो रही हैं और उसने मानों सचमुच ही मिट्टी के आवरण के नीचे जाग्रत धरती-देवता को प्रत्यक्ष देखा। देखते ही देखते जमीन की सूत जैसी पतली दरारें बढ़ती जाने लगीं। अब फूटे--तब फूटे, धान के ऐसे पौधों के लम्बे पत्ते मुरझाकर बीच से टूट-टूट जाने लगे। लक्ष्मी जैसे देश का त्याग कर रही हों।

लेकिन एक आकस्मिक कोलाहल से उसकी यह तन्मयता भी जाती रही। देखा, पास ही दो आदमियों में गरम-गरम बातें हो रही हैं। और इतने ही में उनमें से एक ने दूसरे के गाल पर एक चाँटा लगा दिया। तब तक दूसरे ने कोई चीज सम्हाल ली—दूर होते हुए भी शिवनाथ समझ गया—वह कुदाली है। वह चीख उठा--अरे रे···आवाज के साथ-साथ शिवनाथ खुद दौड़ पड़ा। उसके चीखने का सुफल हुआ। लड़ाई करने पर तुल जानेवाले दोनों आदमियों ने उसे चीन्हा और क्रोध से एक दूसरे का मुँह देखते हुए खड़े हो गये।

पास पहुँचकर शिवनाथ ने कहा—राम-राम! करते क्या हो तुम लोग! अभी-अभी तो खून हो गया था, समझ लो।

दोनों के दोनों खेतिहर थे। शिवनाथ को देखकर अदब से थोड़ा खिसककर खड़े हुए। एक बोला--आपने तो देखा बाबू, इसने मेरे को एक चाँटा जमा दिया। कम्बख्त की हिम्मत देखिये!

दूसरे ने कहा--चाँटा न लगाऊँ तो क्या करूँ! तू ही बता, तू ने चोरी से मेरा पानी अपनी तरफ क्यों फिरा लिया।

पानी तेरे बाप का थोड़े ही है! एँह, मेरा धान मरे और ये बड़े वो हैं कि डाँड़ का पानी अकेले ही ले लेंगे।

बगल के नाले में झरने का पानी झिर-झिर करता बह रहा था—यह

लड़ाई उसी थोड़े-से पानी के लिये हो रही थी। वह आदमी कहता जा रहा था—ओह हो, मेरा लहलहाता धान मरकर ढेर हो जाय और अकेले उसका धान पककर भार से झुक जाय! और सहसा वह रो पड़ा।

शिवनाथ लम्बी आह भरकर बोला—अच्छा, खेतों को पटाने का क्या और कोई उपाय नहीं है?

आँखें पोंछते हुए उसने कहा—सरकार, देवता न बरसे, तो धरती की प्यास भी मिट सकती है कहीं? तब, अगर आप लोगों की दया हो जाय, तो कुछ-कुछ आशा हो सकती है—अगर आप लोग पोखरे का पानी काट दें, तब।

हमारे पोखरे का पानी?

जी नहीं। इस बैहार में आपके पोखरे का पानी नहीं पहुँचेगा। सभी बाबू लोग ऐसा करें, तब हो सकता है।

शिवनाथ ने दोनों को दिलासे देकर लड़ने से रोका और घर की ओर लौटा। राह के दोनों सिरे से एक-सी सों-सों की आवाज उठकर बैहार के वायु-मण्डल में मिलती जा रही थी। बैहार के बाद उस परती में धूल उड़ने लगी थी—उसके बाद गाँव, जहाँ लोगों के कलरव के सिवाय और कुछ सुना नहीं जाता। लेकिन शिवनाथ के कानों में वही सों सों की आवाज अब भी गूंज रही थी—मिट्टी की माँ पानी माँग रही हैं—यह सुजला सुफला मलयज शीतला माँ प्यास से चौचीर होती जा रही हैं।

कचहरी पहुँचकर उसने नायबजी को आवाज दी।

नायबजी सिरिश्ते में बही लिख रहे थे। आवाज पाते ही चश्मे को नाक की नोंकपर खींचकर भौं और ऐनक के बीच की फाँक से देखते हुए आकर खड़े हो गये। बोला—जी, मुझे पुकार रहे थे?

हाँ। किसन को बुलवाकर डुगडुगी पिटवा दीजिये कि हमारे जितने पोखर हैं, उन सब का पानी हम छोड़ देंगे। मगर पानी के लिये जिसमें

आपस में लड़ाई-झगड़ा न हो। लोग ही अपनी पंचायत बना लें और हिसाब से पानी बाँट लें।

राखाल सिंह ने अचरज से दोनों आँखें फाड़कर कहा—ऐसा क्यों ?

हाँ, मिट्टी में दरारें पड़ रही हैं, धान मर जायगा।

लेकिन बहुत रुपयों की मछलियाँ बर्बाद हो जायँगी।

सो हो, दूसरा कोई उपाय भी नहीं। मछलियाँ फिर हो जायँगी। धरती फट रही है। धान मर जायगा, तो आदमी नहीं बचेंगे।

लेकिन कितने रुपयों की मछली बरबाद जायगी, यह मालूम है ?

नहीं मालूम। पानी हर हालत में देना ही पड़ेगा। और मौजों में भी खबर कर दीजिये, जहाँ जितने पोखर हैं, सब का पानी काट दिया जाय। चाहे अपना महाल न भी हो।

शिवनाथ अन्दर चला गया। दोपहर की जो खीस थी, काफूर हो गयी। राखाल सिंह अपने तईं सिर हिलाकर बुदबुदाते रहे—उहूँ, औरों के इलाके में पानी क्यों देने लगे हम ? हमें क्या गरज पड़ी है ? हाँ, अपने गाँव में—वह भी रैयत पहले इकरार कर लें कि मालगुजारी ठीक-ठीक चुका देंगे—तब पानी देना वाजिब है—मालिक का धरम है। क्या खयाल है किसन ?

किसन बोला—अब मैं क्या कहूँ, हुकुम तो सुन ही लिया। हठात् बड़े क्षोभ से उसने कहा—तालाब में बारह-बारह, चौदह-चौदह सेर की एक-एक मछली है। कुछ कतला तो बीस-बीस सेर तक का है।

राखाल सिंह बोला—तुम पगले तो नहीं हो गये ? उस तालाब में मछली के लायक पानी रखे बिना मैं छोड़ सकता हूँ कभी ! वैसा करना होगा, तो नौकरी को नमस्कार कर लूँगा।

गौरी चुपचाप बिछावन पर पड़ी थी। शिवनाथ ने भीतर जाकर कहा—खबर क्या है, अभी भी पड़ी ही हो ?

निर्विकार की नाईं गौरी बोली—बस, पड़ी ही हूँ।

थोड़ी-सी चाय बना दोगी ?

रसोईदारिन से या नित्तो से कहो न।

तुम्हीं कह दो। मुझसे अब नहीं होता। पसीने से नहा गया हूँ।

गौरी उठ बैठी। बोली—इस धूप में आखिर जाना कहाँ हुआ था ?

बैहार गया था—शिवनाथ की छाती आवेग से भर उठी। बोला—जानती हो गौरी, वहाँ मुझे दंग रह जाना पड़ा। लगा, मिट्टी बातें कर रही है। पानी सूख गया है। खेतों में दरारें पड़ती जा रही हैं। प्यास से मनुष्य जैसे हाहाकार कर उठता है, बैहार से अनवरत वैसी ही आवाज उठ रही है।

गौरी ने कहा—मेरी तो बात ही क्या, मेरी दस पुश्तों में किसी ने कभी ऐसी बात नहीं सुनी।—वह जाने लगी। शिवनाथ को खीझ तो हुई, फिर भी उसने समझा, यह गौरी का अभिमान है। उसने झट से उसका हाथ धर लिया। बोला—गुस्सा है न ? सुन लो।

न। हमलोग मामूली आदमी ठहरे, इतनी बड़ी-बड़ी बातें समझ में नहीं आतीं। हाथ छोड़ दो, चाय बना लाऊँ। और हाथ झटककर वह चली गयी।

थोड़ी देर में चाय का प्याला लेकर वह आयी। पूछा—और यह क्या हुक्म दिया है तुमने ?

ताज्जुब से शिवनाथ बोला—कौन-सा हुक्म ?

यही, सभी पोखरों का पानी काट देने का।

हाँ-हाँ, कहा है मैंने। तुमने बैहार की दशा ही नहीं देखी है गौरी—

अधीर गौरी ने जैसे उसके मुँह से बात छीनकर कहा—देखने की जरूरत भी नहीं। यह बताओ कि मछलियों का क्या होगा।

शिवनाथ आवेगमय होकर बोला—सब लोग ही मर जायँगे गौरी, अगर धान नहीं हुआ, तो सब मर जायँगे।

लेकिन मछली नुकसान होने का दाम कौन देगा?

वह नुकसान हमीं को उठाना होगा—इसके सिवाय कोई चारा नहीं। धान नहीं होने से अकाल पड़ेगा, ताज्जुब नहीं कि हमें भी दाने-दाने का मुहताज होना पड़े।

माफ करो बाबा, तुम्हारे धान को भी दंडवत और तुम्हारी जमींदारी को भी।

शिवनाथ चुप रह गया, इसका उसने कोई जवाब नहीं दिया। किन्तु उसका मन धीरे-धीरे खिन्न होता जा रहा था। इस उम्र में स्वार्थ की ऐसी लोलुपता देखकर उसका सारा हृदय क्षोभ की ग्लानि से भर गया।

गौरी ने फिर कहा—इसीलिये तो कह रही थी मैं कि नौकरी कर लो। नौकरी करोगे, तो कलकत्ता में आराम से रहोगे। यह आज पानी नहीं है, तो कल धान नहीं है, तो परसों अमुक नहीं है—यह सब की बला वहाँ नहीं रहेगी। यहाँ के पैसे जमा रहेंगे—स्थिति सुधरेगी।

शिवनाथ बोला—वह मुझ से नहीं होने का, तुम इसकी उम्मीद ही छोड़ दो। मैं इस धरती को छोड़कर कहीं नहीं जा सकूंगा।

शिवनाथ ने अपने से खड़े होकर अपने सभी पोखरों को कटवा दिया। मिट्टी की प्यास बुझाने के लिये, घाड़े पर घूम-घूमकर गाँव और बाहर के सभी पोखरों का पानी उसने एकबारगी निकलवा दिया। मछली कुछ तो बिक गयी, ज्यादा बरबाद ही गयी। राखाल सिंह और किसन आँखों का पानी नहीं रोक सके। बहुत सोच-विचारकर राखाल सिंह ने फूफी को पत्र लिखा, लेकिन जवाब नहीं आया। आखिर में हार-पारकर उन्होंने गोसाईंबाबा की शरण ली। गोसाईंबाबा ने कहा—यह रोकना मेरे बूते की बात नहीं भैया, दान-पुण्य के काम में मैं कैसे रोक सकता हूँ?

मास्टर रतन बाबू आये। कमर बाँधकर वे भी अपने छात्र का हाथ बँटाने लगे! बोले—ग्रेट, ग्रेट, दिस इज रियली ग्रेट! आइ एम प्राउड ऑव हिम, आइ एम हिज टीचर!

राखाल सिंह ने कहा—हिन्दी में कहिये जनाब, मैं अंग्रेजी नहीं समझता।

रतन बाबू बोले—यही बड़प्पन है, इसी को वास्तव में बड़ा आदमी कहते हैं। मैं शिवू का शिक्षक हूँ, मुझे इसका गर्व हो रहा है।

राखाल सिंह कुछ क्षण उनके मुँह की ओर देखते रहे। उसके बाद बोले—यह तो आप खूब कह रहे हैं साहब! कपड़ा फटे या फूटे, धोबी का क्या—वही कहावत! और बिगड़कर वे वहाँ से चले गये।

शिवनाथ की देखादेखी और भी बहुतों ने अपने पोखर का पानी कटवा दिया। लेकिन कोसों फैली हुई जमीन को देखते हुए वह पानी था भी कितना! जैसे ऐरावत की तीखी प्यास में डाबर का पानी!

उस दिन अपने किसी गाँव से पानी कटवाकर शिवू लौट रहा था। ढाई का वक्त हो रहा था। शरीर से मन ज्यादा थका हुआ था; निराशा से मन जैसे धूल में लोटना चाह रहा था। घोड़ा भी धीमे-धीमे चल रहा था—भूख-प्यास से वह मजबूत वाहन भी थककर चूर हो रहा था। शिवनाथ ने सुना, राह के दोनों ओर के खेतों से फिर वही सों-सों की आवाज उठ रही है। उसे ताज्जुब हुआ, कल ही तो इन खेतों में पानी पटाया गया है। आज ही फिर वैसी ही प्यास जाग उठी। उसने तेजी से घोड़े को बढ़ाया। घर पहुँचकर घोड़े को छोड़ दिया और भीतर चला गया। सतीश ने उसके हाथों कई चिट्ठियाँ दीं, जो डाक से आयी थीं।

एक चिट्ठी तो उसके मामा के यहाँ की थी। दूसरी को खोलकर देखा—यह गौरी की नानी की लिखी थी। उन्होंने लिखा था—गौरी के गये बहुत दिन हो गये। उसे एक बार लिवाना चाहती हूँ। गौरी ने

लिखा है, उसकी तबीयत शायद खराब रहती है। इसलिये एक बार जल्द से जल्द तुम गौरी को लेकर यहाँ आ जाओ।

उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं—गौरी ने लिखा है कि उसकी तबीयत खराब है! भीतर की आँखों से उसने गौरी को एँड़ी से चोटी तक एक बार देखा। हाँ, रंग थोड़ा मैला जरूर हुआ है, लेकिन स्वास्थ्य में तो वह नदी जैसी लबालब हो उठी है! अन्दर जाकर उसने चिट्ठी गौरी को दे दी—सुनता हूँ, तुम्हारी तबीयत खराब है।

थके और तपे शिवनाथ की बातों से एक आँच-सी आ रही थी। गौरी कुछ देर चुप रही, फिर सिर उठाकर बोली—तबीयत खराब की बात नहीं तो क्या लिखती कि ऐसे महापुरुष के साथ अपना रहना नहीं हो सकता, तुम लोग लिवा जाओ?

क्यों?

गुस्से के मारे शिवनाथ का सिर फटने-सा लगा।

क्यों क्या? महापुरुषगण स्त्री के साथ किस युग में घर-गिरस्ती करते हैं? इससे तो मेरा खिसक पड़ना ही अच्छा है, तुम क्यों संसार त्यागी बनो?

बहुत अच्छा। तो कल ही चली जाओ। मास्टर साहब तुम्हें पहुँचा आयेंगे। इतना कहकर माथे में तेल डाले बिना ही वह स्नानघर में चला गया। रूखे माथे पर चटपट ठंढा पानी उँड़ेलकर आप ही आप बोल उठा—आः!

दूसरे दिन सुबह की ही गाड़ी से गौरी रामरतन बाबू के साथ रवाना हो गयी। शिवनाथ गाड़ी पर चढ़ाने गया था, लेकिन उसने एक शब्द भी न कहा। गौरी भी ट्रेन की पहली खिड़की से बाहर देखती रही, घूँघट की ओट से भी उसकी ओर एक बार भी नहीं ताका।

घर आकर शिवनाथ घोड़े पर निकल पड़ा।

कुआर का आरम्भ। भोर को थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ने लगी थी—सवेरे ओस से सब कुछ जैसे भींग जाता। सूरज दक्षिणायन दूर-से-दूर जा रहा, मगर इस बार धूप का तीखापन नहीं गया। सवेरा बीतते-न-बीतते धूप से एक तरह की जलन निकलती, उस जलन के मारे मिट्टी की छाती का रस सूख-सूखकर खत्म हो चला। सुदूरप्रसारी खेतों में शस्यगर्भा अन्नपूर्णा सूखी धरती पर किसी प्यासी किशोरी-सी ही लोट पड़ी है। किशोरी के अंग-अंग में मृत्यु का फीकापन फैलता जा रहा है। धान के पौधों के पत्ते किनारे-किनारे से पीले हो गये हैं। इतने पर भी विकासोन्मुख शस्य की क्षीण गंध से सारा बैहार भर गया है। कानों में वही सों-सों की आवाज गूँज रही है; प्यास से तड़पकर मरनेवाली किशोरी के लिये, अपनी प्यास बुझाने के लिये धरती पानी माँगती हुई कलप रही है!

गौरी के यह सुनने को कान नहीं है, इसे देखने की आँखें नहीं हैं, इसको समझने का हृदय नहीं है। शिवनाथ की आँखें गीली, वह एक दीर्घ निश्वास छोड़कर आगे बढ़ गया।

छब्बीस

शुरू फागुन के दिन।

माघ बीतते-न-बीतते इलाकेभर में हाहाकर मच गया। लक्ष्मी की अपमृत्यु हो गयी, सूखकर धरती की छाती चौचीर हो गयी। वही भादों के बीच-बीच जो पानी बरसा था, उसके बाद अब तक बूंदभर पानी का ठिकाना नहीं! धान सींचने में पोखरों का पानी कातिक में ही चुक गया था। जिन पोखरों का पानी पीने के काम के लिये रख छोड़ा गया था, वे पोखर भी सूख चले थे। बैहार का बैहार जैसे धू-धू करने लगा—हरियाली का कहीं नाम तक नहीं। पानी की कमी से चैती फसल लगायी नहीं जा सकी, घास भी जल गयी; धरती की रुखाई से पेड़ों के पत्ते भी अबकी माघ ही में झड़ गये।

शिवनाथ कमरे में पड़ रहा था। किताबें चारों ओर फैली पड़ी थीं। रात का बिछौना वैसा ही पड़ा था। कमरे के कोनों में जाले पड़े थे, खाट के नीचे गर्द की परत-सी जमी पड़ी थी।

उसने ध्यान से पढ़ा—"फ्रांसीसी प्रजा तीन भागों में बँटी थी; जिनमें से दो तो थीं पादरियों और कुलीनों की जमायत, जिनकी तादाद मुश्किल से तीन लाख थी और उन्हें सारी सुविधायें थीं और तीसरा, जिनकी जनसंख्या कोई दो करोड़ थी, नितांत उपेक्षित, ठुकराया हुआ-सा था।

उसने घूम-घूमकर गाँवों की अवस्था देखी है, टिट्टीबल की भुक्खड़ों

की जमाग्त देखी है, सब से मार्के की बात कि मिट्टी के भीतर से उसने धरतीमाता के सूखे गले की करुणाभरी चीख सुनी है। इस दुःख को मिटाने का उपाय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह थक गया है, इसीसे विभिन्न देशों के इतिहास में इसके प्रतीकार का कोई साधन खोजने में लग पड़ा है। फ्रांसकी राज्य-क्रांति के इतिहास को वह बार-बार पढ़ने लगा। इस बेबस लाचारी और निराशा में भी जैसे उसे सांत्वना मिलने लगी। उसने और पढ़ा—अठारहवीं सदी में फ्रांसीसी रियाया अपनी कमाई का पाँचवाँ हिस्सा भी मुश्किल से अपने और अपने परिवार के लिये काम में ला सकती थी। चार हिस्से राजा की लगान, पादरियों के दशमांश और कुलीनों के पावने चुकाने में निकल जाते थे।

मुहल्ले में कहीं कोई हलचल का पता चला। बाहर के हल्ले-गुल्ले से अब उसकी एकाग्रता नहीं टूटती, ध्यान का उसे अभ्यास-सा हो गया था। लेकिन आज की इस चहल-पहल से उसका ध्यान बँट गया। अचानक ही उसे कल के एक निमंत्रण-पत्र की याद हो गयी। होली सिर पर आ गयी थी। रामकिंकर बाबू के यहाँ इस अवसर पर हर साल बड़ा उत्सव-समारोह हुआ करता। दामाद के नाते शिवनाथ को भी उसका न्योता मिला था। साल में इस अवसर पर रामकिंकर बाबू का परिवार यहाँ जरूर ही आया करता। आज उन सब के आने की बात थी। शायद इसी से घर-द्वार साफ-सुथरा किया जा रहा होगा! गौरी भी उनके साथ आनेवाली है! पिछले कई महीनों से गौरी कलकत्ता है। शिवनाथ बराबर पत्र देता रहता है, गौरी उनका उत्तर भी देती रही है, लेकिन उनमें न तो कोई आनंद था, न आग्रह। एक दीर्घ निश्वास भरकर शिवनाथ ने पुकारा—नित्तो!

उत्तर रसोईदारिन रतन यानी शिवनाथ की रतन दीदी ने दिया। बोली—वह तो बहू को देखने चली गयी—आज वे लोग कलकत्ता से आ गये हैं न? क्यों, कोई काम था?

शिवनाथ चुप खड़ा रहा। गौरी के आने के समाचार से उसका मन कैसी तो एक तन्मयता में डूब गया। गौरी आ गयी! उसकी धड़कन जैसे तेज हो गयी।

रतन ने फिर पूछा—शिवू, नित्तो से कुछ कह रहे थे भाई। कहो, वह नहीं है, तो मैं तो हूँ?

शिवू थोड़ा निश्चिन्त होकर बोला—चाय पीने का मन था दीदी।

रतन ने कहा—चाय तो कई बार पी चुके, फिर पिओगे? इतनी चाय पीने से नाक से खून जो बहेगा! एक ग्लास गरम दूध ही पी लो।

शिवनाथ बोला—राम कहो, दूध तो बछड़े पिया करते हैं।

रतन हँस पड़ी। बोली—नीबू का शरबत बना दूँ?

शिवनाथ बोला—ऊँह हूँ, शरबत पुरोहित-पंडितों के पीने की चीज है।

रतन ने चूल्हे से कड़ाही उतारते हुए कहा—अच्छा बाबू, चाय ही चढ़ा देती हूँ।

शिवनाथ फिर कुर्सी पर जाकर बैठ गया। इतिहास के पन्ने उलटे, मगर एक हरफ नहीं पढ़ा गया। उससे आँखें हटाकर वह खिड़की से रामकिंकर बाबू के घर की ओर झाँकने लगा। बड़े दिनों के बाद फिर उसका मन आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा।

चाय का प्याला लिये हँसती हुई नित्तो अंदर आयी—भैया जी, भाभी आयी हैं। मैं मिल आयी उनसे।

हुँ। शिवनाथ के मन में सवाल तो सैकड़ों उठ रहे थे, लेकिन नित्तो के आगे उसे लाज-सी लगी। वह इस घर की बड़ी पुरानी नौकरानी है, इससे उसके सामने झिझक हुई। जैसे इससे उसको कोई मतलब ही न हो, वह बोला—हुँ।

नित्तो बोली—अब की भाभी खासी तंदुरुस्त हैं। रंग भी निखर आया है और तीन-चार अँगुली लंबी भी लगती हैं।

शिवनाथ ने हँसकर कहा—बहुत अच्छा!—लेकिन उसके मन की उद्विग्नता रह-रहकर बढ़ने लगी।

नित्तो उत्साह से कहती ही जाने लगी—मैंने वहाँ भाभी की विदायी की बात कही। कहा, अब हमलोगों से भाभी की गिरस्ती नहीं सम्हलने की, आप लोग इन्हें भेज दीजिये। कहना था कि भाभी की नानी जो बिगड़ीं—! कहने लगीं, री दईमारी, मेरी नतिनी क्या अपने से चली जायगी! अपने भैया जी को भेज दे, पाँव पड़कर मना-मनू कर लिवा जायँ।

शिवनाथ के रक्त का तेज आवेग ठंढा पड़ गया। वह गंभीर होकर प्याले से घूँट लेता हुआ बोला—फिर?

नित्तो ने कहा—अब की भाभी के बहुत गहने हैं, सारी देह जैसे सोने में मढ़ी गयी है।

हुँ। शिवनाथ ने फिर एक घूँट चाय पी।

आप एक बार जाइये भैया जी, ले आइये भाभी को। अब और अच्छा नहीं लगता।

शिवनाथ निरुत्तर रहा। क्षोभ और चिढ़ से वह भर उठा। उसने फिर किताब पढ़नी शुरू कर दी—"लुई पन्द्रहवें के अपने ऐश-आराम में लाखों की रकम फूँकी जाती, साथ ही उसने उच्च वर्ग के लोगों को अपने जैसे निर्लज्ज दुष्कृत्यों के लिये प्रोत्साहित किया। नतीजा यह हुआ कि अपने निकम्मे और अयोग्य प्रभु की अनुप्रेरणा से कृपापात्र उच्च वर्ग ने समाज के पीड़ितों-उपेक्षितों का अधिक-से-अधिक शोषण करना शुरू किया।"

नित्तो लेकिन नाछोड़ बन्दा थी। बोली—भैया जी, भाभी को जरूर ले आइये, फूफी को भी लाइये और गिरस्ती जैसी गिरस्ती बसाइये। भला फूफी के बिना अब काम चलने को है? आज नहीं, तो कल को घर में नाती होगा।

शिवू ने खीझकर कहा—नित्तू, मेरे कान के पास बड़बड़ा मत। जा।

नित्तो को इससे चोट लगी। बोली—हमलोग तो नौकर-चाकर हैं—गिरस्ती की जिम्मेदारी का यह बोझ हमलोगों से नहीं उठाया जा सकता—इसीसे कहती हूँ। बुदबुदाती हुई वह नीचे चली गयी।

शिवनाथ चाय और किताब दोनों को ही छोड़कर उठ बैठा। फूफी की चर्चा होने पर वह इन दिनों ऐसा ही बेचैन हो उठता है, एक अजीब शर्मिंदगी से उसका चित्त दुःखी हो जाता है। संसार की प्रत्येक वस्तु से वितृष्णा हो उठती है और गौरी पर तो सब से अधिक! गौरी को ही वह इस दोष का भागी समझता है। इससे जी खीझ उठता है और धीरे-धीरे वह चिन्ता की गहराई में डूब जाता है। जब ऐसा होता है, तब वह जरूरत से ज्यादा संयमी, मितभाषी और चिन्ताशील बन जाता है। उसके बाद कामों की भीड़ का अध्याय शुरू हो जाता है, जिससे चूर-चूर होकर तब कहीं घर आना होता है। इस प्रकार वह शान्त और नियमित जीवन में आ पाता है। लेकिन; बार-बार ऐसा करते रहने से उसके स्वाभाविक रूप में भी कुछ उलट-फेर हो चला है। वह सारे संसार में हर कहीं एक दुःख की दशा का अनुभव करने लगा है। कल्पना और यथार्थ के सादृश्य के लिये गाँव-गाँव घूमकर लोगों की दुःख-दरिद्रता की सच्ची जानकारी उसे होती रही है। इधर जब मारा पड़ने के आसार दिखायी दिये, तो उसने यह जानना चाहा कि गाँव में किस-किस के पास कितने दिनों तक का अनाज है। इससे उसके मन में एक भावमय अनुभूति जागी, जो उसकी सहजानुभूति से मिलती-जुलती है।

आज भी उसने बाहर जाने की तैयारी की। पानी की बोतल को भर लिया। रतन से पूछा—मेरा जलपान तैयार है रतन दीदी?

रतन ने उसे एक बार देखा। बोली—अरे, आज फिर चमड़े की डोरी कैसे लगा ली गयी?

जरा बाहर जाना चाहता हूँ।

कहाँ?

रामपुर की खोज-खबर अधूरी पड़ी है। आज उसे पूरा कर देना है। नाश्ते का सामान इस थैले में भर दो।—कहकर उसने अपनी साइकिल बाहर निकाली। इधर घोड़े से जाना उसने बन्द कर दिया है! घोड़े को खाने-पीने का कष्ट हो जाता है और वह बार-बार लौटने की कोशिश में रहता है। रतन को यह मालूम है कि रोकथाम करने का कोई फल नहीं होगा, बल्कि त्योरी बदल जायगी या डाट सुननी पड़ेगी। इसलिये विना कुछ रोके ही उसने थैले में नाश्ता भर दिया। शिवनाथ ने हैट पहन लिया और चला गया।

शिवू को छेना की तरकारी प्यारी लगती थी, सो छेना खरीदकर रतन पका रही थी। शिवू चला जो गया, सो उसने अधपके छेना को आँगन में फेंक दिया और जूठन की ताक में बैठे हुए कुत्तों से कहा—ले, तू ही खा। और खाली कड़ाही को उसने रसोई में पटक दिया।

शाम को रामकिंकर बाबू के यहाँ से न्योता आया। रामकिंकर बाबू के अन्न से पली एक आत्मीया ने आकर रतन से पूछा—तुम्हारे भैयाजी कहाँ हैं?

रतन ने कहा—आओ, आओ। बैठो। आज ही आये न?

हाँ बहन, आज ही आयी। बैठने का समय नहीं। अभी-अभी बुलाहट होने लगेगी। भैयाजी को न्योता देने आया था। वे आज शाम को वहीं खायेंगे, वहीं रहेंगे।

रतन ने कहा—वह तो घर पर नहीं हैं।

ऍं। कहाँ गये हैं?

कहाँ, किस गाँव को गये हैं, उन्हें ही मालूम है। वही सवेरे के गये हैं, न नहाना हुआ है, न खाना। कब लौटेंगे, यह भी खबर नहीं।

अच्छा, तो मैं यही कह दूँगी।

साँझ होते-होते फिर आदमी आ धमका। रतन ने कहा—वह अभी तक नहीं लौटे हैं। थोड़ी देर के बाद खुद गौरी की नानी ही आ पहुँचीं। रतन ने जल्द-जल्द उनके बैठने का आसन बिछा दिया और अदब से खड़ी रही।

उन्होंने कहा—शायद यह जानकर गायब हो गया कि आज हमारे यहाँ न्योते में जाना पड़ेगा, क्यों?

झुककर रतन बोली—नहीं-नहीं नानीजी, आजकल उनका रवैया ही यही है। कभी खाते हैं, कभी नहीं। आधी रात के पहले तो कभी सोते ही नहीं। या तो कभी लौटने में ही आधी रात बीत जाती है, या घर भी रहते हैं, तो किताबें पढ़ते रह जाते हैं।

कुछ देर चुप रहकर गौरी की नानी ने पूछा—तुझसे एक बात पूछती हूँ रतन, उसकी चाल-चलन तो नहीं बिगड़ी है।

रतन जैसे सिहर उठी—भैया के यह दोष दूँ, तो तुम्हारे मुँह में पिल्लू पड़े।

निर्त्तो ने कहा—जो आदत उनकी हुई है, वह चाल-चलन बिगड़ने से भी बुरी है नानीजी। ऐसे ही आदमी विरागी बन जाता है।

गौरी की नानी ने कहा—पता नहीं कि मेरी बुद्धि कैसे मारी गयी। आँखों के सामने फुलवारी बनाने की साध थी और गले में रस्सी डाल ली। पास का सम्बन्ध करके मैंने बड़ी भारी भूल की है। खैर, वह जिस समय भी आ जाय, एक बार उसे भेज ही देना।—दीर्घ निश्वास छोड़कर वह चली गयी।

शिवनाथ रात के कोई बारह बजे लौटा। रास्ते में साइकिल की ट्यूब फट गयी। बारह मील का रास्ता साइकिल ढोकर उसे पैदल चलना पड़ा। धूल से सारा शरीर रँगा हुआ, थकावट से चूर, उसे देखकर सब कोई

भयभीत हो उठे। शिवनाथ ने कहा—सतीश, एक घड़ा पानी गरम कर दे। नहाना है।

रतन ने अचरज से पूछा—इतनी रात गये अब स्नान क्या करोगे ?

हाँ, नहाऊँगा। मारे धूल के सारा शरीर कचकचा रहा है। इतनी दूर से पैदल ही आना पड़ा है।

पैदल आना पड़ा है ?

हाँ। साइकिल बिगड़ गयी। जरा जल्दी करो सतीश। अब बैठा नहीं जाता।

रतन ने कहा—नानीजी न्योता कर गयी हैं।

शिवनाथ नाक-भौं सिकोड़ते हुए बोला—न्योता गछ क्यों लिया तुमने ? भला इतनी रात को कोई कहीं न्योता खाने जाता है ?

भला हमलोग कैसे जानते कि इतनी रात हो जायगी ? मगर वह कह गयी हैं, चाहे जितनी भी रात गये आये, भेज जरूर देना। इसपर मैं क्या कहती, कहो ?

हुँ। कहकर वह आराम कुर्सी पर थका-माँदा लेट गया। इस समय उसके मन की दशा अजीब-सी हो रही थी। न तो गौरी का आकर्षण रह गया था, न फूफी की याद जाग रही थी—माँ के स्नेह-स्पर्श की तरह पलकों पर नींद उतरती आ रही थी। नीरव रात्रि के अनागत कीड़े-मकोड़े का संगीत लोरी की तरह जटिल, किन्तु मधुर, झंकार उठाकर धीरे-धीरे लुप्त होता आ रहा था।

पानी गरम करके सतीश ने पुकारा। कोई आवाज नहीं मिली। रतन आयी। उसने देखा और नित्तो से कुछ बतियाकर मेज पर खाना ढँककर रख दिया। बिस्तर बिछाती हुई नित्तो ने कहा—रतन दीदी, पुकार लो न ? कहो कि खाकर बिस्तर पर सो रहें।

दक्खिन तरफवाले झरोखे से झाँककर इशारा करते हुए रतन ने कहा—वह देखो, उनकी खिड़की पर बहू ही खड़ी है, न नित्तो ?

नित्तो ने झाँककर कहा—हाँ, वही है।

अपनी नानी की खिड़की पर खड़ी होकर गौरी इधर को ही देख रही थी। रतन और नित्तो के हाव-भाव से वह ताड़ गयी कि वे उसी को देख रही हैं। सो खिड़की पर से खिसक पड़ी।

रतन ने कहा—नित्तो, इस घर के आसार अब अच्छे नहीं दिखायी देते। सकुशल हमलोग निकल पड़ें, तो खैरियत जानो।

नित्तो ने कहा—मैंने तो अपने पाँवों आप ही कुल्हाड़ी मारी है। मेरी तो सारी कमाई यहीं जमा है। बात करते ही जाना कैसे हो सकता है ?

दोनों कमरे से निकल गयीं। सतीश ने एक बार चारों ओर देख लिया और थाली से एक रसगुल्ला निकालकर गटक गया।

सवेरे माथे पर फल, मिठाई और दो बक्स लेकर तीन आदमी आये। नित्तो खुशी से बोल उठी—भाभी के बक्स आ गये ?

पीछे लगी गौरी को लिये उसकी नानी आयीं। पूछा—कहाँ हैं तुम्हारे भैया जी ? रतन ने अदब से कहा—अभी जगे नहीं हैं। कल रात के तीसरे पहर लौटे। साइकिल खराब हो गयी थी। छः कोस चल कर आये। आते ही कहा—मैं नहाऊँगा। मैंने न्योते की बात बता दी। मगर जब तक पानी गरम हुआ, वह आराम कुर्सी पर सो गये। न नहाना हो सका, न खाना। अभी तक उसी कुर्सी पर सो रहे हैं।

गौरी की नानी ने गौरी से कहा—तू ही क्यों नहीं जाती है रे हरामजादी—देख, वह जगा है कि नहीं। न जगा हो, तो पुकारकर जगा।

गौरी ने कहा—देखो नानी, शरारत मत करो। मैं नहीं जाती।

यानी तुझसे नहीं होगा। तो तेरे खसम को मैं क्यों जगाने लगी ! कहती हूँ—जा।

मुँह से तो गौरी 'ना' ही करती रही, मगर वह देखते ही देखते सीढ़ी पर पहुँच गयी। नानी ने मजाक से कहा—यह क्या रे हरामजादी, नहीं भी कहा और चल भी पड़ी। हाय री लजौनी लता!

कमरे के द्वार से ही उसने देखा, शिवनाथ बेखबर सो रहा है। सारा शरीर धूल से भरा है। सर के बाल धूल और पसीने से जकड़ उठे हैं। देह बहुत दुबली हो गयी है, देह का रंग धूप से जैसे जल गया है। टेबिल पर पुस्तकों का पहाड़ लगा है, मेजबत्ती अभी तक जल ही रही है। बगल में रात का भोजन ज्यों-का-त्यों धरा है! एक दीर्घ निश्वास भरकर उसने पुकारा—सुनते हो?

वह धीमी आवाज सोये शिवनाथ की चेतना को न छू सकी। उसने फिर पुकारा—सुनते हो!—फिर आगे बढ़कर झिझकती हुई उसे छू कर पुकारा—सुनते हो?

नींद से लाल हुई आँखें फैलाकर शिवनाथ ने कहा—ऐं। उसके आगे खड़ी गौरी सपने-सी लग रही थी, मगर उसने पुकार कर स्वप्न को वास्तविकता में बदलकर कहा—उठो, मुँह-हाथ धो लो। कल न दिन कुछ खाया, न रात। कुछ खा लो।

आँखें मलकर वास्तव को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हुए शिवनाथ ने पूछा—कब आयी तुम?

गौरी ने मान करके कहा—तुम नहीं गये, तो बेबुलाये ही आ गयी मैं!

ऐन वक्त पर जोरों की हँसी से सीढ़ी जैसे टूटने-टूटने पर आयी। गौरी ने सर के कपड़े को थोड़ा और खींच लिया और बोली—मौत भी नहीं आती तुझे।

शिवनाथ ने अचरज से पूछा—कौन है?

मैं हूँ बाबू साहब, मैं, और कौन होगा। दूती का काम करने आयी हूँ।—कहकर नानी कमरे में आ गयीं।

शिवनाथ ने उठकर उनको प्रणाम किया।

नानी ने गौरी से कहा—अच्छा तो चल रहा था वार्त्तालाप, मुझे देखते ही फिर पुरखिन जो बन बैठी! आखिर जा भी, मुँह-हाथ धोने को पानी मँगवा, चाय बना ला। खड़ी क्या रह गयी?

शिवनाथ बोला—मैं पहले नहाऊँगा।

नानी बोली--तो हर्ज क्या, ले आवे तेल-तौलिया, पीठ में जरा तेल मल दे। मुझसे क्या शर्म। मैं ठहरी बुड्ढी, आँखों से देख नहीं पाती। रिश्ते में भी नानी हूँ—फिर शर्म की कौन-सी बात!

शिवनाथ नहा आया। नानी इस बीच चली गयी थीं। गौरी मेज पर चाय और नाश्ता लिये इन्तजार कर रही थी। नित्तो ने कमरा बुहारना शुरू कर दिया था। शिवनाथ को देखकर गौरी बोली—जैसी शक्ल घर की बनायी है, वैसी ही अपनी। कितने काले पड़ गये हो, देखो तो जरा!

शिवनाथ जरा हँसकर रह गया, कुछ बोला नहीं। घर साफ-सुथरा करने के प्रसंग में नित्तो को गौरी की एक बात याद आ गयी--तस्वीरों का जाला झाड़ते समय गौरी ने एक दिन एक तस्वीर गिरा दी थी और चुराकर खाये हुए पान की पीक को खून समझकर घर में एक शोर पड़ गया था। उसने हँसकर पूछा--भाभीजी, घर झाड़ते वक्त एक बार आपने तस्वीर तोड़ दी थी, याद है आपको?

गौरी भी हँसने लगी। कहा—याद नहीं है भला! उफ्, जो फटकार पड़ी थी फूफी की! हाथ में चाय का प्याला लिये हुए शिवनाथ अनायास ही अनमना हो उठा। वह उदास आँखों से बाहर की ओर देखने लगा। उसके अचानक ही ऐसे उदास हो जाने से गौरी चकित हुए विना न रह सकी। उसकी भौंहों पर बल पड़ गये। और इधर नित्तो सवाल पर सवाल, प्रसंग पर प्रसंग उठाती चली जा रही थी। उसने पूछा—इस बार क्या-क्या नये गहने बनवाये हैं भाभी?

गौरी शिवनाथ की उदासी से खिन्न थी। बोली—अब नाम कितने गिनाऊँ गहनों के, एक दिन सब दिखा ही दूँगी तुम्हें।

भैयाजी को दिखला दिया है?

तुम्हारे भैयाजी की आँखों को गहने नहीं सुहाते। साधु ठहरे, उनको यह सब नहीं देखना चाहिये।

शिवनाथ फीकी हँसी हँसकर बोला—नहीं-नहीं, देखूंगा क्यों नहीं भला! मगर कोई दिखाये तब तो देखूँ!

दिखाये? आप भी खूब हैं! पांच-छ नये गहने तो मैं पहने ही हूँ। अरे-अरे, देखूँ। बहुत बढ़िया, यह कंठी खूब बनी है!

नित्तो ने पूछा—ये गहने नानी ने बनवा दिये हैं न भाभी?

गौरी बोली—नानी के क्या गरज पड़ी है कि गहने बनवा देंगी मुझे। रुपये तो माँ की वसीयत के थे, मामा ने बैंक में रख छोड़ा है। उन्हीं रुपयों में से कुछ के गहने बनवा लिये।

उत्सुकता से नित्तो ने पूछा—माँ कितने रुपये दे गयी हैं।

सूद और पूँजी, कुल मिलाकर चौदह हजार हुए हैं।

कुल मिलाकर सभी अंग के दो-दो गहने हो गये, न?

दो क्या, कहीं दो भी, तीन भी, हाथ में तो चार तरह के हो गये। दो तरह की चूड़ियाँ, बाला, ब्रेसलेट। हाँ कमर में एक ही तरह का हो सका है—इस बार चन्द्रहार गढ़वा लूंगी।

वैसी उदासी के बावजूद शिवनाथ को कौतूहल हो आया। सोने की यह विचित्र ही लालसा है! वह सोचने लगा—गहनों की यह प्यास क्या नारियों में जन्म के साथ ही लगी आती है! उसे अपनी माँ के बारे में याद पड़ी। उनके सधवा-जीवन की उसने तस्वीरभर देखी है, जिसकी भी ठीक-ठीक याद नहीं। उनके विधवा-जीवन को तो उसने आँखों ही देखा है—उन्होंने गहनों को कभी छुआ तक नहीं। और तो

और, गहने के नाम पर कभी उन्होंने एक भी रुपया नहीं लिया।

गौरी बोल उठी—मैं कहे देती हूँ, माँ के गहने तुड़वाकर मैं चन्द्रहार बनवाऊँगी। शिवनाथ ने कुछ हँसकर कहा—गढ़ाना।

गढ़ाना दूर की बात हुई, आज ही निकाल दो, आज ही दूँगी गढ़ने को।

नहीं, आज तो नहीं दे सकूँगा। दो-चार दिन बाद। आखिर इतनी जल्दी भी क्या है?

बाद-बूद मैं नहीं जानती, आज ही। आज देने में कौन-सी रुकावट है?

शिवनाथ कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—गहने दूसरी जगह रखे हैं, उन्हें लाना पड़ेगा।

दूसरी जगह से क्या मतलब? सास के गहने तो पतोहू के होते हैं। वे हमारे हैं। दूसरी जगह कैसे गये?

शिवनाथ ने धीमे-धीमे कहा—पूस की किस्त के रुपयों का प्रबंध इस बार नहीं हो पाया। उसीसे गहने गिरों रख दिये गये।

लहमेभर में गौरी के चेहरे पर एक अजीब भाव दिखायी पड़ा! अचरज, घृणा, क्रोध, निराशा की मिली-जुली अभिव्यक्ति! शिवनाथ उसके उस चेहरे को देखकर काँप उठा। देखते ही देखते गौरी की आँखों में आँसू झलक पड़े। शिवनाथ ने अपने को पीकर उसे सांत्वना देते हुए कहा—इस अदना बात के लिये रोने क्या लगी!

गौरी ने कहा—ऐसे झूठे भुलावे क्या दे रहे हो? दो दिन बाद रोना तो लिखा ही है।

शिवनाथ बोला—छिः।

गौरी ने तुनक कर कहा—इसमें छिः-छा की क्या बात है? किस्मत बिगड़ने से लोग रोते नहीं हैं क्या? मैं अपनी किस्मत को रोती हूँ।

कहते-कहते वह और भी तैश में आ गयी—नानी ने मुझे पानी में ही

फेंक दिया है। छिः-छिः। आपे से बाहर होकर वह जल्द-जल्द वहाँ से बाहर निकल गयी। शिवनाथ एक लम्बी साँस भरकर खड़ा रहा। उसे लगा, गौरी अशांति की आँच बिखेरती आती है, जिसमें उसका दम घुँटने लगता है। कुछ महीने पहले अपना ऐसा ही डरावना रूप दिखाकर वह गयी थी, ठीक वही रूप लेकर फिर लौट आयी है।

होली का त्योहार था। रामकिंकर बाबू की ठाकुरबाड़ी में नौबत भर रही थी। उसे उसकी आवाज नहीं रुची। शांति की खोज में उसने पुस्तक के पन्ने खोले, वह भी अच्छा न लगा। उसने बाहर आँखें दौड़ायीं, उदास हवा के रूखे झोंके उठने लगे थे, सूखी मिट्टी धूल होकर उन झोंकों में उड़ने लगी थी। इस धूलभरी प्रकृति की रूखी आकृति की कल्पना करते ही उसकी आँखों के आगे जरा देर पहले की गौरी का चेहरा झूल गया।

नित्तो इतनी देर से हाथ में झाड़ू लिये मौन बैठी थी। अब उसने कमरा बुहारना शुरू किया।

सत्ताईस

कोई चार महीने बीत गये। आषाढ़ का आगम। दोपहर होते न होते सारी दुनिया भय से हत-सी होकर घर में घुसी पड़ी थी। आसमान में एक साथ ही मानों द्वादश सूर्य का उदय हुआ हो; मेघहीन रूखा आकाश, धरती से आकाश तक धूल की परत कुहासे के पर्दे-सी पड़ी थी। क्षितिज दिखायी नहीं दे रहा था, वहाँ गाढ़े धुएँ का एक जाल-सा बिछ गया था। धरती की छाती की कई परत मिट्टी धूल हो-होकर उड़ गयी। वैशाख के महीने में दो-एक बार बरसकर मेघों ने मुँह छिपा लिया। आषाढ़ आ गया, मगर एक बूँद पानी नहीं। धान के बीये बोये नहीं जा सके, घास एक बार उगी और जल गयी। पृथ्वी के हरे-भरे रूप का स्मरण करके यही मालूम हो रहा था कि किसी ने उसकी खाल उधेड़ दी है। तमाम एक हाहाकार उठ रहा था—गाँव भिखमंगों से भर गया—अकाल के कारण दिखायी पड़े।

इस जलती दोपहरी में उस दिन भी शिवनाथ अकेले बैठा था। चेहरे पर व्याकुलता और चिन्ता की स्पष्ट छाया—इधर-उधर बिखरे बाल। बार-बार चिन्ता के आवेग से सिर में उंगलियाँ चलाकर बालों की यह गत उसने अपने ही बनायी थी। इतनी बड़ी सूनसान कचहरी में वह अकेले ही-था—एकदम अकेले। जैसी कि आदत थी, समय देखने के लिये उसने पीछे की दीवार की ओर देखा; लेकिन घड़ी जाने कब थम गयी थी।

इधर उसकी सफाई नहीं हुई, सो कभी कभी यों ही बंद हो जाती है। आराम-कुर्सी की बिनाई टूट गयी थी, बेन और कारीगर मँगवाकर उसे बुनवाना था, यह भी नहीं हो सका था। खैर ; यह तो बादकी बात है, पहले जमींदारी बच जाय, तो गनीमत। सरकारी मालगुजारी बाकी है, जिसके लिये सम्पत्ति नीलाम पर है। पाँच सौ रुपये नहीं चुकाये गये, तो नीलाम हो जायगी ! नायब, गुमाश्ते, प्यादे—यहाँतक कि नौकर-चाकर तक मालगुजारी की वसूली में गाँव-गाँव घूम रहे थे और उनकी प्रतीक्षा का मौन कष्ट शिवनाथ पल-पल भोग रहा था। इस कोशिश का जो नतीजा निकलेगा, वह उसे मालूम था—फिर भी उपाय तो करना ही था। राखाल सिंह और किसन बावले-से हो रहे थे। आज कई रैयत भी रोते-पीटते आये। उनका कहना था कि जैसे भी हो, इस जायदाद को बचाया जाय। पुश्त-दरपुश्त हम सब यहीं की छत्रच्छाया में रहते आये हैं, आज जैसे हम सब बहा न दिये जायँ। शिवनाथ ने सोच-विचारकर देखा कि ये जमींदार को तो पसंद करते हैं, मगर चाहते हैं कि नया जमींदार न हो, ऐसा क्यों ? उसे इसका कारण अपने पूर्वजों की उदारता ही मालूम पड़ा।

इसके महज कई दिन पहले उसने जोसेफ प्रधान का कथन पढ़ा था कि जमींदारी चोरी है।

वास्तव में जमींदारी ऐसी ही चीज है। उसने इस सत्य को तहेदिल से स्वीकार किया था, किंतु आज रैयतों की ऐसी श्रद्धा-भक्ति देखकर एवं नये जमींदार के हाथों अपने भविष्य के प्रति उन्हें चिंतित देखकर वह विचलित हो उठा। उसने सोचा, जैसे भी हो, जमींदारी को बचाना ही पड़ेगा। उसे लगा, ऐसे नाजुक समय में मास्टर साहब पास में होते, तो बड़ा अच्छा होता। सभी तरह के दुःख-कष्टों में वह बहुत बड़ा बल देते हैं। आज सवेरे वह भी रुपयों के ही प्रबंध में चल दिये थे। सवेरे ही उन्होंने कहा था—हाँ रे शिवू, इस मुसीबत से बचने का कौन-सा उपाय करेगा तू ?

शिवू ने स्वाभाविक ढंग से धीमे हँसकर कहा—उपाय करूँ भी तो क्या !

बड़ी देर तक सोच-विचार के बाद बोले—तेरी माँ के वसीयत के बहुत रुपये बहूरानी को मिले हैं। न हो तो उन्हीं से कह देख। तू बड़ा गधा है।

शिवनाथ जैसे चंचल हो उठा—नहीं-नहीं सर, वह मुझसे नहीं होने का।

रामरतन बाबू विस्मित होकर बोले—नहीं क्यों, बता।

शिवनाथ चुप लगा गया।

रामरतन बाबू गर्दन हिलाकर बोले—दिस इज वेरी बैड। इट मीन्स—

शिवनाथ ने बीच ही में कहा—रुपये क्या उसके अपने पास हैं मास्टर साहब, रुपये तो उसके मामा के पास कलकत्ता में हैं—उनके रोजगार में लगे हैं। अभाव के नाम पर उनसे माँगना क्या अच्छा होगा?

हूँ। यह तू ठीक ही कह रहा है। मैं और ही कुछ सोच रहा था। सोचा, बहूरानी से अच्छे सलूक नहीं हैं।

शिवनाथ ने उतावला होकर कहा—बोलपुर में तो बड़े-बड़े महाजन हैं और आपकी जान-पहचान भी उनमें से बहुतों से है। क्या वहाँ किसी से आप पाँच सौ रुपये कर्ज नहीं दिलवा सकते?

कुछ सोचकर रामरतन उठे, अपना छाता और लाठी उठाकर बोले—ऑल राइट, मैं चला। देखूँ, क्या कर सकता हूँ! और वे चले गये।

राखाल सिंह ने यह सुनकर कहा—कर्ज लेने की गुञ्जाइश होती तो मैं क्या चूक सकता था बाबू? कर्ज लेने की तो कोई गुञ्जाइश ही नहीं है। आप अभी नाबालिग ही जो हैं। जमींदार के लड़के इक्कीस साल हुए विना बालिग नहीं होते।

रामरतन बाबू के जाने से शिवनाथ के मन में आशा की एक किरण दिखायी पड़ी थी, नायब जी की बातों से वह भी डूब गयी। इससे तो बेहतर था कि मास्टर साहब यहीं रह जाते, दिलासा देनेवाला तो एक

आदमी होता ! उसे इसी के साथ फूफी याद आ गयीं। अगर वह होतीं, तो उसे इसकी फिक्र ही नहीं करनी पड़ती।

राखाल सिंह, किसन, गुमाश्ता कौड़ीराम मिश्र सभी रैयतों को बुला लाने के लिये गये हैं कि शिवनाथ भी उनसे कहे कि आदमी पीछे चार आना, आठ आना, एक रुपया, जो भी बन पड़े, दें। हजार रैयत हैं, चार-चार आने भी दे दें, तो ढाई सौ, आठ-आठ आने दें तो पाँच सौ रुपये बात कहते जमा हो जायँ। सतीश, शँभू, मोती—ये सब भी किसी दूसरे मौजे को इसी काम से गये थे।

अकेले बैठकर सोचते-सोचते शिवनाथ का मानों दम फूलने लगा। संपत्ति चोरी है—यह जानने के बाद भी वह उतावला हो उठा है, संपत्ति की ममता से वह व्याकुल हो उठा है। रैयतों की विनती, बाप-दादों की धरोहर—यह सोच-सोचकर उसकी आँखों में पानी भर आने लगा। गौरी के स्वभाव की याद आते ही उसके प्राण काँप उठने लगे—कहीं संपत्ति चली जाय, तो वह जो उग्र रूप धारण करेगी, उसकी कल्पना करते ही उसे लगने लगा कि तब सिवाय आत्महत्या के कोई उपाय ही नहीं रह जायगा।

शिवनाथ रास्ते पर आ खड़ा हुआ। धूप से धरती तो तवे-सी जल रही थी। रास्ता सूनसान पड़ा था, किसी चिड़िया की बोली भी नहीं सुनाई पड़ रही थी। उसने उत्सुकता से आगे की ओर ताका, इसी ओर से रैयतों के साथ राखाल सिंह के आने की बात थी। लेकिन; कहीं कोई नहीं था। उसने दूसरी ओर देखा, जिधर से गुमाश्ता कौड़ीराम तथा और लोगों को आना था। जितनी दूरतक आँखें जा सकीं, कहीं किसी आदमी की झाँकी नहीं दिखायी दी। वह लौट पड़ा। देखा, एक ओर से हड्डियों का एक ढाँचा लड़खड़ाता हुआ चला आ रहा था।

एक नौजवान औरत। सारे शरीर में हड्डियाँ ही बच रही थीं। उसने नकियाकर कहा—बाँबू साँहबँ।

उस पर नजर पड़ते ही शिवनाथ के रोंगटे खड़े हो गये। अठारह-उन्नीस की उम्र होगी, लेकिन सारे शरीर में जवानी का कोई चिह्न नहीं—मानों चमड़ों से ढँका कोई कंकाल हो, किसी खूँखार जानवर ने जैसे अपनी रुखरी जीभ से उसके सारे शरीर को चाट लिया हो।

बाँबू साँहबँ, उँक मुट्ठीं भाँत!

उसके शरीर की बदबू से नाक रखना मुश्किल था। मुँह फेरकर शिवनाथ ने कहा—अन्दर जाकर पूछो, भात होगा, तो मिल जायगा। मगर अब होने की उम्मीद तो नहीं है।—अचानक उसे याद पड़ गया कि कल यही औरत सफाई करके चार पैसे ले गयी है। शाम को खाकर कुछ जूठन भी ले गयी है और फिर आज ही हाय अन्न करती फिर रही है। यह इसका स्वभाव है कि अभाव?

वह बढ़ गयी। पाँव भी उसके ठीक नहीं पड़ रहे थे--एक से दूसरा टकरा जाता। उसे अपने विचार पर ग्लानि हुई--आप अपने आगे दोषी लगने लगा। शिवनाथ को लगा, उसके पेट में लाखोंलाख युग की भूख धू-धू जल रही है। पुश्त-दर-पुश्त वही उसकी भूख के अन्न को छीनता रहा है, आज वह खुद भी छीन रहा है। सिर झुकाये वह आगे बढ़ा। वह, आगे की मोड़ पर खड़े होने से और दूर तक देखेगा। कुछ ही दूर बढ़ने के बाद कुछ हल्ला-सा सुनाई पड़ा। रामकिंकर बाबू की ठाकुरबाड़ी के आगे भिखमंगों की भीड़ जमा थी। जूठन के लिये बैठे-बैठे सब शोर कर रहे थे।

ठाकुरबाड़ी के सामने जहाँ-जहाँ छाँह थी, वहाँ-वहाँ गुट बना-बनाकर भिखमंगे बैठे थे। कोई किसी के सर से जूँ बीन रही थी, कोई गधे मार रहा था, कहीं झगड़ा-झंझट भी चल रहा था! एक खजूर की छाँह में एक बुढ़िया बैठी थी। लगभग अंधी ही थी। वह आप ही आप बुदबुदा रही थी—भला यह भले घर के आदमी की बात? कहते हैं, मैं देख पाती हूँ, अन्धी होने का बहाना बनाया है? यह भी बात है कहने की?

कोई अन्धा भी बनता है कहीं ? आंखों से देख पाये और फिर भी दिन-भर में सौ बार ठोकरें खाकर मरे ?

अपनी असीम उत्कंठा के होते हुए भी शिवनाथ को इसपर हँसी आ गयी। उसने समझा, किसी ने जरूर बुढ़िया को बहाने बनाने का ताना दिया है, उसी से वह बौखला उठी है ! इस दुनिया में जिन्दा रहने के लिये अन्धापन ही उसकी पूँजी है। उसने पूछा—हाँ री बुढ़िया, तुझे किसने क्या कहा ? बकझक क्यों कर रही है ?

बूढ़ी बहुत बिगड़ गयी। हाथ चमकाकर कहा—ओह् हो, बकझक क्यों कर रही हूँ ! जरा बनना तो देखो इसका ! तुम्हीं ने तो कहा कि मैं आँखों से देख पाती हूँ, यह बहाना बनाया है।

एक दूसरे भिखमंगे ने उसे रोककर कहा—अरी ओ बुढ़िया, तू कह किससे रही है ! ये तो उस घर के बाबू साहब हैं, जिसने तुझे कहा है, वह तो चला भी गया।

सम्हलकर बुढ़िया ने शिवनाथ को प्रणाम किया—हाय-हाय, मैंने आपको नहीं कहा है बाबू ! अन्धी ठहरी, कुछ सूझता नहीं। आँख के आगे सादा कपड़ा ही फरफराता है। अन्दाज से मैंने सोचा—

शिवनाथ बोला—ठीक है, मैंने गलत नहीं समझा है।

बूढ़ी ने तुरन्त हाथ जोड़कर कहा—हाँ बाबा, एक टुकड़ा चिथड़ा अन्धो को—बड़ा धरम होगा।

शिवनाथ ने हँसकर कहा—अच्छा, अच्छा ; दूँगा।

दूसरे ही क्षण 'मुझे दो, मुझे दो' का शोर उठा। जो बैठे हुए थे, खड़े हो गये। यह दृश्य देखकर शिवनाथ सिहर उठा। उसे याद आया—माँ जैसी बनी हैं !

स्त्रियाँ लगभग नंगी थीं। चिथड़ों से किसी तरह कमर ढँकी थी। नंगी छाती पर शिशुओं का अक्षय अमृत पिलानेवाले पयोधर सूखे पड़े थे।

पंजरे की उभरी हड्डियाँ एक-एक कर गिनी जा सकतीं, उन पंजरों के नीचे की धड़कन ऊपर से भी दिखायी पड़ रही थी उनके रूखे केश मुर्दों के बाल जैसे विवर्ण हो रहे थे और गर्म हवा के झोंकों में विभीषिका की पताका से फहरा रहे थे। आँखों में भूख की लोलुप्र दृष्टि। औरतों की कतार चिल्लाकर खड़ी हो गयी—मुझे दो, मुझे दो। उस तरफ कई कंकालसार मर्द खड़े थे, लम्बा शरीर सूखकर झुक गया था। शिवनाथ जैसे बावला हो गया। वे लंगोटी पहने थे। वे भी सबके सब चिल्ला उठे—मुझको दो, मुझको दो। ऊपर झुलसा पड़ा-सा आसमान, बीच में तपी हुई हवा, नीचे रेगिस्तान जैसी प्यास से धू-धू जलती हुई धरती और इन सबके बीच आदमी का ऐसा रूप! पलभर में उसकी आँखों में 'आनन्दमठ' की वह मूर्ति नाच गयी—माँ जैसी बनी हैं!

शिवनाथ सिर झुकाकर सोचते हुए लौट पड़ा कि किस उपाय से, किस साधना के बल पर माँ को उस रूप में बदला जा सकता है, जैसा रूप कि उनका वास्तव में होना चाहिये। ऐसा कौन-सा मंत्र है!

इतिहास की पंक्तियाँ याद आ गयीं—'पेरिस की गयी-बीती गरीब स्त्रियों की एक लम्बी कतार, भूख और रोष से विद्रोही बनकर, रोटी-रोटी के नारे बुलन्द करती हुई आगे बढ़ी—।" लेकिन ये तो शोर भी नहीं मचा सकते! इसी उधेड़बुन में वह अनजानते ही अपने घर पहुँच गया। इस चिलचिलाती दोपहरी में गौरी सो रही थी, रतन और नित्तो भी कमरे में घुस पड़ी थीं आँगन में केवल दो-चार कौए जूठे पत्तलों पर आपस में लड़ रहे थे। शिवनाथ बरामदे में बैठकर धूप से झुलसे हुए आकाश की ओर देखकर सोचने लगा—सरकार को फरियाद पहुँचाना बिलकुल बेकार है! लड़ाई के चलते खुद सरकार ने कर्ज की घोषणा की है! अब तो घर-घर के भाण्डार की शरण लेने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं।

"अजीब आदमी हो तुम! इस चिलचिलाती धूप और सिद्दत की गर्मी

में जिसे देखो, वही किवाड़-खिड़की लगाकर बन्द पड़ा है, और यह तुम्हें क्या हो गया है ? दोपहरभर इधर और उधर और किवाड़ कभी खुट, कभी खट्! यह क्या है।

मुड़कर शिवनाथ ने देखा, सीढ़ी के पास गौरी खड़ी थी। उसका ध्यान टूट गया। गौरी को देखकर वह केवल हँसकर रह गया, बोला नहीं। उसकी चुप्पी से गौरी को चोट लगी। शिवनाथ ने उससे कुछ कहा नहीं जरूर, मगर आसन्न विपत्ति की उसे खबर है, उसने सुना है। हर रोज उसे इस बात की उम्मीद होती रही है कि शिवनाथ उसे रुपयों के लिये कहेगा। रुपये तो उसके हैं। शिवनाथ की ऐसी स्थिति पर उसे रोना आता है। जब वह अपने मायके की अवस्था, अपनी और-और बहनों की ससुराल की अवस्था से अपनी पति की अवस्था की तुलना करती है, तो उसे लज्जा होती है। उसे इस बात का रञ्ज होता है कि इसका उपाय रहते हुए भी शिवनाथ उस उपाय को ठुकरा देता है! उसने यह तो कभी नहीं कहा कि मेरे रुपयों पर तुम्हारा कोई हक नहीं। ये बातें उससे छिपायी ही क्यों जाती हैं आखिर ? इसीलिये शिवनाथ के मौन से उसे पीड़ा हुई। बोली—कुछ जवाब तो दो देवता—उससे तुम्हारे सम्मान में बट्टा नहीं लगेगा।

शिवनाथ फिर जरा हँसा—क्या जवाब दूँ, बोलो!

क्या जवाब दोगे ? जो हुआ है, सो कहो।

कुछ हुआ ही नहीं, तभी तो पूछता हूँ कि क्या कहूँ मैं।

उफ, बात पचाना तो खूब जानते हो। लेकिन यह तो बता कि यह सूरत सूखी सोंठ-सी क्यों हो गयी ?

धूप में घूमते रहने से।

जरा देर चुप रहकर गौरी बोली—सब्जियों से मछली नहीं छिपायी जा सकती। छिप भी जाय, तो गंध से पर्दा खुल जायगा, समझा ?

देखती हूँ, आखिर में मुझे ही कहना पड़ेगा। समय पर कह ही देते, तो क्या बिगड़ जात- ?

शिवनाथ निर्निमेष नेत्रों से गौरी को देखने लगा कि उसकी नजर में, चेहरे की रेखाओं में, कहीं क्या बूँदभर स्नेह नहीं छिपा पड़ा है!

उस दृष्टि से गौरी को बेचैनी-सी हुई। बोली—वैसे तो न निहारो तुम। वही एक-सी नजर! मैं जानती हूँ कि चैत की किस्त की लगान नहीं दी जा सकी है। जमींदारी नीलाम पर चढ़ गयी है। मगर आखिर में मुझ से रुपये या गहने मत माँग बैठना, तब मैं नहीं दूँगी, कहे देती हूँ।

शिवनाथ गर्म होता आ रहा था। उसने गम्भीरता से कहा—लेकिन मैंने तुम से माँगा तो नहीं है।

माँगा तो नहीं है, मगर जब और कहीं नहीं जुटेगा, तो माँगना पड़ेगा ही।

नहीं, नहीं माँगूँगा।

वाह, यह तो बड़ी खुशी की बात है।—और वह जैसे अपने आप बोल उठी—राम कहो, इसीका नाम है जमींदारी! इससे तो कुली-मजदूर का काम करके पेट पालना कहीं बेहतर है। खाक जमींदारी है!

शिवनाथ से और नहीं सहा गया। उसने बिगड़कर कहा—गौरी!

वैसे ही तेज से गौरी ने कहा—क्यों, पीटोगे क्या ?

बड़ी मुश्किल से अपने को पीकर शिवनाथ काठ का मारा-सा खड़ा रहा। यकायक गौरी फफक फफककर रोने लगी।

माँलकिनी जीं!

द्वार पर अकाल की प्रतिमूर्ति-सी वही कंकालसार स्त्री खड़ी थी।

मित्तो और रतन जग तो गयी थी शायद, मगर पति-पत्नी की कहा-सुनी से बाहर नहीं आ पा रही थीं। उस भिखमंगिन की आवाज पाते

ही द्वार खोलकर बोल उठीं—क्या है ? इस जलती दोपहर में भी छुट्टी नहीं देने की। ये जितने मरभुखे क्या यहीं जुटते हैं बाबा !

वह भिखमंगिन इससे न लज्जित हुई, न भयभीत। आरजू-मिन्नत करती हुई बोली—थोंड़ा अँचारँ दें दों माईजीं, पैंरों पँड़तीं हूँ।

रतन कह उठी—अरी निगोड़ी, अपनी जीभ दगवा ले, जीभ! जुरे सत्तू नहीं और मालपूए की ताक !

सब लोगों के आ जाने से गौरी ने आँखें पोंछ लीं और शान्त हो रही। बोली—अहा ; दे दो बेचारी को। जीभ तो सबके होती है। दे दो।

शिवनाथ बाहर चला गया।

अन्दर से बाहर निकलते ही एक चौड़ा रास्ता पड़ता है। उस रास्ते पर शिवनाथ को सहम जाना पड़ा। द्वार के सामने ही कुछ बुर्कावाली स्त्रियां खड़ी थीं। इसमें शक की गुञ्जाइश नहीं कि ये औरतें संभ्रांत मुसलमान घर की होंगी। खेतिहर मुसलमानों की स्त्रियां तो बुरका नहीं पहनतीं। लेकिन इस भरी दोपहरी में ये कहाँ आयी हैं ? यहाँ क्यों खड़ी है ? शिवनाथ अन्दर से नित्तो को बुलाना ही चाह रहा था कि उनमें से एकने जरा बुरका हटाया और कहा—बेटा !

शिवनाथ ने आदर के साथ कहा—कहिये माता जी, क्या कहना चाहती हैं आप ? इस दोपहर को आपलोग इधर कैसे आयीं ?

वह बूढ़ी स्त्री जरा हँसकर बोली—इस धूप से भी तेज आँच में जल रही हूँ बेटा—ऐसे नाजुक वक्त में और राह से चलना भी तो मुश्किल है। —इतना कहकर उसने पोटली से चाँदी के कुछ जेवर और कई एक पुराने दुशाले बाहर निकाले। बोली—अब जान बचा बेटा, खुदा तुम पर रहम करेगा ? मासूम बच्चे भूखे, मर जायँगे और यह अपना खाऊ पेट भी लगाम नहीं मानता, भूख के मारे मर गयी अब तो ! इन सामानों को रखकर कुछ रुपये—कम से कम दस रुपये, हमें दो।

यह दृश्य देखकर शिवनाथ दंग रह गया। उसकी आँखें गीली हो आने को हुई। इतने में वह नकी भिखमंगिन अचार लेकर बाहर निकल गयी। उसकी आँखों से एक तीव्र लालसा टपकी पड़ रही थी—वह अपनी आँखों से ही अचार जैसे खाती चली जा रही थी—खाने से तो खत्म ही हो जायगा!

उस बूढ़ी मुसलमानिन ने कहा—बेटा!

शिवनाथ बोला—माता जी!

जान बचा लेगा बेटा! भूखे को अन्न दे सकेगा मेरे सोना!

शिवनाथ बोला—ये सामान आप लौटा ले जायँ माता जी, दस रुपये तो मैं दिये ही देता हूँ।

शिवनाथ के पास कुल बारह ही रुपये रह गये थे। फिर भी वह नहीं न कह सका।

बूढ़ी ने कहा—खुदा तुम पर मिहरबानी करेगा बेटा! देखो, ये दुशाले हम ओढ़ा करती थीं—भीख कैसे माँग सकूँगी बेटा!

भीख क्यों, जब हो जायँ, तो मेरे रुपये न हो तो लौटा देंगी।

ऐसा नहीं हो सकता बेटा। जैसे दिन आये हैं, कौन जानता है कि किस पर क्या बीतेगी। कर्जदार होकर मर जाऊँ तो खुदाताला के यहाँ क्या जवाब दूँगी? तुम ये चीजें रख लो बेटा!

शिवनाथ उन्हें आदर से अन्दर लिवा गया।

नित्तो ने कहा—भैया जी, भाभी ने कहा, सामान रखकर मैं रुपये दिये देती हूँ।

शिवनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके होंठों पर एक अनोखी हँसी फूट उठी—गौरी महज रुपये को ही नहीं पहचानती—सूद भी समझती है। नफा-नुकसान का खूब ख्याल है! उसने बूढ़ी के हाथों दस रुपये रखते हुए कहा—इसका सूद नहीं देना होगा। आपकी धर्म-पुस्तक में सूद की मुमानियत है, हमारे पुरुखों की भी मनाही है।

बूढ़ी के चेहरे पर अब हँसी फूट उठी। बोली—अच्छा बेटा, वही होगा, वही होगा। तुम्हारा भला होगा बेटा! अच्छा, तब तक तुम जरा बाहर चलकर बैठो, हमलोग जरा बहूजी से जान-पहचान कर लें।

शिवनाथ बाहर चला गया। रामकिंकर बाबू की ठाकुरबाड़ी के सामने मँगतों का शोरगुल अभी तक जारी था। राखाल सिंह, किसन, गुमाश्ता—किसी का कोई पता न था। जहाँ तक आखें जा पाती थीं, कोई आता नहीं दिखायी दे रहा था।

अट्ठाईस

राखाल सिंह और किसन तीसरे पहर लौटे। वे अकेले ही लौटे, साथ में रैयतों में कोई नहीं आया। शिवनाथ समझ गया कि रैयत लोग नहीं आने के। यहाँ तक कि जमींदारी को बचाने के लिये जो लोग गिड़गिड़ा गये थे, वे भी नहीं आये। मगर वे भी क्या करें, कहाँ से दें? शिवनाथ को इतना भी पूछने का साहस नहीं रह गया कि आखिर हुआ क्या? क्या हुआ, यह तो एक प्रकार से मालूम ही है, मगर प्रत्यक्षरूप से उस खबर को सुनने में उसे डर-सा लग रहा था। आँखें फेरकर वह चुप हो रहा।

एक लम्बी साँस भरकर राखाल सिंह ने कहा—रैयतों से एक पाई की भी उम्मीद नहीं बाबू, यानी उन लोगों ने भेंट तक नहीं की।

किसन बोला—भेंट ही जो नहीं हुई किसी कम्बख्त से, वरना देखता, वे हाजिर कैसे नहीं होते हैं।

राखाल सिंह बोले—आखिर उन्हें भी तो अपनी इज्जत का खतरा है। इसी डर से किसी ने मुलाकात नहीं की।

इतनी देर के बाद शिवनाथ ने कहा—तो किसी भी रैयत से भेंट नहीं हुई।

नहीं, खबर मिलते ही सब दुबक गये।—कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोले—मगर यह छिप रहना भूल है—आज ही भर से तो छुटकारा नहीं हो गया। किन्तु; दूसरी तरह से देखिये, तो ठीक भी किया उन्होंने।

भेंट होती तो कुछ सुन-सुना जाते। कोई जवाब दे बैठता कहीं, तो हम-लोगों को भी तैश आ जाता।

शिवनाथ बोला—मतलब यह कि अब कोई उपाय नहीं रहा! उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा—जो राखाल सिंह के हृदय को छेद गया। उन्होंने सिर झुका लिया—आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें टपकने लगीं। किसन एक खम्भे से मुँह छिपाये खड़ा था, मानों वह खम्भे में ही मिल जाना चाह रहा हो! इसी बीच गुमाश्ता कौड़ीराम, सतीश, शम्भू आदि भी दूसरे मौजे से लौटे। गुमाश्ते ने कहा—जी नहीं, फूटी पाई मिलने की आशा नहीं।

इस बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। पहले जैसे ही सब चुप बने रहे। यह नीरवता नित्तो ने आकर तोड़ी। बोली—अरे, यही तो नायबजी, मिसिर बाबा, सतीश—सबके सब आकर बैठे हैं! आपलोग भी खूब हैं। खाना-पीना भी है, या—

और कोई तो कुछ नहीं बोला, सतीश ने कहा—हुँ। खाना तो पड़ेगा। मगर नायब जी, गुमाश्ता जी, ये लोग न जायँ तो हम जायें भी कैसे?

नायब जी बोले—अब खाने का समय नहीं रहा नित्तो—एकबारगी—नित्तो ने कहा—समय तो नहीं रहा, लेकिन भाभी ने भी तो नहीं खाया है!

क्यों? उन्होंने क्यों नहीं खाया?

क्यों! उमर में छोटी चाहे हों, हैं तो वह घर की मालकिन ही। बोलीं—इतने-इतने लोग भूखे हैं, मैं ही कैसे खा लूँ। रतन दीदी ने भी नहीं खाया, मैंने भी नहीं। एक भैया जी नाम को बैठे थे।

किसन ने जल्द-जल्द पगड़ी और कुरता उतारा। बोला—जरा भाभी का रवैया तो देखो! उन्हें ऐसी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत थी भला!

नित्तो ने कहा—मत पूछो भैया, उस दिन की लड़की, भला यह गिरस्ती चलाना उसके वश की बात है! बेचारी के होश जाते रहे! कल भी एक बार कै की थी, आज भी की है।

शिवनाथ ने अचरज से पूछा—कहाँ, मैं तो नहीं जानता ?

नित्तो ने कहा—आप तो बावले से घूमते हैं, आप को कहूँ भी तो कब कहूँ? इस घर का हाल भी अजीब है, रोज-रोज तो फाके की नौबत, आज यह व्रत है, तो कल यह पर्व। पित्त बिगड़ गया—इसकी खबर भी कोई क्या दे ?

सतीश ने कहा—नायब बाबू, अब देखते क्या हैं, चलिये, तेल-वेल लगाइये। भाभी भूखी बैठी हैं।

नायब जी ने कहा—तुम जाओ नित्तो, बस आये।

नित्तो चली गयी। राखाल सिंह ने झिझकते हुए कहा—बुरा न मानें तो एक बात कहूँ बाबू। यह आप की संपत्ति, यानी बहूरानी की संपत्ति हुई और बहूरानी के जो रुपये हैं, सो आप ही के रुपये हुए।

शिवनाथ ने कहा—सिंह जी, इस दुनिया में यानी और मानी का कोई अंत ही नहीं। लेकिन हर जगह, हर बात में वह लागू नहीं। न लागू होता है, न हो ही सकता है। और, मेरे लिये शर्म की इससे बड़ी बात दूसरी नहीं। छिः, इसकी तो चर्चा ही छोड़ दीजिये।

एक लंबी साँस भरकर राखाल सिंह चुप हो गये। कौड़ी राम मिश्र ने आगा-पीछा करते हुए कहा—आखिर कोई उपाय तो करना ही पड़ेगा। संपत्ति की बात है, ऐसे ही क्योंकर छोड़ दी जा सकती है!

कुछ क्षण चिंता करके शिवनाथ बोला—खैर, आपलोग नहाइये-खाइये। न होगा, तो शाम को मैं खुद ही रैयतों के पास जाऊँगा, अगर कुछ रास्ता निकल आये।

राखाल सिंह बोले—थोड़े रुपये भी मिल जायँ, तो आपको लेकर मैं कलक्टर साहब के पास जाकर मुहलत ले लूँगा।

शिवनाथ बोला—अच्छा, एक बार रैयतों के पास मुझे ले चलिये।

दोनों हाथों से अपना सिर जोर से दबाकर किसन बोल उठा—नहीं-नहीं, यह हर्गिज नहीं हो सकता।

शिवनाथ ने देखा—किसन रो रहा है। उसने ठंढी साँस भरकर कहा—इसमें रोना क्या किसन, समय पर आदमी को सब कुछ करना पड़ता है।

किसन जोर-जोर से रो पड़ा—भला आप रैयतों से भीख माँगने जायँगे ?

शिवनाथ ने कहा—डरा-धमकाकर रुपये वसूलने से तो मीठी बातों से खुद रुपये ले लेना कहीं अच्छा है। यह भीख माँगना नहीं कहलाता।

साँझ होने में ज्यादा देर नहीं थी।

शिवनाथ एक सूनसान रास्ते से बैहार में पहुँचा। नायब जी और किसन ने सदर रास्ते से उसे हर्गिज नहीं जाने दिया। बैहार में हरियाली का कहीं नाम ही न था। जहाँ तक नजर जा सकती थी, तमाम धरती धू-धू जल रही थी। शिवनाथ के पीछे-पीछे राखाल सिंह और किसन सिर झुकाये जा रहे थे। उन्हें शिवनाथ के इस फैसले से खुशी नहीं थी। उनकी नाक जैसे कट गयी हो। यह नहीं कि राखाल सिंह ने स्थिति को समझा न हो, फिर भी उनका सिर मारे शर्म के जैसे उठ नहीं रहा था।

कुछ दूर के बाद बैहार में एक पोखर के पास कुछ लोगों की भीड़ जमी दिखायी पड़ी। किसन ठिठककर खड़ा हो गया। बोला—जरा कतराकर चलिये बाबू।

कतराकर क्यों ?—शिवनाथ ने पूछा।

वह देखिये, वहाँ बहुत-से लोग इकट्ठे हैं।

काहे की भीड़ इकट्ठी है ?

बाबू लोग पोखर कटवा रहे हैं।

खैर। एक अच्छा काम हो रहा है !

—जी, जरा कतरा कर जाया जाय।

क्यों ?

सब की नजर पड़ जायगी, बात भी खुल जायगी।

शिवनाथ बोला—खुल जाय तो क्या! यह झूठी शरम है किसन!

राखाल सिंह ने कहा—मगर जरा कतराकर ही जाया जाय, तो क्या बिगड़ता है?

शिवनाथ ने कहा—मुँह छिपाने की जरूरत क्या है सिंहजी—चलिये। मैं तो गाँव-गाँव घूमता ही रहा हूँ।

जी, उस घूमने की बात ही और थी। तब आप लोगों की जान बचाने को जाते थे और यह—। राखाल सिंह अपनी बात खत्म नहीं कर सके, गले में बात जैसे अँटक गयी। कई मजूरे उसी ओर होकर आ रहे थे। शिवनाथ को देखकर वे सिर झुकाये निकल गये। फिर भी शिवनाथ ने उन्हें पहचान लिया—गाँव के किसान थे। मजदूरी उन्होंने कभी की नहीं। अब जब पूरा नहीं पड़ता, तो बेचारे मिहनत-मजूरी करने लगे हैं। शिवनाथ को इसका दुःख हुआ। और भी कुछ मजूरे आपस में बतियाते आ रहे थे। उनकी बातें शिवनाथ के कानों में पड़ीं। उनमें से एक कह रहा था—तमाम दिन एँड़ी-चोटी का पसीना एक किया और मिहनताने के कुल छः पैसे मिले। इससे सेरभर चावल भी नहीं होने को। कैसे जिया जाय!

दूसरे ने कहा—बस, चैन की कटती है तो इन बाबुओं को। दोनों जून आराम से खाते हैं और लिवास डाटकर घूमते-फिरते हैं। औरों के सिर बीते, उनकी बला से। हम डूब रहे हैं, वे किनारे खड़े बाढ़ का मजा ले रहे हैं!

किसन का पारा गरम हो गया। मगर शिवनाथ ने आँखों से उसे घुड़क दिया। कहा—कहने दो। इन बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

और कुछ दूर चलकर देखा, एक बरगद के नीचे संथालों के नंगधड़ंग बच्चे क्या तो बीन-बीन कर खा रहे हैं। गौर से देखने पर पता चला,

बरके फल हैं। पेड़ पर संथाल की दो स्त्रियाँ फल तोड़कर जमा कर रही हैं।

किसन बोला—इन कम्बख्तों ने बरगद के बीये खाना शुरू कर दिया है। पाकर के बीये, यहाँ तक कि पाकर के पत्ते भी चाट गये। वह देखिये! सामने ही पाकर का एक कंकाल-सा पेड़ खड़ा था—उसमें एक भी पत्ता न था।

शिवनाथ सहमा-सा खड़ा हो गया। ठीक तो, एक-एक करके पत्ते खा लिये गये हैं! चोटी की पतली डालों पर, जहाँ जाया नहीं जा सकता, दो-चार पत्ते गरम हवा के झोंके में हिल रहे थे!

राखाल सिंह बोले—जरा सुस्ता लीजियेगा। बहुत दूर···

शिवनाथ ने कहा—नहीं-नहीं; चलिये। —चलते-चलते ही उसने देखा, बैहार में पिछले धान की जड़ें नहीं हैं, न घास है, न पानी। एक से दूसरे छोर तक सारे का सारा बैहार रेगिस्तान की तरह जल रहा है। खेतों में दरारें पड़ गयी हैं। खेत ऐसे दिखायी देते हैं, जैसे किसी पत्ते की सारी हरियाली उड़कर केवल शिरायें ही बच गयी हैं! एक चौड़ी दरार को लाँघते समय उसे लगा कि उसमें गरम भाप भरी पड़ी है, जो रह-रहकर रोगी के गरम निश्वास-सी फूट-फूट पड़ती है।

जहाँ जाना था, वह गाँव बहुत दूर नहीं था। साँझ होते-होते वे उसके पास जा धमके। सामने ही बस्ती थी, लेकिन जीवन के किसी चिह्न का कोई आभास नहीं मिला। अजीब सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक अँधेरी गली में पहुँचकर शिवनाथ बोला—आदमी की कोई आहट ही नहीं है।

किसन बोला—जी, यह बावरियों का मुहल्ला है।

मुझे मालूम है। मगर सब के सब गायब कहाँ हो गये?

पेट की मार खाकर सब भाग गये हैं। सुना किसी मिल में चले गये हैं।

थोड़ी-सी परती जमीन पार करके वे दूसरे टोले में पहुँचे।

आसमान पर चाँद हँस उठा था। घने पेड़ों की छाया से गलियों में चाँदनी नहीं उतर पायी थी। गलियाँ अँधेरी और सूनी थीं। गलियों के दोनों किनारे किसानों के घर। घर भी लगभग अँधेरे—कहीं-कहीं मिट्टी के तेल की ढिबरी की धुमैली रोशनी। किसी-किसी घर से बच्चों के रोने की आवाज उठकर बुल्ले-सी बिला जाती थी। बीच-बीच में भौंककर कुत्ते डर से गलियों में भाग जाते। एक दरवाजे पर किसन ने आवाज दी—चौधरी!

अंदर से आवाज आयी—कौन?

मैं हूँ। किसन सिंह। जरा बाहर तो आओ। जल्द।

चौधरी का नाम है पंचानन। गाँव का जाना माना आदमी है। जमींदार को लगान देता है, नाम को मातहत है, मगर है भरा-पूरा आदमी। वह बाहर निकला। सामने शिवनाथ को देखकर अवाक रह गया। आदर से उसे प्रणाम करके शंका और विस्मय से पूछा—ऐसे समय आप, पैदल ही!—अपने मन के एक साथ ही उठनेवाले प्रश्नों के लिये मानों उसे भाषा नहीं थी।

शिवनाथ भी जैसे विचलित हो उठा। इतनी दूर से, इस तरह जिस एक बात को कहने के लिये वह आया था, अब उसे कहने में उसका कंठ मानों रुंध गया। जरा देर में अपने को सम्हालकर बोला—तुम्हीं लोगों के पास आना पड़ा है; क्योंकि तुमलोग मुझ से किसी भी तरह जमींदारी बचाने का अनुरोध कर आये थे। मैं यह कहने आया हूँ कि उसे बचाना अब मेरे वश से बाहर है। अगर तुम लोग भी थोड़ी-बहुत मदद करो, तो आशा हो सकती है, वरना जमींदारी गयी जानो।

पंचानन रो पड़ा। उसने शिवनाथ को बैठने का आसन दिया और चुप हो गया। सिर झुकाकर बैठा रहा। शिवनाथ भी चुप। इस

चुप्पी में सबको वैसी तो एक लज्जा की पीड़ा मालूम हो रही थी। किसन का जैसे दम घुटने लगा। उसने कहा—चौधरी !

पंचानन वैसा ही सुन्न घसीटे बैठा रहा। उसे कोई उत्तर ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। नायबजी ने भी टोका—पंचानन !

पंचानन जाने क्या निश्चय करके उठा। किसी से कुछ कहे बिना ही वह अन्दर चला गया। किसन ने कहा—सीधी अँगुली से घी भी निकला है कहीं ? अब देखिये···

शिवनाथ बुत बना बैठा रहा। उसके भीतर एक द्वन्द्व छिड़ा था। ऐसा अभिप्राय लेकर यहाँ आने के पहले उसने बार-बार अपने को धिक्कारा था कि इसमें एक हीन स्वार्थ को छोड़कर है भी क्या ! उसे ऐसा लगा कि इस बूढ़े खेतिहर को जीवन में इससे अधिक कभी किसी ने नहीं सताया होगा। इन सारे अनर्थों की जड़ बस गौरी है। यदि वह इस जायदाद की हिस्सेदार नहीं होती, तो मैं इसे मजे में जाने दे सकता था। वह यदि हँसकर मेरे दुःख का हिस्सा बँटाती, तो संपत्ति को पाप के समान मैं छोड़ देता।

पंचानन अन्दर से आया और शिवनाथ के आगे सोने के कुछ गहने रखकर नायबजी से कहा—इन्हें ले जाइये। इन्हें छोड़कर मेरे पास और कोई पूंजी नहीं।

शिवनाथ ने अचरज से कहा—ये तो जेवर हैं पंचानन !

जी सरकार ! जेवरों को छोड़कर और कोई अवलम्ब नहीं है। इसी साल बहू की विदायी करा लाया हूँ। इसी शरम के मारे उसके जेवरों में हाथ नहीं लगा सका था, नहीं तो सबको भूख की भेंट चढ़ा चुका हूँ सरकार !

शिवनाथ की आँखों से टपाटप दो आँसू टपक पड़े। वह बोला—तो इन्हें सहेज लो पंचानन—ये गहने मैं न ले सकूँगा।

हाथ बाँधकर पंचानन बोला—आप फिकर न करें सरकार, ईश्वर

चाहेगा, तो बहू गहनों से फिर लद जायगी। इन कुछ गहनों से हम आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकते।—पंचानन ने यह कोई शिष्टाचार या नम्रतावश नहीं कहा। वास्तव में वे जेवर नाम के ही कई थे—दाम में पचास-साठ रुपये से ज्यादा के न होंगे।

शिवनाथ उठकर खड़ा हो गया। बोला—सो जो भी हो, गहने मैं नहीं ले सकता। तुम बहू को उसके गहने लौटा दो। चलिये सिंहजी! किसन, चलो। और वह पंचानन की देहली से रास्ते पर उतर पड़ा। किसन और नायबजी की तो इच्छा थी, पर अपने मालिक के संकल्प पर कुछ कहने की उनको हिम्मत नहीं पड़ी। पंचानन गहनों के सामने बेजबान जानवर-सा खड़ा रह गया।

फिर वे लोग सूनसान बैहार से गुजरने लगे। सोच से सिर झुकाई हुई तीन मूर्तियाँ—चाँदनी में उन तीनों की परिछाईं आड़ी-आड़ी चल रही थी। एक धड़कन के सिवा उस छाया और काया में कोई अन्तर ही नहीं था! यकायक ऐसा लगा कि पीछे से कोई किसी को पुकार रहा है।

किसन थम गया। बोला—कोई पुकार रहा है शायद।

तीनों थमक गये—ठीक ही तो, कोई पुकार रहा है। किसन ने आवाज दी—कौन है?

हवा में खोती-खोती धीमी आवाज सुनाई पड़ी—मैं पंचानन हूँ।

किसन ने फिर पूछा—कौन?

इस बार स्पष्ट सुनाई पड़ा—पंचानन हूँ मैं।

थोड़ी ही देर में हाँफता हुआ पंचानन वहाँ आकर खड़ा हो गया। शिवनाथ ने पूछा—बात क्या है पंचानन।

पंचानन ने अपनी गर्दन नहीं उठायी, बल्कि कुछ और झुकाकर ही बोला—सरकार, एक तो मुश्किल से आपके चरणों की धूल पड़ी, और मैंने खाली-खाली आपको···दया करके इसे स्वीकार कीजिये। मैं बदनसीब,

पाँच रुपये भी हाजिर न कर सका। यह गाँवभर में दो-दो, चार-चार पैसे बटोरकर ले आया हूँ—यह नजराना—। उसने अपनी मुट्ठी फैला दी।

बात का न सिर था, न पैर। फिर भी शिवनाथ सब समझ गया। उसने आगा-पीछा नहीं किया। उसकी मुट्ठी से पैसा, अधन्नी, इकन्नी—सब उसने अपनी हथेली पर ले ली।

घर में शिवनाथ का इस तरह जाना जाहिर हो गया था, गो कि उसने किसीसे कुछ कहा नहीं था। गौरी के सारे बदन में जैसे आग लग गयी। उसे लगा, एक मामूली रैयत के घर खुद लगान माँगने जाने के मानी भीख के सिवा क्या हो सकता है? वह थुड़ी-थुड़ी कर उठी—शिवनाथ की इस नीचता से संग्रह करने की मनोवृत्ति पर वह घृणा से भर गयी। घृणा के साथ उसे जोरों का गुस्सा भी हो आया। क्या मैं उस मामूली खेतिहर से भी गयी-बीती हूँ, उससे भी अधिक परायी हूँ! कहाँ, एक बार भी तो उसने मुँह खोलकर यह नहीं कहा कि गौरी, अब तुम्हारे बिना इस विपत्ति से बचने का उपाय नहीं दीखता! वह जली-भुनी-सी शिवनाथ की बाट जोहने लगी। शिवनाथ के आते ही उसने कहा—मुझे मालूम हुआ है कि तुम शायद रैयतों से भीख माँगने गये थे!

शिवनाथ का मिजाज गर्म हो उठा। उसने रुखाई से कहा—हाँ, गया था। तब?

गौरी ने टेढ़ी छुरी के समान ओठों को सिंकोड़कर कहा—वाह, क्या-कितना ले आये, दो। मैं कब से आँचल फैलाये बैठी हूँ।

शिवनाथ कुछ बोला नहीं। आड़े-आड़े एक बार सिर्फ उसे देखकर रह गया।

उसे निरुत्तर पाकर गौरी फिर बोली—सोचने क्या लगे? चूँकि हजार की तादाद में है, इसलिये इस मामूली साड़ी पर उँड़ेलना नहीं शोभेगा, क्यों? कहो तो बनारसी ही पहन आऊँ!

शिवनाथ बोला—मैं साड़ी की नहीं सोचता गौरी, सोचता हूँ तुम्हारे पुण्य के बारे में। जो धन मैं बटोर लाया हूँ, उसे तुम रख सको, ऐसा पुण्य तुमने नहीं कमाया है। वह पुण्यबल तुम में होता, तो मैं जरूर देता।

गौरी बोली—क्यों, तुम्हारा आधा पुण्य तो मेरा ही है? फिर भी उस धन के लिये काफी नहीं होगा, सो कैसे, सुनूँ तो जरा?

आधा पुण्य पाने का हक तो तुम्हारा है, मैंने देना भी चाहा, मगर तुम ले कहाँ पायी? ऐसा ही होता तो तुम्हें कहना नहीं पड़ता—आने के साथ बिना पूछे-आछे मैं खुद उँड़ेल देता।

गौरी एकबारगी जल उठी। भीतर की ज्वाला से भलमनसाहत का पर्दा उठ गया। बड़ी कठोर होकर बोल उठी—राम-राम! तुम ऐसे हीन हो पड़े हो? मैं तो दुर-छिः के मारे मर गयी!

शिवनाथ के धीरज का बाँध भी टूट चुका था। ईंट का जवाब वह रोड़े से ही देने जा रहा था कि अचानक वहाँ राखाल सिंह आ पहुँचे। बात वहीं रुक गयी।

राखाल सिंह कुछ परेशान-से थे। बोले—अकाल के लिये भीख माँगने के लिये शहर से साहब, सूबा, वकील-मुख्तार—बहुत-बहुत लोग आये हैं। अपना कचहरी में सब खड़े हैं। आप चलिये।

भीतर से कचहरी तक जाते न जाते शिवनाथ को मालूम हो गया कि कीमती सिगरेट के धुएँ से वातावरण महमहा उठा है। कचहरी पहुँचा तो सारा अहाता तेज रोशनी से झकमका उठा था। एक मजूरे के माथे पर पेट्रोमेक्स जल रहा था—पीछे-पीछे भीख माँगनेवाले बावुओं का दल। भीख के लिये फैलाये हुए कपड़े का एक छोर एक बहुत बड़े सरकारी नौकर ने और दूसरा शहर के एक लखपति ने पकड़ा था। उनके पीछे-पीछे सरकारी नौकरों और वकील-मुख्तारों की टोली थी। दस-बारह के हाथों में जलती हुई सिगरेट स धुएँ की कुण्डली घूम-घूमकर ऊपर उठ रही थी।

मन ही मन पंचानन को तरह-तरह से धन्यवाद देते हुए शिवनाथ ने मुट्ठीभर रेजकारी उस कपड़े में डाल दी। आप भीतर चला आया। चिन्ता से वह आच्छन्न हो उठा था। इतने में गौरी के तीव्र स्वर से उसका वह मोह कट गया। गौरी नित्तो से कह रही थी—खबरदार, जो फिर कभी तुमने उसे यहाँ पाँव रखने दिया। बार-बार कहा, यहीं बैठकर खा ले। सो नहीं, अँचरे में बाँधकर गायब—जुगा कर रखेगी। उँह्, रोज दोनों शाम अँचार चाहिये !

शिवनाथ की नजर पड़ी—उस दरवाजे से लगकर वह नकी औरत खड़ी है। मूली और अँचार माँगने आयी है। डाँट पड़ने के बाद भी वह वैसे ही खड़ी रही। न हिली, न डुली। बिना लिये वह एक इञ्च नहीं हट सकती। रह-रहकर वह अपने हक को रट लगा रही थी—बँस, इँत्ती जरा-सी, नाँखूँन की नोंक भर दें दों माँ जी—जरा-सी।

शिवनाथ ऊपर चला गया। बाप-दादों की यह धरोहर अब नहीं बचायी जा सकती। कोई उपाय नहीं !

उन्तीस

बहुत रात गये भी शिवनाथ उनींदी आँखों यही सोच रहा था। पास ही खाट पर गौरी सो गयी थी। पहले कुछ देर तक तो वह भी जग ही रही थी—उसी में कुछ आड़ी-तिरछी बकझक भी हो गयी। चूँकि शिवनाथ ने चुप रहने की कसम-सी खाली थी, इसलिये संक्षेप में ही वह कांड खत्म हो गया। उसके बाद जाने कब गौरी की आँखें लग गयीं। गौरी को नींद खूब गाढ़ी आती है, जिसके लिये शिवनाथ ईश्वर के आगे कृतज्ञ है। कहीं उसे कम नींद आती होती, तो क्या होता, यह सोचकर शिवनाथ के रोयें खड़े हो उठते!

चिन्ता करते-करते अब जैसे वह निश्चिन्त होता आ रहा था। जब कहीं कोई उपाय ही न हो, तब चिन्ता से लाभ ही क्या? हाँ, उपाय था। गौरी यदि अपनी जीवन-धारा को उसकी जीवन-धारा से मिला देती, तो कोई रास्ता निकल सकता था। ऐसा वह इसलिये नहीं सोच रहा था कि गौरी के पास रुपये थे। बल्कि इसलिये कि यदि वह शिवनाथ के आदर्श को अपना सकती, तो वह जोर-जोर से यह घोषणा करता हुआ कि संपत्ति चोरी है, उसका हाथ धरकर हँसकर जायदाद से बाज आ जाता। रोजी की चिन्ता! इतनी दूर तक यह धरती फैली है। धरती माता की छाती खुली है, दोनों पति-पत्नी स्तनपान करनेवाले शिशु के समान उसी से रस खींचते। गौरी की ओर निहारकर उसने एक ठंढी साँस ली। ऐं, गौरी

के बदन के उतने गहने क्या हो गये? हाथ में महज पतली-पतली दो-चार चूड़ियाँ और गले में एक पतली जंजीर, बस! शायद गहने गौरी ने उतार दिये हैं कि मेरी नजर पर न चढ़े रहें। हो सकता है, उन्हें सुरक्षित रखने की नीयत से ननिहाल के मैनेजर के जिम्मे रख आयी हो।

यकायक वह चौंक उठा। नीचे एक तरह की आवाज हो रही थी, ऐसी आवाज कि पंछी पंख फड़फड़ाते हों। एक-दो नहीं, ऐसा लगा कि एक साथ बहुतेरे पंछी अंधकार में निरीह भाव से उड़ने की कोशिश कर रहे हों। घर से सटी ठाकुरबाड़ी की बाहरी तरफ बहुतेरे कबूतरों का बसेरा है। शायद उन पर किसी का धावा हो गया है, जिससे बचने के लिये इस तरह भड़क उठे हैं। कमरे से निकलकर वह उसी ओर देखने लगा। वहाँ के गहरे अँधेरे में उसे किसी की छाया-मूर्ति चलती दिखायी पड़ी। आदमी जैसी लम्बी मूर्ति। मानों अँधेरे में कोई प्रेत थिरक-थिरककर नाच रहा हो। शिवनाथ कमरे में आया। मेज पर से चोरबत्ती उठा ली, दीवाल पर से झूलती हुई तलवार को उतार लिया और नीचे उतर पड़ा। अन्दर से ठाकुरबाड़ी का एक दरवाजा था। उसे धीरे-धीरे खोलकर चुपके-चुपके वह बारादरी के खम्भे की ओट में जा खड़ा हुआ! लेकिन उस छाया-मूर्ति को जैसे कोई परवा ही नहीं थी। वह हाथ में एक लाठी लिये पागल की तरह कबूतरों को खदेड़ रहा था। शिवनाथ का आश्चर्य धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा था। वह मूर्ति एक औरत की थी। लाठी के लिये हाथ बचे थे, नहीं तो दो-चार कबूतर अब तक वार से जरूर गिर गये होते। वह जैसे ही इधर को मुड़ी कि शिवनाथ ने बत्ती जलायी और तलवार तानकर खड़ा हो गया।—कौन?

बत्ती के तेज और आदमी के शब्द से वह मूर्ति प्रश्नभरी आँखों से मुड़ी और नकियाकर बोल उठी—ऐं!

अचरज से शिवनाथ दहल गया। यह तो वह नकी औरत है! इतने

में वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। शिवनाथ ने समझा, वह मूर्च्छित हो गयी। रोशनी जलाकर देखा, बात भी वही थी। वह अन्दर गया और दूसरे ही हाथ में एक लोटा लिये लौटा कि देखता क्या है, उसके चेहरे के पास झुककर कोई मर्द धीमे-धीमे पुकारकर उसे होश में लाने की चेष्टा कर रहा है। आखिर यह कौन है? उसने समझा, उसका कोई संगी-साथी होगा। यहीं कहीं छिपा बैठा था। उसकी कोई परवा न करके शिवनाथ उसके मुँह पर पानी के छींटे देने लगा। कुछ ही देर में वह होश में आ गयी और गिड़गिड़ाकर कहने लगी—हँम को माँरिये मँत बाँबू!

यह मर्द भी रो पड़ा। बोला—उसे मारना मत बाबू जी।

शिवनाथ ने पूछा—तू कर क्या रही थी यहाँ?

हाथ बाँधकर उस औरत ने कहा—एँक कँबूतर—

कबूतर! मनुष्य के लालच पर शिवनाथ को अवाक् हो जाना पड़ा। इस दशा में भी माँस खाने का लोभ!

वह बोली—डाँक्टर ने उसे कँबूतर का शोंरवा बताया है। नहीं तो वह बँचेंगा नहीं बाँबू।

यह कौन है तेरा?

औरत चुप हो गयी। वह मर्द बैठा-बैठा कमार की भाँथी की तरह हाँफ रहा था। बोला—जी, वह मेरी औरत है।

शिवनाथ ने पूछा—हाँ रे, यह तेरा पति है।

जीं, बाँबू जी! मँरने-मँरने को है। डाँक्टर ने मुर्गी या कँबूतर का शोंरवा देंते रहने कों कहा है, कहाँ है, नहीं तों नहीं बँचेगा।

मर्द ने कहा—मैंने निगोड़ी को बारहो मना किया बाबू, मगर सुनती कौन है! मुझे बाहर छोड़कर मोरी से भीतर घुस गयी।—वह फिर हाँफने लगा। बोला—यह निगोड़ी मुझे चैन से मरने भी नहीं देगी बाबू।

औरत तुरन्त जैसे स्थान-काल भूल बैठी। झिड़कती हुई बोली—हे,

सुनो बाँबा, रांत दिन मरने और मारने को बाँत न कँरो—अँच्छा नहीं होंगा।—उसने अपने पति की छाती पर हाथ फेरना शुरू किया।

दम मारकर मर्द बोल उठा—बाबू साहब, इसने तो फजीहत की हद कर दी है। पाखाना साफ करके उस पैसे की दवा लाती है। दवा न खाऊँ, तो पीटती है। भात, अचार, कढ़ी, जो भी माँग-जाँच कर लाती है, मुझी को खिलाती है। देखिये न, भूखी रह-रह के अपनी क्या सूरत बना ली है इसने!

शिवनाथ हत-सा खड़ा रहा। उसका हृदय अपार तृप्ति से लबालब हो गया। इस घिनौनी सूरत के अन्दर जीवन के ऐसे मीठे आलोक के दर्शन कर उसका सारा क्षोभ जाता रहा। उसने कहा—तुम लोग इस मन्दिर के बरामदे पर ही सो रहो। कल से मेरे यहाँ खाना। दवा-दारू का इन्तजाम मैं कर दूँगा। हाँ?

उन दोनों को युगल मूर्ति के समान सादर सुलाकर शिवनाथ फिर कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गया। उसके जी में आया, मनुष्यत्व की छाती पर दुःख-दरिद्रता, स्वार्थपरता, लोभ, मोह का हिमालय जैसा भार पड़ा है, जिसे ठेलकर ही प्रति मुहूर्त मनुष्यता अपना विकास कर रही है। कड़ी मिट्टी को फोड़कर जिस तरह बीज अँकुराते हैं, उसी तरह यह मनुष्यता युग-युग से भार को ठेलती हुई ऊपर उठती जा रही है। खिड़की की राह उसने आसमान को देखा, वह गाढ़ा नीला था, असंख्य जगमगाते नक्षत्रों के मेले से वह रहस्यमय हो रहा था। वह उस रहस्यभरे लोक को निहारने लगा। पच्छिम और दक्खिन कोने पर अँधेरा गहरा था, जिसमें अचानक प्रकाश की एक लहर भी खेल गयी। वह खुशी में भरकर खिड़की पर खड़ा हो गया—मेघ, दक्खिन-पच्छिम कोने पर मेघ मँड़रा आये हैं। उसका विस्तार जैसे बढ़ता जाता है—बिजली और जल्द-जल्द कौंधने लगी है। आह, देश को नया जीवन मिलेगा, फटकर चौचीर हुई धरती फिर चिकनी और समतल

हो उठेगी। और उस स्निग्ध समतल मिट्टी की गोद में स्तनपायी शिशु के समान मनुष्य टूट पड़ेगा। धरती-माता फिर सुजला-सुफला मलयजशीतला शस्य श्यामला कमला कमलदल-विहारिणी हो जायगी। मां का यह रूप अजर-अमर है, इस रूप का क्षय नहीं। इतना शोषण, पराधीनता के इस दुस्सह कष्ट के होते हुए भी वह रूप मलिन नहीं हुआ है!

इस बीच उसे ऐसा लगा कि कचहरी से कोई उसे पुकार रहा है। वह आँगन के बरामदे की ओर खड़ा होकर पुकार उठा—कौन है?

उत्तर मिला—जी, मैं किसन हूँ।

क्या कह रहे हो?

अरे मैं आ गया शिवू, यही कहना था। तू बेफिक्र सो जा, इन्तजाम मैंने कर लिया है।

यह स्वर मास्टर साहब का था। शिवनाथ जल्द-जल्द नीचे उतर गया।

रामरतन बाबू ने कहा - दीज महाजन्स, और ये महाजन ही क्यों, यह पूँजीवाला जितना भी वर्ग है, अजीब है। विश्वास तो इन्हें किसी पर भी नहीं होता। लाख कहा, पर वही एक बात—नाबालिग को रुपये कर्ज कैसे दिये जायँ? इस पर मैंने कहा—ऑल राइट, मुझे तो तुम जानते हो, मेरी जायदाद का भी पता है तुम्हें, बस, उसीको बंधक रखकर रुपये दे दो। और मैं रुपये ले आया।

शिवनाथ को जैसे शब्द नहीं फुर रहे थे। उसके जीवन में आज का दिन अमूल्य है। ऐसा दिन फिर शायद नहीं आने का। उसीको मध्य-विन्दु बनाकर जैसे मानव-जागरण की एक लहर-सी दौड़ गयी है—आकाश में मेघ घिर आये हैं!

मास्टर साहब बोले—नोट ही नोट ले आया हूँ, सिंह जी गिन रहे हैं। मगर तू ऐसा चुप क्यों है? नहीं लेने की आन तो नहीं कर बैठेगा न?

भई, कभी-कभी तो तुझ से डर लग जाता है—ऐसे सेंटिमेंटल फूल के समान बोल बैठता है—हाँ ! क्यों ?

शिवनाथ अब की भी कोई जवाब नहीं दे सका—बुत जैसा टुकुर-टुकुर ताकता रहा। मास्टर साहब बोले—तुझे नींद आ रही है—सो जाकर, जा। हमलोग चालान-वालान सब तैयार किये लेते हैं। तड़के ही सिंह जी सदर चले जायँगे।

इतनी देर के बाद जाकर शिवू ने कहा—आप मेरे शिक्षक हैं—गुरु हैं, आपसे मैंने बहुत-बहुत पाया है, आज आप के रुपये भी मैंने लिये। —कहता हुआ वह भीतर चला गया। निस्तो और रतन जग गयी थीं। जिसे साथ लेकर मास्टर साहब आये थे, उस आदमी को लेकर किसन आँगन में खड़ा था। उसे जलपान देना था। शिवनाथ ऊपर गया। इतना हो-हल्ला होने पर भी गौरी बेखबर सो रही थी। बिछावन पर सोकर गौरी की नींद तोड़ देने की उसकी इच्छा नहीं हुई और तिस पर इस सिद्दत की गर्मी में एक बिछावन पर सोना भी कैसा तो लगा ! सो आराम-कुर्सी पर पड़कर उसने आँखें बंद कर लीं।

तीस

दूसरे दिन बड़े स्वस्थ चित्त से वह जगा। पिछली रात की याद उसे स्वप्न जैसी जान पड़ रही थी। चाय के आसरे वह सोने के कमरे में ही बैठा रहा कि गौरी चाय लिये आयगी। चाय से गौरी की प्रतीक्षा ही ज्यादा बेकली से वह कर रहा था। गौरी पर उसे जो क्षोभ था, आज मिट-सा गया था। बार-बार उसे उस घिनौने दंपति की याद आ रही थी। प्रातःकाल से ही आकाश बादलों से ढँक गया था, रह-रहकर हवा के झोंके भी आने लगे थे। बारिश उतरने को थी। सभी दृष्टि से आज का दिन उसे बड़ा भला लग रहा था।

गौरी चाय लिये आयी। उसका स्वागत हँसकर करते हुए शिवनाथ ने कहा—बैठ जाओ, बहुत सारी बातें करनी हैं।

क्रोध और अभिमान से गौरी भर उठी। क्यों? यह मुंझ से बहुत-बहुत बातें काहे की? और यह बहुत बात जो क्या है, सो वह खूब जानती है—यही तो उसने जानना भी चाहा था—देने के लिये ही उसने अपने सारे गहने उतारकर सहेज दिये हैं। उसे यह भी नहीं भूला कि आँखें लाल-पीली करके वह किस कदर ठुकरा दी गयी थी। वह समझ नहीं सकी कि आज किस मुंह से हँसकर शिवनाथ उसे बहुत-बहुत बातें कहना चाह रहा है। खैर; उसने मन को काबू में रखकर कहा—तुम्हारी बहुत-बहुत

बातें सुनकर मैं करूँगी भी क्या ? और तुम्हें भी दूसरों पर घर की इज्जत-आबरू की बात जाहिर नहीं करनी चाहिये।

शिवनाथ इस पर रंज नहीं हुआ, बल्कि और जरा हँसकर बोला—देखता हूँ, मारे क्रोध के तुम कुप्पा बनी बैठी हो, आओ, बैठो।

गौरी ने जरा कड़ी आँखों से पति की ओर ताककर कहा—स्त्री से रुपये माँगते तुम्हें शर्म नहीं आती ? यह भी मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे हँस-हँसकर तुम खुशामद कर सके !

शिवनाथ चौंक उठा। अब तक वह यह नहीं समझ सका था कि गौरी के मन की गति किधर को है, वह निहायत सीधे ढंग से ही देख-सुन रहा था। अचानक आँकी-बाँकी गली से गौरी के वचन-तीर खाकर वह चौंक उठा। फिर भी उस चोट को वह पी गया। बोला—तुम्हें शायद मालूम नहीं, रुपयों का प्रबंध मैंने कर लिया है। तुम्हारे रुपये मुझे नहीं चाहिये।

यह सुनते ही गौरी का चेहरा फक पड़ गया। उसकी आँखों में अकारण ही आँसू आना चाहने लगे। गौरी के चेहरे के बदले हुए भाव को देखकर शिवनाथ उत्साहित हुआ। उसने हँसते-हँसते कहा—तुम्हारी पूंजी सूद और असल मिलकर गोकुल के कृष्णचन्द्र की तरह दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहे। डरो मत, मैं पूतना की तरह उस पर धावा नहीं बोलूँगा।

गौरी की ठुड्डी थर-थर काँप उठी। मुँह फेरकर एक प्रकार से वह वहाँ से भाग ही गयी। शिवनाथ कुछ क्षण उधर को देखता रहा, जिधर होकर गौरी गयी ; फिर एक लंबी साँस भरकर कचहरी की ओर जाने को तैयार हुआ। पिछली रात की स्मृति का उज्ज्वल आनंद गौरी के गरम निश्वास से झुलस गया।

कचहरी में आज लगभग कोई था ही नहीं। राखाल सिंह रुपये दाखिल करने को शहर चले गये थे—किसन भी काम से बाहर निकल पड़ा

था। था एक सतीश, वह भी अभी मौजूद नहीं था, सुबह गाँजे की चिलम दागने के लिये कहीं खिसक पड़ा था। मास्टर साहब आप ही आप अंग्रेजी कविता पढ़ रहे थे—

"ऑव मैन्स फर्स्ट डिसओबिडियेन्स, ऍंड दि फ्रूट
ऑव दैट फारबीडून ट्री, हूज मोरटल टेस्ट
ब्राट्डेथ इनटु दि वर्ल्ड ऍंड ऑल आवर ओ
विथ लास ऑव इडेन, टिल वन ग्रेटर मैन
रेस्टोर अस,—"

शिवू पास आकर खड़ा हो गया। हँसकर आवृत्ति करना बंद करके मास्टर साहब बोले—बोल तो शिवू, कहाँ की पंक्तियाँ हैं? फिर पढ़ने लगे।

"सिंग हैवनली म्यूज़, दैट ऑन दि सीक्रेट टॉप
ऑव औरेब ऑर सिनाइ,—"

मास्टर साहब बीच में साँस लें कि शिवू कह उठा—मिल्टन के "पैराडाइज लास्ट" की हैं।

मास्टर साहब की बांछें खिल गयीं। बोले—येस्। मिल्टन इज ए ग्रेट पोयेट। तूने 'पैराडाइज लास्ट' पढ़ा है। कुछ पाठ कर सकता है उसमें से? जो स्थल तुझे अच्छा लगता है, वही कह जा। सुनूं।

शिवनाथ हँसा। कुछ सोचकर बोल उठा—

"सो सेयिंग शी एम्ब्रेस्ड हिम, ऍंड फॉर जॉय
टेंडरली वेप्ट, मच वोन दैट ही इज़ लव
हैड सो एनोबल्ड, ऐज़ ऑव चॉयस टु इनकर
डिवाइन डिसप्लेज़र फॉर हर सेक, ऑर डेथ्
फ्रॉम दि बो
शी गेव हिम ऑव दैट फेयर एनटाइसिंग फ्रूट
विथ लिबरल हैंड"

शिवनाथ थम गया। मास्टर साहब एकटक उसके मुँह की ओर देखते रहे। एक लंबी साँस भरकर बोले—यू डोंट लव आवर बहूरानी; आइ एम स्योर।

इस अप्रांसगिक बात से शिवनाथ को लज्जा और विस्मय हुआ। मास्टर साहब बोले—राखाल सिंह ने मुझ से कहा जरूर था, पर मुझे यकीन नहीं आया था। लेकिन दिस इज़ बैड, वे—री बैड माइ बॉय। न:, मुझ से शर्मा मत। अब तू सयाना हो गया—शर्माना कैसा!

शिवनाथ का चेहरा तमतमा गया। तोभी वह बोला—नो, आइ लव हर। आदम जैसे हौवा को प्यार करता था—वैसे ही। आपको मालूम है, उसीके चलते मुझे फूफी से हाथ धोना पड़ा है!

मास्टर साहब बड़ी देर तक चुप रहे। बोले—जाने भी दे। हाँ, यह बता कि तेरी सूरत ऐसी रूखी-सूखी-सी क्यों दिखती है?

शिवनाथ हँसा। बोला—कई दिन तो चिन्ता से बड़े बुरे बीते। कल रात सो नहीं पाया। हो सकता है इसीसे।

मास्टर साहब ने कहा—आज सवेरे-सवेरे नहा ले, खा ले और लम्बी तान दे। सब ठीक हो जायगा।

शिवनाथ बोला—ऐसा ही करूँगा।

हाँ, मैं जो कहना चाह रहा था, उसे सुन। यू मस्ट डू समथिंग माइ बॉय। तुझे दूसरा कुछ करना ही चाहिये, इस जायदाद में बँध जाने से काम नहीं चलेगा। कुछ आय-उपाय करके आमदनी बढ़ानी होगी। जितना है, उसी को ताप जाने से ठीक नहीं होगा।

कुछ सोचकर शिवनाथ बोला—कुछ न कुछ जरूर करूँगा मास्टर साहब मगर आफत है कि गाँव छोड़कर मुझसे जाया नहीं जाता। शहर में जैसे मेरा दम घुटने लगता है।—कहते-कहते संथाल परगने के आश्रम की बात उसे याद आ गयी। चाँदनी से धुला हुआ बैहार—साग-भाजी की

क्यारियाँ, उर्द्धवाहु जैसे ऊपर को उठे हुए कुएँ के डंडे, रास्ते के किनारे-किनारे छोटे-छोटे घर और इन सबके बीच वह हँसता हुआ निडर आदमी। सब कुछ स्मरण हो आया। उनका चेहरा चमक उठा—वहां गौरी नहीं होगी, जायदाद की चिन्ता नहीं रहेगी, झूठी मर्यादा के निर्वाह की बला जाती रहेगी ; वहाँ यह होगा और होगी मिट्टी,—वह मिट्टी जो बोलती है, प्यास से हाहाकार करती है, रोगी-से गरम निश्वास छोड़ती है। उसने खुशी से खिलकर कहा—मैं एक बहुत बड़े प्लाट में खेती करूँगा मास्टर साहब।

खेती ? गुड आइडिया ! अच्छा, तू खेती ही कर। लेकिन जमीन का नदी किनारे होना जरूरी है। तेरे मौजा विल्वग्राम में मयूराक्षी के किनारे बहुत ज्यादा जमीन पड़ी है। वहीं तू खेती शुरू कर दे ! प्लेन लिविंग और हाई थिंकिंग। गुड आइडिया, वेरी गुड आइडिया !

मास्टर साहब ने कागज-कलम लेकर कहा—जरा नफे-नुकसान का लेखा करके देखूँ।

मगर नित्तो ने न तो नफे पर पहुँचने दिया, न नुकसान पर। उसने झिड़की-सी देकर कहा—भैया जी यह आपने क्या रवैया पकड़ा है ?

शिवनाथ ने अचरज से उसे देखकर पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

क्या हुआ ! भाभी ने आज भी सवेरे दो बार कै की है। कल ही तो कहा था कि लगातार दो दिन से कै कर रही हैं। कम-से-कम डाक्टर से तो राय ले लेनी चाहिये।

आज फिर कै कर दी है उन्होंने ! शिवनाथ की भौंवे सिकुड़ गयीं। सोच और विरक्ति से जी खीझ उठा। वह बोला—अभी-अभी डाक्टर को बुलवाता हूँ। मगर कभी चार बजे, कभी तीन बजे उसे खाने को किसने कहा था ?

नित्तो बोली—उसका हमलोग क्या कर सकते हैं, आप ही कहिये।

छोटी उमर में मालकिन बनने का यही नतीजा होता है। फिर रोज दिन तीज-तेहवार जो लगा है, वह उपवास कौन करे?

शिवनाथ ने सतीश को बुलाया—सतीश!

सतीश ने अभी-अभी गाँजे का दम लगाया था। जैसे स्वप्न से जगा हो, सामने आकर खड़ा हो गया। शिवनाथ बोला—जरा डाक्टर साहब के पास जा। उन्हें अपने साथ लिवा लाना।

उसने समझा भी कि नहीं, सतीश ने कुछ नहीं बताया। चूँ किये बिना ही वह बाहर निकल पड़ा। गाँजा पीने के बाद कुछ देर तक सतीश ऐसा ही मौन साध जाता है।

डाक्टर साहब दुनिया देखे हुए आदमी ठहरे। गौरी को उन्होंने देखा और कहा—क्यों शिवनाथ बाबू, पोखर की मछलियाँ कितनी-कितनी बड़ी हुई हैं?

शिवनाथ ने हँसकर कहा—वंसी से शिकार कीजिये न एक दिन?

डाक्टर ने कहा—वंसी से पार नहीं पड़ेगा भई, लेकिन एक दिन खाना है!

जरूर खाइये।

मास्टर साहब अधीर हो उठे। बोले—बहूरानी को कैसा देखा आपने!

अच्छी तो हैं। चलिये, बैठक में चलिये। बाहर आकर उन्होंने सतीश से कहा—जरा नित्तो को तो पुकार ले। कई बातें पूछना ही भूल गया।

मास्टर साहब ने पूछा—बीमारी वैसी कोई सख्त तो नहीं है न? यानी मैं तो डिसपेप्सिया को एक सख्त बीमारी ही मानता हूँ।

नहीं-नहीं वैसा कुछ नहीं है। तब ऐसा लगता है कि शिवनाथ बाबू को अब एक दावत देनी पड़ेगी। तभी तो मैंने पूछा कि मछलियाँ कितनी बड़ी हुई हैं।

नित्तो आयी। पूछा—मुझे बुला रहे थे?

डाक्टर बोले—हाँ-हाँ। तुम जरा—। डाक्टर ने अलग जाकर उससे कुछ कहा और बोले—जल्दी से इन कई बातों को पूछ तो आ।

मास्टर बोले—यह तो आप जैसे पहेली बुझाने लगे!

डाक्टर हँसकर बोले—घर में बड़ी-बूढ़ी-स्त्रियाँ होतीं, तो इन सब के लिये हमें बुलाने की जरूरत ही नहीं पड़ती।

मास्टर बोले—लाख रो के फूफी रुकीं ही नहीं। चली गयीं।

शिवनाथ ने एक निश्वास फेंका। नः, वह गयीं तो अच्छा ही हुआ। वह गौरी को सह भी लेतीं, पर गौरी उन्हें हर्गिज नहीं सह सकती। फूफी की तरह अब मैं भी कहीं जा रहूँगा। शांति के लिये प्राण छटपटा उठा है।

नित्तो आकर कह गयी—जी, आपने जो कहा, वही है।

डाक्टर ने हँसते-हँसते कहा—तब तो दावत आपको देनी ही पड़ गयी शिवनाथ बाबू, बहूरानी गर्भवती हैं।

अचंभे में आकर मास्टर साहब ने पूछा—ह्वाट?

शिवनाथ के संतान होगी मास्टर साहब, संतान!

मास्टर कागज-कलम फेंककर पास के कमरे में चले गये। अरे, यह शिवनाथ, उस दिन का लड़का, उसके क्या तो लड़का होगा—वह बाप हो जायगा! हँसते-हँसते मास्टर साहब लोट-पोट हो गये।

डाक्टर ने शिवनाथ को यह एक अजीब खबर दी। उसके मन में न केवल एक उत्तेजना फैली, बल्कि उसकी कल्पना द्वारा रचे भावी जीवन-चित्र के ऊपर से क्रांति की एक आँधी-सी दौड़ गयी। लज्जामय आनंद से उसका जी तो भर ही गया, एक और बात उसके ध्यान में आयी। उसे लगा कि गौरी अब शक्तिशालिनी हो गयी है, जिस शक्ति के चलते अब उसकी इच्छा-अनिच्छा के आगे घुटने टेक देने के अलावे कोई उपाय ही नहीं।

आनेवाली संतान माँ के गर्भ से ही माँ की शक्ति में अपनी शक्ति को मिलाकर शिवनाथ को पस्त कर देने की चेष्टा कर रही है।

डाक्टर साहब ने कहा—शिवनाथ बाबू, अब फूफी को खत भेजकर जरूर बुला लीजिये। उनके बिना अब चलने का नहीं। पोते को प्यार कौन करेगा? उसे पालेगा-पोसेगा कौन?

डाक्टर साहब चले गये।

मास्टर साहब हँसना रोककर बाहर आये। बोले—इमिडियेटली—फूफी को तुरन्त पत्र लिखना होगा। शी मस्ट कम।

शिवनाथ के मन में यह भी आया, उसकी संतान महा प्रतापी होगी—उसके रूप, गुण, प्रतिभा, विद्या से सारा देश उज्ज्वल हो उठेगा। उसे स्वयं शिक्षा देगा, अपने आदर्शों से उसके जीवन का निर्माण करेगा। उसके जीवन के अधूरे स्वप्न को उसकी संतान ही पूरी करेगी।

मास्टर साहब बोले—बेहतर तो यह हो शिवू, कि चिट्ठी न देकर तू खुद काशी चला जा, फूफी को पकड़कर ले आ।

खैर, जाया ही जायगा।—इस पर से शिवू को फूफी की स्मृतियाँ याद आने लगीं। फूफी कहा करती थीं—शिवू के जो बच्चा होगा, वह कैं-कैं करेगा। खीझकर शिवू कहेगा—गौरी, जाओ, इसे फूफी की गोद में डाल आओ। मैं उसे सोने से मढ़ दूँगी—आकाश से चाँद तोड़कर दूँगी। वह उसकी कल्पना रूपकथा के राजकुमार जैसी करती थीं। वह जरूर आयेंगी। मगर गौरी,—गौरी को उनका आना सुहायगा क्या?

नित्तो फिर आकर खड़ी हुई। मास्टर साहब ने पूछा—अब क्या है?

नित्तो बोली—भैया जी, एक बार अंदर चलिये।

शिवनाथ ने पूछा—क्यों?

भाभी कुछ कह रही हैं।

शिवनाथ भीतर जाने लगा। मास्टर साहब ने नित्तो से कहा—देख,

आज सब देवस्थानों में पूजा देनी चाहिये। रतन से कह दे, जैसा किया जाता है, सब ठीक-ठीक कर देवे।

जब शिवू और नित्तो चली गयीं, तब मास्टर साहब फिर हँसने लगे। शिवू को वह नॉटी बॉय—शरीर लड़का कहा करते थे; और वह शरीर लड़का अब एक लड़के का बाप बन रहा है। किमाश्चर्य अतः परम्!

गौरी को जो कहना था, वह उसे जीभ की नोक पर ही रखा था। शिवनाथ ने अंदर कदम रखा कि उसने कहा—सुनो, एक घर में फूफी से मेरी नहीं बन सकेगी।

शिवनाथ के मन को धक्का-सा लगा। थोड़ी ही देर पहले तरह-तरह की चिंता, कल्पना और संकल्प के फलस्वरूप उसे आनंद की जो एक अनुभूति हुई थी, इस चोट से वह काफूर हो गयी। उसके मुंह से केवल एक शब्द निकला—यानी?

गौरी ने कहा—यानी मुझे सुनने में आया, हर कोई यही कह रहा है कि अब फूफी को लाना चाहिये। नित्तो से भी पता चला, बैठक में भी शायद यही राय हो रही है। इसीसे मैं पहले ही कहे देती हूँ, मैं उनके साथ नहीं रह सकूँगी।

बहुत अच्छा! लेकिन फूफी आयेंगी, यह विश्वास कर बैठना तुम्हारी भूल है। मैं उन्हें लिवाने जाऊँगा, तुम्हारा यह सोचना भी गलत है। इस घर में तुम्हारे पाँव पड़ते ही फूफी ने समझ लिया था कि अब इस घर में उनका गुजारा नहीं हो सकता। मैंने भी यह समझ लिया था। यही कारण था कि मैंने उनके जाते समय रुकावट नहीं डाली। समझा? खातिर जमा रखो, उनके आने का कोई खतरा नहीं।

शुक्रिया!—यह बात जाती रही। यों विश्वास कर बैठने में मुझ से कोई भूल नहीं बन पड़ी है। दुनिया का यही तौर है, बात पहले होती है, काम बाद। खबर मिली कि लोग इसी की चर्चा कर रहे हैं, लिहाजा

मैंने समझा, अपनी बात पहले ही कह रखना वाजिब है। यह कोई कसूर नहीं किया है मैंने। और यदि यह कसूर भी हो, तो उनका है, जिन्होंने कि यह चर्चा चलायी है।

नहीं-नहीं, लोगों का कोई कसूर नहीं। उन्होंने तो हमारी भलाई के लिये ऐसा कहा है। तुम्हारा समय दूसरा है, सेवा-जतन के लिये घर में एक पुरनिये का होना इस समय जरूरी है।

गौरी अधीर हो उठी। उसने शिवनाथ के मुँह की बात छीनकर कहा—सेवा-जतन के लिये मेरी नानी मौजूद हैं, और-और लोग भी हैं। उन्हें यह खबर मिली नहीं कि मुझे वे ले जायेंगे। तुम्हें या और किसी को इसकी फिकर नहीं करनी पड़ेगी।

शिवनाथ ने कहा—ठीक है, मैं उन्हें आज ही इसकी सूचना दिये देता हूँ।

गौरी ने छूटते ही कहा—यह मुझ पर तुम्हारा बहुत बड़ा अहसान होगा—मैं चैन से जी सकूँगी। और आइन्दे भी अगर तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रह सको, मुझे तंग न करो, तो आजीवन तुम्हारी ऋणी रहूँगी। मुझ से तो अब इतना कुछ नहीं सहा जाता।

शिवनाथ के कोई जवाब नहीं सूझा। उसे ऐसा लगा कि दुःख के प्रबल आवेग से उसका दम अँटका आता है। वह वहाँ से निरुत्तर निकल आया। सिरिश्ते में बैठकर उसने कमलेश को चिट्ठी लिखी। गौरी के गर्भवती होने का समाचार देते हुए लिखा—मेरे घर का हाल तो तुम्हें मालूम ही है। कोई पुरनिया है नहीं। यहाँ उसकी देखभाल कैसे होगी? सो मैं बेहतर यह समझता हूँ कि एक अच्छा-सा दिन देखकर उसे यहाँ से लिवा जाओ।

दो ही चार दिन के बाद कमलेश गौरी को ले गया।

गौरी ने शिवनाथ को प्रणाम करके कहा—अब से तुम्हारा जी कोई नहीं जलायेगा। मैं जाती हूँ।

शिवनाथ बोला—और तुम भी अब बड़े चैन से जी सकोगी !

गौरी को अचरज हुआ कि शिवनाथ को उसके कथन का एक-एक असर उसी तरह आज भी याद है ! अपनी बात का बाकी हिस्सा उसने खुद पूरा कर दिया—हाँ, और आइंदे भी अगर तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रह सके, मुझे तंग न करो, तो आजीवन तुम्हारी ऋणी रहूँगी ।

शिवनाथ अस्थिर हो उठा । अपने को रोककर उसने कहा—तथास्तु । वही होगा ।

इस घटना के कई दिन बाद शिवनाथ ने अपनी जरूरत की चीजें सम्हाल लीं और बेलगाँव दियाँरे को चल पड़ा । सामानों में पुस्तकें ही सब से ज्यादा थीं ।

मयूराक्षी के पेट की धू-धू करती रहनेवाली रेती के बीचोबीच पतली-सी धारा ; बरसात के आगमन से दो-एक झोंक पानी पड़ा है—और इतने ही में पानी पर मिट्टी का रंग चढ़ गया है ! आस-पास लंबी घासों की घनी हरियाली, इधर-उधर, चारों ओर सरपत के जंगल में हवा की सनसनाहट । कुछ ही दूर पर मुट्ठीभर घरों का गाँव । शिवनाथ घास पर लोट पड़ा । उसे धरती की गोद में अपार शांति, असीम संतोष मिला ।

इकतीस

कई साल बीत गये।

बनर्जी बाबुओं के उस घर की ठीक वही दशा हो गयी है, जो बुझे हुए दीपक की होती है। दीए के पात्र के समान उसके रूप-रंग की झलक तो जैसी की तैसी ही है, उसमें रोशनी नहीं जलती। प्रेतपुरी की तरह एक सन्नाटा है, जीवन का कोई कोलाहल नहीं। फूफी वही जो काशी गयी हैं, सो लौटने की कौन कहे, उनसे पत्र का जवाब तक नहीं मिलता। गौरी ने भी कलकत्ता जाने के बाद से आने का नाम नहीं लिया है। एक पुतले से बच्चे से उसकी गोद भरी है, उसी पर वह इस घर की याद भुला बैठी है। और शिवनाथ ने मयूराक्षी के दियारे पर खेती-बारी में सब-कुछ की सुध-बुध को खो दिया है। उसने धरती की छाती पर धूल पर लोटनेवाले लोगों से कारबार शुरू कर दिया है। इस खेती-बारी को मूल-पूँजी मानकर उसने अपनी सेवा के क्षेत्र की परिधि को छ-सात गाँवों में बढ़ा दिया है। रात्रि पाठशालायें खोली हैं, कुछ अधकचरे डाक्टरों की मदद से तीन दवाखाने भी खोल दिये हैं; दो धर्मछत्र भी। चारों ओर, जहाँ देखो, शूद्र ही शूद्र भरे हैं। उसने वशिष्ठ की तरह आत्माहुति देकर भी विश्वामित्र के गले में जनेऊ डालने का संकल्प कर लिया है। अभी-अभी उसने चरखे और करघे का भी श्रीगणेश किया है। भारतभर में समय के रथ की चोटी पर १९२१ की पताका फहरा उठी है!

शाम को शिवनाथ मयूराक्षी की रेती पर खड़ा था। उसके पास ही उसके खेतों का चकला है। यहाँ पर नदी कोई मीलभर एक सरल रेखा-सी सीधी चली गयी है। रेती पर खड़े होकर गौर करने से ऐसा लगता है कि क्षितिज के पास से, जहाँ आकाश धरती पर झुक आया है, आकाश-गंगा-सी यह नदी उतर रही है।

इधर कालिख की बाढ़ जैसा साँझ का अँधेरा भी वहीं से उतरकर शिवनाथ की ओर फैलता आ रहा था। रोज साँझ को इसी तरह नदी-किनारे खड़े होने का उसका नियम-सा हो गया है।

क्षितिज की गोद में अँधेरा गाढ़ा हो उठा, फिर भी आस-पास की अंधियारी में प्रकाश के धुमैले आभास से झुटपुटा-सा दीख रहा था। अस्पष्टता में एक रहस्य होता है, संध्या की इस धूप-छाँही झुटपुटे में सब कुछ जैसे रहस्यमय हो उठा था। वहाँ की हर जानीचीन्ही चीज भी जैसे रहस्य के पर्दे में अनजानी, अपरिचित-सी हो उठी थी। भूल केवल एक ही वस्तु की पहचान में नहीं हो रही थी, वह था सेमल का वह पेड़। वह अपना मस्तक सब कुछ से ऊपर उठाये था, उसकी उन्नत महिमा मानों रहस्य से भी ऊपर प्रतिष्ठित है। कोई-कोई आदमी भी इसी प्रकार विस्मृति के दुर्भेद्य अंधकार में अपना मस्तक ऊंचा किये खड़ा रहता है। बीते हुए दिन की अवधि जितनी लंबी क्यों न हो, विस्मृति कितनी भी गाढ़ी क्यों न हो, वह उसमें खो नहीं सकता। शिवनाथ के मन में भी ऐसे कुछ लोगों की स्मृति है, जो सब प्रकार की विस्मृति से ऊपर उठकर महिमान्वित होकर खड़े हैं। इसी बीच उसकी इस चिंताधारा में बाधा पड़ गयी। खेत में उसका जो आवास है, उस होकर कोई उसी की ओर आ रहा था। केवल उसके चलने से ही यह जाना जा सकता था कि वह कोई आदमी है, नहीं तो इस झुटपुटे ने आस-पास के पेड़-पौधों से मनुष्य के अंतर की पहचान संभव न थी। शिवनाथ ने समझ लिया, हो-न-हो कोई खबर जरूर है, नहीं तो

आमतौर से ऐसे वक्त उसके जन-मजदूर उसके पास नहीं आया करते। हो सकता है, कोई गाय-गोरू बीमार हो गया है, या खेती के औजार में से कुछ बिगड़ गया है। यह भी हो सकता है कि किसी की गाय-बकरी खेत चर गयी हो, जिसकी शिकायत लेकर वह आ रहा हो। घर से भी कोई आ सकता है। हो सकता है, बहुत जल्द जरूरी कोई काम आ पड़ा हो और राखाल सिंह आये हों। राखाल सिंह बीच-बीच में आते रहते हैं। ढाई साल से यही सिलसिला है। इस अर्से में शिवनाथ एक बार भी घर नहीं गया। फूफी काशी हैं, गौरी शिशु संतान को लेकर कलकत्ता पड़ी है, और वह इस सूनसान नदी-तीर में मिट्टी का अवलंब लिये काल काट रहा है। मिट्टी में उसने धरती-माता के रूप को प्रत्यक्ष करना चाहा था, उस रूप का उसे आभास मिला भी है, पर यह रूप ठीक वही रूप नहीं, जैसी कल्पना कि उसकी थी। यह तो जैसे एक ग्रामवधू की मूर्ति है, जो घिरे-घिराये एक संकरे घर में अपनी संतान का पालन करती है, उसे अपार स्नेह और गाढ़ी ममता से अपनी ही छाती से चिपकाये रहती है। उसे वह पंक्ति याद आ गयी—

सात कोटि सुत को तू ने हे वंग जननि क्या जाया!
महज बंगाली बना दिया है, मानव नहीं बनाया!!

यह मूर्ति ऐसी ही माँ की है। पता नहीं, अपनी उस विराट मूर्ति में माँ कब दर्शन देंगी, जिसकी महिमा के प्रकाश से सारे संसार का जल-स्थल आकाश-वायु झलमला उठे!

संसार में बहुत जल्द-जल्द क्रांतियाँ हो रही थीं। रूस से जारशाही का नामनिशान मिट गया। जन-क्रांति की एक आँधी आयी और उसे ले डूबी। तुर्की में भी विप्लव के बादल घिर आये, सारे यूरोप के सामाजिक जीवन में क्रांति की एक लहर दौड़ गयी है। भारत में जलियाँवाले बाग की मिट्टी लोहू से सन गयी। कलकत्ता में कांग्रेस के विशेष-अधिवेशन

की तैयारी चल रही है, नागपुर-अधिवेशन के निर्णय के अनुसार चैती दोपहरी के बवंडर के समान तमाम असहयोग-आन्दोलन छिड़ गया है, जिसका आधार सत्य और अहिंसा है। सारा राष्ट्र ही जैसे शूद्र हो उठा है। माता की वेदी पर पूजा चढ़ाने का हक उनका भी है, इस सत्य को लोग न तो स्वीकार कर पाते हैं, न भय से आगे ही आ सकते हैं। भावों की अनुप्रेरणा से उस रहस्यमय अंधेरे में वह गुनगुनाने लगा—

जितना लहू बहा वीरों का, माँ की आँसू धारा
उनका मूल्य धूल ही में क्या मिल जायेगा सारा ?
उनसे स्वर्ग नहीं क्या मोल मिलेगा ?
यह इतना ऋण नहीं चुकायेगा पृथ्वी भंडारी ?
नहीं मिटेगी क्या इस तप से रजनी की अँधियारी ?

आगंतुक उसके समीप आ गया, मगर पहचाना नहीं जा सका। शिवनाथ ने कविता की आवृत्ति बन्द कर दी। एक तो अँधेरा, उसपर भी आगंतुक ऊपर से नीचे तक एक फटी-पुरानी चादर ओढ़े था। इससे उसे पहचानना कठिन हो गया। घूँघट में से जैसे थोड़ा-सा मुँह निकला हो, इसी ढंग से उस आदमी ने अपने को एँड़ी से चोटी तक ढँक लिया था। शिवनाथ ने गौर से उसकी ओर देखते हुए पूछा—कौन ?

आगंतुक ने चादर को उतार फेंका, बोला—मैं हूँ, सुशील।

सुशील भैया !—शिवनाथ चौंक उठा। आगे की ओर झुककर उसे गौर से देखकर वह बोला—उफ्, यह सूरत क्या हो गयी है आपकी ?

सचमुच ही सुशील दुबला हो गया था—मूँछ-दाढ़ी से मुँह भर गया था। बड़े-बड़े रूखे बालों से उसका सर कैसा तो दीख रहा था !

उस अँधेरे में भी शिवनाथ ने देखा, सुशील के ओठों पर हँसी की रेखा थिरक रही है। हँसकर सुशील ने कहा—भई, छ महीनों से पुलिस की आँखों में धूल झोंकता हुआ मारा चल रहा हूँ। फरार हूँ। अभी कोई डेढ़ सौ

मील से पैदल ही चला आ रहा हूँ। अब यदि सूरत ऐसी हो गयी है, तो ताज्जुब क्या है, कहो ?

डेढ़ सौ मील !—शिवनाथ काँप उठा।

धीमे-धीमे अपने स्वाभाविक स्वर से सुशील ने कहा—हाँ, डेढ़ सौ मील, कुछ ज्यादा ही होगा, कम नहीं। कलकत्ता से यहाँ का जो सबसे नजदीक का स्टेशन है, वह कोई एक सौ पैंतीस मील है। फिर रेल की लाइन तो सीधी आयी है, मैं गाँव-गाँव के चक्कर काटता आ रहा हूँ। खैर, अब डेरे तो चलो। बड़ी भूख लगी है। चाय के लिये जान निकली जा रही है।

शिवनाथ जल्दी से उठ खड़ा हुआ—चलिये।

रास्ते में चलते-चलते शिवनाथ ने पूछा—पूरन इस समय कहाँ है ?

पूरन अब नहीं रहा।

पूरन नहीं रहा ! शिवनाथ जैसे चीख उठा—ऐं, पूरन नहीं रहा ?

सुशील बोला—यों चीख मत उठो, घबराने का काम नहीं है। पूरन की मृत्यु बड़े गर्व-गौरव की हुई है। वह खुलकर पुलिस से लड़ते हुए मारा गया है।

शिवनाथ ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा। उसके मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे, लेकिन संकोच से उसका मुँह सिल गया। उसे इस कहानी को जानने का कोई हक नहीं है। अपनी इच्छा से ही उसने अपना यह अधिकार त्याग दिया है।

सुशील ने कहा—गोली लगने के बाद भी पूरन तीन दिन तक जिन्दा रहा। अस्पताल में जब वह होश में आया, तब पुलिस ने उससे नाम पूछा। उसने नहीं बताया। जब बार-बार उसको तंग किया जाने लगा, तब आजिज आकर उसने कहा—मुझे तंग मत करो, शांति से मरने दो। पुलिस ने पूरन से यह भी कहा—देखो भैया, हमलोग भी इसी देश के वासी हैं। स्वराज्य हमलोग भी चाहते हैं। भारत आखिर स्वाधीन होकर रहेगा।

वैसी दशा में जब भारत का इतिहास तैयार होगा, तब तुम्हारा नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा—तुम अपना नाम हमें बता दो। पूरन ने वही उत्तर दिया—डोंट डिस्टर्ब मी प्लीज़, लेट मी डाइ इन पीस। और वह अनजान-अपरिचित रहकर सदा के लिये चला गया।

शिवनाथ मिट्टी और फूस के छोटे-से घर में रहता है। घर में गिने-गुँथे बस दो कमरे हैं, कमरे के बाहर एक बरामदा। सुशील आते ही उसके बिछावन पर पड़ गया। बोला—इस मुलायम बिछौने पर बड़ा आराम लग रहा है।

शिवनाथ बोला—आराम लगता है, तो सो मत जाइये। सबसे पहले तो नहा लीजिये, नहाकर कुछ देर तक गरम पानी में पैर डुबोकर बैठ जाइये। उसके बाद खा-पीकर सोइये।

पहले थोड़ी चाय तो पिलाओ।

बस, थोड़ा सब्र कीजिये, मैं खुद चाय बना लाता हूँ। इधर के लोगों का चाय पीना तो आपने नहीं देखा होगा! या तो ये कभी चाय पीते ही नहीं और सर्दी-जुकाम में कभी पीना हुआ, तो खालिस दूध में ही चाय को उबालकर गुड़ या चीनी मिलाकर पीते हैं। पीते भी हैं, तो कप-वप से नहीं, किसी कटोरे में सेर-दो-सेर लेकर पीने बैठ जाते हैं।

शिवनाथ बाहर निकला। सुशील ने एक-एक करके कपड़ा उतारना शुरू किया। चादर उतार दी, कुरता उतार फेंका। कमर की पेटी को खोलकर हिफ़ाजत से बिस्तरे पर रखा। उसके दोनों सिरों पर एक-एक पिस्तौल थी।

थोड़ी ही देर में चाय लेकर शिवनाथ आ पहुँचा। बोला—स्नान के लिये पानी तैयार है। पाँव डुबोने के लिये उबलने को पानी रख आया हूँ। चाय पीकर पहले आप अपनी हजामत बना डालिये। कहिये तो मैं हज्जाम को बुलवा भेजूँ, आप का बाल भी बना दे।

चाय का घूंट लेते हुए सुशील बोला—उँहू।

खैर, कल सवेरे देखा जायगा।

उहूँ।

क्यों?

अरे भाई, वैरागी बनें या मुसलमान, फकीर या सिख, मूँछ-दाढ़ी तो हर हालत में होनी ही चाहिये।

शिवनाथ ने हँसकर कहा—अरे, हाँ!

खा-पीकर सुशील बिस्तरे पर लेट गया और देखते ही देखते उसे गाढ़ी नींद आ गयी। शिवनाथ चटाई डालकर जमीन पर ही सो रहा। सवेरे जब उसकी आँखें खुलीं, तब सुशील सो ही रहा था। उसने चाय बनायी और तब लाचार होकर सुशील को जगाना ही पड़ा। बोला—चाय तैयार है।

सुशील बिछावन पर उठ बैठा। कहने लगा—अभी सोकर जी नहीं भरा। और सोने की इच्छा हो रही है।

ठीक तो है। चाय पीकर फिर सो जाइये।

चाय पीकर सुशील सचमुच ही फिर सो गया। शिवनाथ काम-काज के बहाने बाहर निकल पड़ा। आज सब कुछ उसे रूखा और नीरस प्रतीत हो रहा था। भला सुशील के इस अभिमान के मुकाबले उसके इस काम की बिसात भी क्या! बहर हाल वह बाप-दादों की संपत्ति से फूटी पाई भी नहीं लेता। उसकी आमदनी या तो रैयतों की सेवा में लगायी जाती है, या जमा होती है। कभी अगर बड़ी-सी रकम जमा होगी, तो काम जैसा कोई काम किया जा सकेगा। मगर उसकी भी क्या वकअत होगी? जनसाधारण को जगाकर उसकी कल्पना की जन-क्रांति, जन-आंदोलन कभी रूप भी ले सकेगा? उसे रौलट रिपोर्ट, रौलट कानून की याद पड़ गयी। जलियाँवाला बाग, कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन, नागपुर-

अधिवेशन में असहयोग-आंदोलन का निर्णय और उसका सक्रिय रूप—इन सब के स्मरण से प्राणों में आशा का संचार हुआ। उसके ध्यान में एक तस्वीर आ गयी कि भावी काल में इसी केंद्र से जन-आंदोलन को बल देते हुए कर्मियों की एक खासी जमायत निकल रही है—जिसका मूल आधार अहिंसा है। उसने कामों की देख-भाल करनेवाले एक किसान को बुलाकर कहा—तुम जरा चरखावालों के पास जाओ। उनसे कहो, सूत बहुत कम निकल रहा है। कताई ज्यादा बढ़नी चाहिये।

वह खुद जुलाहों के घर गया। लोगों से कहा—जो कपड़े तैयार हो रहे हैं, नहीं के ही बराबर हैं। ज्यादा से ज्यादा, जितना ज्यादा तैयार हो सके, करो।

कोई ग्यारह बजे लौटा। देखा, सुशील सो रहा है। रसोइए ने बताया, बाबू साहब बीच में जागे थे। नहा-खाकर फिर सो गये।

नहा-खाकर सुशील आराम-कुर्सी पर लेटा भी। नींद से उसकी आँखें झँपती आ रही थीं। किंतु पैरों की आहट पाकर वह चौकन्ना हो गया। देखा, सुशील खड़ा है। हँसकर उसने पूछा—जी भर सो लिये?

हँसकर ही सुशील ने उत्तर दिया—हाँ, सो लिया!

तबीयत हलकी हुई कि नहीं?

बस, रेस के घोड़े के समान ताजा हो उठा हूं। अब खुशी-खुशी फिर सौ मील का चक्कर काट सकता हूँ। जरा चाय बनाओ और पीकर चलो, नदी-किनारे थोड़ा घूमें।

नदी की रेती पर बैठकर सुशील ने उसे पिछले कई वर्षों की तूफानी कोशिशों का लेखा देते हुए कहा—शिवनाथ, रात पर रात मैं यह इतिहास सुनाता जाऊँ, फिर भी आरब्योपन्यास की तरह इसका कभी अंत नहीं होने का। देश के लोगों को इसका हाल नहीं मालूम हो सका, मगर सरकार को इसका पता है। उसने सबकुछ लिखा है, गो कि अपनी शक्तिभर

उसने इसके सही रूप को बिगाड़ने में कुछ उठा नहीं रखा है। रौलट रिपोर्ट में इसका एक इतिहास रह गया। आनेवाले युग के इतिहासकारों की वैज्ञानिक दृष्टि उसमें से सत्य को ढूँढ़ निकालेगी।

शिवनाथ चुपचाप अंधकार की ओर देख रहा था। उसने केवल एक लंबी साँस ली। सुशील का आवेश अभी तक समाप्त नहीं हुआ था। वह फिर कहने लगा—पंचनद प्रदेश से बंगाल तक यह जो एक अपार उद्यम चल रहा था, क्रांति की जो धारा बही, वह विफल हो गयी!

शिवनाथ को उस मामूली आकृतिवाले आदमी का कथन याद आ गया। उसने कहा था—'नहीं पूरन, यथार्थ के हिसाब से भी यह असंभव है, ऐसा नहीं हो सकता।' शिवनाथ ने कहा—सुशील भैया, इस अंजाम को एक आदमी ने बहुत पहले ही ताड़ लिया था।

सुशील बोला—यह जरूर सफल होती शिवनाथ, जरूर सफल होती। महज एक छोटी-सी भूल से सारा गुड़ गोबर हो गया। देशवासियों ने साथ नहीं दिया।

उसकी बात पर शिवनाथ ने कोई आपत्ति नहीं की। उसे भली तरह मालूम था कि सुशील अपने मत और पथ का एकांत विश्वासी है। उस पर होनेवाले मामूली आघात को भी वह नहीं सह सकता। उसे उस रात को कही गयी एक और पंक्ति याद आयी—'ब्राह्मणधर्म को जन्म देनेवाली भारतभूमि के सर्वत्र शूद्र ही शूद्र, अनार्य ही अनार्य भरे पड़े हैं।' इस बात की सत्यता को उसने भी निकट से देखा है, लोगों के बहुत समीप जाकर उनके हृदय को अच्छी तरह टटोल कर देखा है कि स्वाधीनता उन लोगों के लिये एक अनबूझ पहेली छोड़कर और कुछ नहीं है। फिर अंतर का किस प्रेरणा से वे साथ दें?

सुशील बोला—मगर तुम्हें यह क्या सूझी है शिवनाथ? क्या कर रहे हो यह? इससे होने को क्या है?

शिवनाथ ने आत्म-विश्वास के साथ कहा—होगा सुशील भैया, समय सब कुछ कराता है। आज से केवल पाँच साल भी पहले किसी ने यह सोचा था कि असहयोग-आन्दोलन जैसी एक चीज खड़ी हो सकेगी ? आज हम इस सूखी रेती पर बैठे हैं, पानी की सूत-सी पतली धारा दूर पर बहती जा रही है, मगर ऐसा भी दिन आता है, जब उस सूत की धारा की बाढ़ से दूर-दूर प्लावित हो जाता है, बह जाता है। हाँ, वह बाढ़ एकबारगी ही नहीं आ जाती। पहले वह रेती को डुबोती है, फिर कछार को छू लेती है और तब सब को छापती हुई वह निकलती है।

सुशील ने कहा—मेरी शुभकामना लो कि तुम्हारा यह सपना किसी दिन साकार हो। लेकिन मुझे इस पर विश्वास नहीं होता।

शिवनाथ एक तेज से उद्दीप्त हो उठा। बोला—आपको विश्वास नहीं होता, परंतु मेरा अटूट विश्वास है। यह मुझे मालूम है कि मेरी यह साधना शायद मेरे जीवन में पूरी न हो, किंतु साधना का संचय नहीं खो सकता, वह रहेगा। कोई आकर उस अधूरे स्वप्न को रूप दे देगा। अहिंसा पर मेरी आस्था है, जन-आंदोलन मेरा काम है और आदमी का मुझे भरोसा है। आदमी, चाहे वह तुच्छ, हीन, दीन ही क्यों न हो, अपनी हीनता और दीनता को लेकर ही वह भी उसी एक लक्ष्य की ओर जाना चाहता है, जिधर कि आप जाना चाहते हैं। सृष्टि के आदिकाल से जीवन की इस विच्छिन्न और उन्मत्त यात्रा में मनुष्य दिशाहीन की तरह दौड़ पड़ा है, उसकी अपमृत्यु की संख्या नहीं बतायी जा सकती। वास्तव में उसकी घोषणा कर देने की सच्ची आवाज चाहिये, जीवन को इस यात्रा में आह्वान करने की सही भाषा चाहिये। इसी की साधना मनुष्य की चिरंतन साधना है। सुशील भैया, गुलामी की जंजीर को तोड़ फेंकने से ही क्या सब कुछ मिल जायगा, जीवन के सभी द्वंद्वों का अंत हो जायगा ?

सुशील एकटक उसे निहारता रहा, कुछ बोला नहीं। कुछ ठहरकर

शिवनाथ ने फिर कहा—क्यों, कोई उत्तर नहीं दिया आपने ? मैं बताऊँ, सब कुछ आपको नहीं मिल सकता। द्वंद्वों का अंत नहीं हो सकता। स्वाधीनता से आप प्रेय तो पा सकेंगे, पर श्रेय नहीं पा सकते। निस्संदेह प्रेय में ऐश्वर्य है, लेकिन वह ऐश्वर्य अक्षय नहीं है, उसका नाश होता है, वह सामयिक है। श्रेय अक्षय होता है, स्थायी होता है, चिरंतन होता है।

इस पर सुशील हँसा। बोला—अगर ऐसी बात है, तो संन्यासी होना चाहिये था। सुना है कि गुफाओं में परम तत्त्व की झांकी मिलती है।

हँसकर शिवनाथ बोला—सो, आप जो चाहे कह लें, मुझे नाराज कर सकना आसान नहीं। जो कुछ भी आपने कहा, मुझे उस पर भी विश्वास है ; लेकिन उस गुफा की खोज करने के लिये भी प्रकाश का सहारा चाहिये। स्वाधीनता चाहिये पहले, तब मुक्ति।

सुशील बोला—खैर। तुम अपनी धुन में लगे रहो, मुझे अपनी राह चलनी है। मैं आज ही रात को जाऊँगा।

आज ही रात को ? कहाँ ?

सुशील हँस-हँसकर कहने लगा—तुम्हारे पहले प्रश्न का जवाब है—हाँ, आज ही रात को, और, दूसरे प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक मुझे भी नहीं मालूम। इतना कह सकता हूं कि पेशावर की ओर जाना है। वहाँ से बाहर निकल जाने की कोशिश करूँगा। देश में रहकर काम करने का अब समय नहीं रहा।

एक लंबी साँस भरकर शिवनाथ ने पूछा—और आपकी माँ, दीपा, ये सब…?

अरे भैया, तुम-ताम ही रहे, यह 'आप'वाला पचड़ा नहीं जँचता।

शिवनाथ बोला—देखा जायगा, आप मेरी बात का जवाब दीजिये।

वे सब घर रहेंगे।

घर तो रहेंगे, उनकी देखभाल कौन करेगा ?

खुद ही अपनी देखभाल करेंगे और अगर भगवान हों, तो वह देखेंगे।

लेकिन—

बाधा देते हुए सुशील ने कहा—रहने भी दो इन बातों को। पहले यह सुनो कि मैं यहाँ आया क्यों हूं। मुझे कुछ रुपये चाहिये।

रुपये ज्यादा तो मेरे पास नहीं हैं, सौ एक होंगे।

बस, बहुत हैं, बहुत। उतने ही दो।

आधी रात का समय। सभी दिशायें नीरव। कृष्णपक्ष की रात, आसमान तारों से खचाखच भरा, धरती पर गाढ़ा अंधेरा।

सुशील और शिवनाथ घर से बाहर निकले। सुशील ने लंबी झूल पहन ली थी, गले में रंगीन काँच की फकीरी माला, कंधे पर एक झोला, और माथे पर मुसलमानी टोपी। उसने हँसकर कहा—सलाम जनाब, हज को निकला हूँ।

शिवनाथ की जबान नहीं खुली। आँखों से आँसू की कुछ बूंद बरबस बरस पड़ीं। सुशील बोला—देखो, अपने जो कपड़े मैं छोड़े जा रहा हूँ, उन्हें फूँक देना। फिर उसने आसमान की ओर देखा और कहा—ठीक है।

शिवनाथ ने पूछा—ठीक क्या है ?

वृश्चिक राशि की कह रहा था। वह देखो। उसी से मैं दिशा ठीक रखता हूँ।

नजर उठाकर शिवनाथ ने गौर किया, आकाश के एक किनारे वृश्चिक की दूर तक फैली हुई पूँछ दपदपा रही है।

सुशील ने कहा—तो अब चल पड़ूँ। एकला चलो रे।

शिवनाथ चुप हो रहा। झुककर उसने सुशील के पैर छुए। सुशील चल पड़ा। थोड़ी ही देर में वह आँखों से ओझल हो गया—गहरे अंधकार में वृश्चिक को देखकर निश्चित की हुई दिशा में वह खो गया।

सारी रात शिवनाथ की आँखों में नींद हराम। उसकी शिरा-शिरा में एक उत्तेजना दौड़ती रही। मन में कैसी तो एक ग्लानि सुई की नोक-सी गड़ती रही। उसके कानों को यातनामय आन्दोलन का आह्वान सुनाई देने लगा। समाचारपत्रों के संवादों पर नजर पड़ने लगी। स्वयंसेवकों का एक पर एक जत्था आगे बढ़ रहा है, पुलिस उन्हें कैद कर लेती है। जेल की ऊँची दीवारों के पार उनकी आवाजें आ रही हैं। पुलिस के बेटन की मार से सत्याग्रहियों के चेहरे से लहू जारी है। वह लहू मिट्टी पर चू-चू पड़ता है, देश की छाती उसे पी रही है।

बिस्तर से उठकर वह ओसारे में आया। दुर्भेद्य अन्धकार से बहुत ऊपर तारोंभरा आकाश और धरती पर से अगणित कीट-पतंगों की सामूहिक संगीत-ध्वनि। उसे ऐसा लगा कि वह उस संगीत की भाषा को समझ रहा है और ग्रहों के प्रकाश-संकेत में भी वही भाषा मौन बोल रही है—

सुनो यात्रियो, कूच करो, आ पहुँचा यह आदेश ;
बंदर में पड़ाव का अब तो समय हो गया शेष।

सच तो है, यही यात्रा महाकाल का चिरंतन आदेश है। जो इस संकेत पर चल पड़ा है, उसी ने 'श्रेय' को प्राप्त किया है। जो रास्ते में ही रुक गया, उसे वंचित होना पड़ा। और जो चलता ही जा रहा है, उसके वंचित होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है! उसने भी कूच करने की ठान ली—पड़ाव का समय शेष हो गया।

बगल के कमरे की लालटेन को उसने उसका दिया। सेल्फ में एक ओर किताबें और दूसरी ओर सूत और खादी करीने से रखी हुई थीं। सामने की दीवार पर पिनों से तिरंगा झंडा टँगा था। उसने झंडे को सिर झुकाया और सम्मानसहित दीवार से उतारकर अपने से लगाया।

उसने दूसरे ही दिन कलकत्ता जाकर स्वयंसेवक बनकर आन्दोलन में साथ देने का संकल्प कर लिया। सहसा उसे अपने गांव की याद आ गयी। देशभर में जब नवजीवन की लहरें उठ आयी हैं, तब उसका अपना गाँव, उसकी जन्मभूमि क्या इसी तरह सिर झुकाये मौन रह जायगी? नहीं, हर्गिज नहीं। और उसने निश्चय किया कि कलकत्ता के बजाय अपने गाँव ही में, जहाँ उसने जन्म पाया है, सेवा के लिये अंतिम रक्तबिंदु तक दान करेगा। आवेश में उसका सारा शरीर कँप-कँपा उठा।

बत्तीस

दूसरे दिन अपने जरूरी सामानों को एक बैलगाड़ी पर लादकर, पूरे ढाई साल के बाद वह गाँव को चल पड़ा। खेत-पथार, चीज-वस्तु सब वहीं पड़ी रहीं। खेतों में फसल लगी थी। सुबह की हवा में खेतों में हरियाली का महोत्सव झूल रहा था। लेकिन शिवनाथ ने उलटकर उधर देखा तक नहीं। वह घोड़े पर यहाँ आया था, आज बैलगाड़ी पर यहाँ से निकला। अब वह घोड़ा है भी नहीं। यहाँ आते ही शिवनाथ ने उसे बेच दिया। धन से आभिजात्य की जो महक आ जाती है, उसका शिवनाथ ने वहिष्कार कर दिया था।

बैहार के बीच से कच्ची सड़क होकर गाड़ी धीमे-धीमे चली जा रही थी और शिवनाथ भावी कार्य-क्रम की रूपरेखा तैयार करता जा रहा था। गाड़ी के झकझोरने पर भी उसकी कल्पना चंचल नदी की तरह अपनी धुन में बहती जा रही थी।

लेकिन इस काम में गाँववाले साथ देंगे? सेवा के आह्वान पर उनका सहयोग मिल भी सकेगा? उसके ओठों के कोनों पर मुसकान फूट आयी! सुशील की रातवाली बात याद आयी, जाते समय उसने महाकवि के तीन शब्द कहे थे—एकला चलो रे। अकेला ही सही, आगे बढ़ना पड़ेगा। लोग उसके आह्वान पर अपने किवाड़ चाहे बन्द कर लें, अँधेरे और विपत्ति में कोई उसके लिये हाथ में दीया न भी उठाये, तोभी अपने पंजर की

हड्डियों की मशाल लेकर, लहूलुहान पैरों से, रास्ते के कांटों को मसलते हुए, चलना पड़ेगा।

राखाल सिंह और किसन राह रोककर खड़े होंगे, रोक-थाम करेंगे मास्टर साहब? नहीं-नहीं, मास्टर साहब अड़चन नहीं डालेंगे। गोसाईं बाबा चुप हो जायँगे, मौन होकर देखते रह जायँगे। यकायक जैसे पानी का नया हलकोरा आकर नीचे के पानी को ढँक लेता है, उसी तरह सब की बातों पर एक और ही स्मृति छा गयी—उसकी फूफी। पूरे चार वर्षों के बाद फूफी की याद से वह आकुल हो उठा। उनकी बगल में ही एक दूसरी मूर्ति झलक उठी, गौरी—गौरी की गोद में एक बच्चा। उसकी आँखें गीली हो आयीं—अब तक उसने अपने बच्चे को देखा तक नहीं। जीवन की बेचैनी और बदकिस्मती की याद ने उसे बेताब कर दिया। इस दुर्भाग्य के चपेटे से एक ही उसे बचा सकती थीं, वह थीं उसकी माँ। और फूफी और गौरी की मूर्तियों के बीच उसकी माँ की हँसमुख आकृति आ खड़ी हुई। उसकी आग-सी दमकती और धरती जैसी सहनशीला माँ जीवन की अशांति के प्रखर स्रोत की गति उलट देने की क्षमता रखती थीं। आज कहीं वह होतीं, तो इस राष्ट्रिय युद्ध में आशीर्वाद देकर उसे विदा देतीं। वह होतीं और फूफी रोकथाम भी करती होतीं, तोभी उसकी सहज ही जीत हो जाती। माँ के द्वारा ही आज वह फूफी को प्रेरित कर पाता कि फूफी, यह तो तुम्हारी ही शिक्षा, तुम्हारी ही अमूल्य प्रेरणा का दान है। तुमने ही तो एक दिन यह पाठ पढ़ाया था कि जूठन खाना और सिर झुकाना, यह इस कुल की रीति नहीं। जरा आँखें उठाकर देखो, आज सारी जाति ही जूठनभोगी हो रही है। पेट की ज्वाला से नहीं, मानसिक दासता की बदौलत। सिर झुकाने की बात क्या कही जाय, सारी जाति का मस्तक आज पददलित हो रहा है। इसलिये तुम्हारे साथ-साथ देश के दुःख को दूर करना भी मेरा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है।

मातृगर्भ से जब बाहर निकला, तब सर्वप्रथम मुझे धरती ने, फिर तुमने गोद दी। यह सुनकर फूफी का मुखमंडल खिल उठता, माँ के चेहरे पर अभयदान का प्रकाश खेलने लगता। उस अभय के वरदान को छूकर आज गौरी भी निडर होकर दृढ़ता से कहती कि मेरा स्थान तो तुम्हारे ही पास है, मुझे छोड़कर तुम कैसे जा सकते हो। तब माँ बच्चे को दिखाकर कहतीं, नहीं-नहीं, शिवनाथ का भविष्य तुम पर निर्भर है, तुम भी चल दोगी, तो उसकी रक्षा कौन करेगा ?

उसके रोंगटे खड़े हो गये। एँड़ी से चोटी तक प्रत्येक शिरा में लोहू की गति तेज हो गयी।

गाड़ीवान ने कहा—गाँव आ पहुँचा बाबू।

शिवनाथ की कल्पना का स्रोत रुक गया। वही तो, पुरानी पैठ के पास का वह आम का पेड़, उसके बाद ही सरकार-तालाब, तालाब के बाँधपर शराब की दूकान।

शराब की दूकान पर लोग-बाग आने लगे हैं। कई संथाल लाठी के माथे पर एक मरी गोंह को लटकाये लिये जा रहे हैं, उसकी खाल को कहीं बेच लेंगे, मांस पकाकर खा जायँगे। एक तरफ से कई मछुए आ रहे थे, शिवनाथ ने उन सब को पहचाना—विपिन, नवीन, कुंजो, हरी। तिरंगे झंडे को हाथ में लेकर शिवनाथ गाड़ी से उतर पड़ा। पड़ाव तोड़ देने का आदेश पहुँचा है, उस आदेश को उसने साफ सुना है। अब एक पल भी व्यर्थ गँवाने का नहीं है।

गाड़ीवान से उसने कहा—तू गाड़ी लेकर घर जा। मैं कुछ देर में लौटता हूँ।

गाड़ीवान चला गया। शिवनाथ उन संथालों और मछुओं के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। संथालों को जैसे काठ मार गया हो। मछुए अदब से हट गये और उसे प्रणाम करते हुए बोले—राम-राम, यह

आप क्या कर रहे हैं सरकार! हम पर वज्रपात होगा, नरक में भी ठौर नहीं मिलेगा!

शराब की दूकान का भेंडर, त्रिलोचन साह, झुककर प्रणाम करके बोला—यह आप क्या कर रहे हैं बाबू!

शिवनाथ ने मीठे-मीठे हँसकर कहा—मैं इन लोगों को शराब पीने से मना कर रहा हूँ।

त्रिलोचन ने हाथ बाँधकर कहा—मगर मैंने कौन-सा कसूर किया सरकार!

इसमें कसूर की कोई बात नहीं है त्रिलोचन! कांग्रेस की ऐसी ही आज्ञा है। मैं उसी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

त्रिलोचन काँप उठा। बोला—आप पिकेटिंग करने आये हैं सरकार? धरना देने?

हाँ, त्रिलोचन, मैं धरना ही देने आया हूँ।।

मेरा कहा मानिये सरकार, आप घर चले जाइये। कहीं पुलिस को खबर लग गयी, तो आपको पकड़ ले जायगी।

शिवनाथ हँसकर बोला—यह खबर मुझे है।

धीरे-धीरे लोग जुटते जा रहे थे। गाँव के ही लोग थे सब, इसलिये शिवनाथ को सभी पहचानते थे। —निशि चौधरी ने आगे आकर कहा—बाबू, आप घर चलिये।

शिवनाथ ने उसकी ओर निहारकर कहा—आखिर तुम लोग इस तरह डर क्यों रहे हो? जानते हो, आज देशभर में, भारत के कोने-कोने में हजारों-हजार नौजवान जेल जा रहे हैं। जो देश की जनता के शिरोमणि हैं, वे भी हँसते हुए जेल जा रहे हैं। आखिर क्यों? देश की गुलामी दूर करने के लिये; जनता की, तुम लोगों की मुक्ति के लिये। हमारा सोने का हिन्दुस्तान देखते ही देखते श्मशान बन गया है, फिर भी क्या

शराब के नशे में चूर होकर पड़े रहने का समय है ? स्त्रियों की तरह प्राणों के डर से घर के कोने में दुबक रहने का समय है ? तुमलोग मुझे अपनी जान बचाकर भागने को कह रहे हो, मगर मैं तुम में से एक-एक को पुकार कर यह कहना चाहता हूँ कि भाइयो, दुम दबाये घर में बैठे रहने का समय नहीं रहा। आज, देश के इस नाजुक समय में हर कोई अपने-अपने घर से बाहर निकल पड़ो और स्वराज्य की लड़ाई में शामिल होओ, देश की सेवा में लग जाओ। विलायती कपड़े पहनना छोड़ दो, शराब पीना बंद कर दो, सरकार का साथ मत दो।

जनता अवाक होकर उसकी ओर देखने लगी। शिवनाथ ने कहा—वंदेमातरम्। जनता इस पर भी हत-सी खड़ी रही, बल्कि पीछे से कई लोग चुपके-चुपके खिसक पड़े। शिवनाथ फिर बोला—बोलो, वंदेमातरम्।

अब की भीड़ के पीछे से किसी किशोर कंठ ने जोश के साथ दुहराया—वंदेमातरम्। सारी भीड़ उलटकर पीछे की ओर अचरज से देखने लगी। साँवला-साँवला-सा एक लड़का भीड़ चीरकर चला आ रहा था। उसे देखकर मारे खुशी के शिवनाथ बोल उठा—अरे श्यामू, तू?

हाँ, मैं हाजिर हूँ शिवनाथ भैया!

श्याम, वही श्याम जिसने महामारी के समय हृदय से लोगों की सेवा की थी। अब वह किशोर हो उठा है।

शिवनाथ ने पूछा—मेरे आने की खबर तुझे कैसे लगी?

बड़े उत्साह से श्याम ने कहा—यह खबर मुझे क्या, गाँवभर को लग गयी है। मैं सुनते ही दौड़े आया हूँ।

यकायक भीड़ में भगदड़ मच गयी। लोग जिधर-तिधर भागने लगे। बात की बात में सारी भीड़ साफ हो गयी। शिवनाथ की नजर पड़ी—एक सिपाही के साथ दारोगा साहब चले आ रहे हैं। दारोगा ने कहा—

अच्छा, आप आ पहुँचे हैं। हमलोग तो यही सोच रहे थे कि इस तूफान में हमारे शिवनाथ बाबू कहाँ रह गये।

शिवनाथ हँसकर दारोगा की ओर देखने लगा। दारोगा बोला—चलिये, मेरे साथ चलिये।

शिवनाथ उसके पीछे हो लिया। बोला—चलिये। फिर श्यामू से बोला—श्यामू, राखाल सिंह से कह देना।

दारोगा ने श्यामू को देखकर कहा—अच्छा, ये हजरत भी आ जुटे हैं ? अबे लौंडे, ज्यादा पुड़-पुड़ मत कर, भले-भले अपने घर जा !

श्यामू मुड़कर खड़ा हो गया। शिवनाथ ने देखा, जोश से उसका मुख-मंडल उद्दीप्त हो उठा है, चेहरे पर खून उतर आया है, उसके खड़े होने के ढंग में दृढ़ता है—अंग-अंग से उसका कठोर संकल्प जैसे फूटा पड़ रहा है। आनंद, उत्साह और प्रेरणा से शिवनाथ का अंतर परिपूर्ण हो गया। तो भी उसने श्यामू से कहा—तू आज घर चला जा श्यामू, मैं कह रहा हूं। मुझे अगर चल ही देना पड़ा, तो तेरी बारी कल होगी। बाद के लिये किसी और को तैयार करके तू कल जाना। आज घर जा।

श्यामू की आँखें उमड़ आयीं, लेकिन उसने आपत्ति नहीं की—चला गया। संतोष की साँस लेकर शिवनाथ बोला—चलिये दारोगाजी।

दारोगा ने कहा—थाना नहीं, आपके घर चलना है।

शिवनाथ ने समझा कि घर की तलाशी होगी। पल ही भर में वह मन में घर का कोना-कोना छान गया कि कहाँ क्या है। बोला—वहीं चलिये।

लेकिन घर जाकर दारोगा और ही पचड़ा ले बैठा। बोला—यह आप किस फिजूल के हंगामे में पड़ गये शिवनाथ बाबू ? आप एक परोपकारी सज्जन हैं, साथ ही जमींदार के लड़के हैं। आपको अपने देश की सच्ची सेवा करनी चाहिये। सरकार आपको सम्मान से ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बना देगी, आपको खिताब देगी। आप इन सब से बाज आइये।

उनकी ओर देखकर अचरज से शिवनाथ ने कहा—क्या आप यही सुनाने के लिये मुझे यहाँ ले आये थे ?

दारोगा ने मुस्कुराकर कहा—पहले आप नहा-खा लीजिये। उसके बाद सोच-विचारकर जैसा हो, कीजियेगा। खैर, अभी तो छुट्टी चाहता हूं! वंदे।

शिवनाथ समझ गया कि बहरहाल उसे रोक देने की यह एक चाल थी। उसे कौतुक-सा मालूम हुआ और इस पर वह हँस भी पड़ा—शतरंज की जैसी दोहरी चाल हो, एक राह रोककर जैसे दूसरी दी गयी हो। उसने क्षणभर में निश्चय कर लिया कि तुरन्त ही उसे फिर अपने काम में लग जाना चाहिये। तिरंगा हाथ में लिये वह जा ही रहा था कि पीछे से राखाल सिंह ने पुकारा—बाबू!

बाधा पड़ गयी। शिवनाथ की भँवें सिकुड़ आयीं। मुड़कर उसने पूछा—कुछ कहना है ?

हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—जी हाँ। मुझे आप छुट्टी देकर जाइये। शिवनाथ ने देखा, राखाल सिंह अकेले नहीं है, उनके पीछे सिर झुकाये किसन भी खड़ा है। किसन ने भी कहा—छुट्टी मैं भी चाहता हूं। आँखों से यह सब नहीं देख सकूँगा।

शिवनाथ को एक लंबी साँस लेनी पड़ी। अपने दो विश्वासी कर्मचारियों की इस हार्दिक आकुलता ने उसे झकझोर दिया। राखाल सिंह उसके पैरों के पास बैठ गये और पाँवों को पकड़कर बोले—आपके पैरों पड़ता हूं बाबू, आप ऐसा अनर्थ न कर बैठें। एक बार फूफी की सोच देखें, बहूरानी और अपने बच्चे का खयाल करें।

धीरे-धीरे शिवनाथ अपने को सम्हाल ले रहा था। अचनाक फूफी और गौरी की चर्चा जो आयी, तो उसमें एक दृढ़ता-सी आ गयी। किसी प्रेरणा से उसके हृदय की शक्ति और संकल्प जीवन्त हो उठे। उसने

कहा—सिंह जी, मेरे पैर छोड़िये—आपको छुट्टी दिये देता हूं, मगर मुझे मत रोकिये।

लंबी साँस भरकर राखाल सिंह बोले—और हिसाब-किताब—

आपने जो किया है, सब ठीक है।

एक नजर देख तो लिया जाता—

उसकी कोई जरूरत नहीं। आप पर मुझे भरोसा है।

फिर भी मेरे लिये आपको कुछ लिख तो देना चाहिये?

चलिये, लिखे देता हूं।—शिवनाथ चलकर कचहरी में बैठा। बोला—कागज-कलम?

कागज-कलम के पहले राखाल सिंह ने कुंजियों का झब्बा उसके सामने रख दिया। शिवनाथ को लगा, गुच्छे ने उसे जंजीर की तरह जकड़ लिया है। वह सर झुकाये सोचने लगा। एक खंभे से लगकर खड़े-खड़े राखाल सिंह आकाश की ओर निहारने लगे—बुत के समान। केवल उनके ओठ घास के समान हौले-हौले हिल रहे थे। आड़ में बैठकर किसन फफक-फफककर रो रहा था। गाँजे का कश खींचकर सतीश अलग उदास बैठा था।

किसी के प्रबल पदों की आहट से यह नीरवता चीख-सी पड़ी। केवल नीरवता ही न चीखी, उन पैरों की कठोर चाप से कचहरी की पक्की सतह तक जैसे धड़कने लगी। शिवनाथ को समझते देर न लगी कि आगंतुक कौन है। वह उठ खड़ा हुआ और बोला—गोसाईं बाबा!

जोश से तमतमाया चेहरा लिये तेजी से रामजी गोस्वामी आकर खड़े हो गये। जो जंजीर शिवनाथ को जकड़ने लगी थी, स्वतः ही ढीली पड़ गयी। उसने पलक मारते अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया और कुंजियों का गुच्छा उनकी ओर बढ़ाते हुए बोला—इसे तुम रख लो बाबा।

संन्यासीजी जिस तूफानी चाल से वहाँ आये, वह उनके अंतर के

प्रबल आवेग का ही नतीजा था। सारे गाँव में यह समाचार बिजली की तरह दौड़ गया था। नौजवानों के अभिभावक शिवनाथ को भला-बुरा कहने लगे थे, व्यापारियों में एक खौफ समा गया था और पढ़े-लिखों में शिवनाथ की प्रशंसा शुरू हो गयी थी। कुछ नौजवान घर की चहार-दीवारी से बाहर आने को आकुल हो उठे थे, जैसे पंख निकल आने पर आकाश में उड़ने को पतंगे आकुल हो उठते हैं।

संन्यासीजी डाँट-फटकारकर शिवनाथ को रोकने के लिये आये थे। लेकिन जब वह उसके आमने-सामने खड़े हो गये, तब उन्हें महसूस हो गया कि शिवनाथ अब वह अल्हड़ बालक नहीं है, जो खुशी से कभी उनकी गोदी पर झपट पड़ता था, जिसे वह बेटा-बेटा कहकर अपनी छाती से लगाकर खुशी से पागल हो उठते थे। वह शिवनाथ यह नहीं है। और उनके अंतर में भूकंप-सा आया, जिसके सर्वग्रासी कंपन से सब कुछ जैसे चूर-चूर हो गया। उन्हें एक बात याद आ गयी। एक दिन उन्होंने खुद ही शैलजा से कहा था कि हिरनौटा तो कुलांचे मारकर निकल ही भागता है। आज सचमुच ही हिरनौटे ने कुलाँच मारी है!

शिवनाथ ने संन्यासीजी को श्रद्धा से प्रणाम किया। बोला—मैं लड़ाई में जा रहा हूं बाबा, मुझे आशीर्वाद दो।

संन्यासीजी उसकी ओर देखने लगे। डाँट-फटकार का अब अधिकार नहीं रह गया था। उनके जी में आया कि शिवनाथ के दोनों हाथ पकड़ कर उससे निहोरा करते हुए कहें—मेरे बेटे, इस तूफान में तुम मत कूद पड़ो। तुम्हें पता नहीं है, अंग्रेजों की ताकत को मैं जनता हूँ—ये धरती जीत ले सकते हैं। उन्हें लड़ाई की तस्वीरें दीखने लगीं—तोप, बन्दूक, सैनिकों का लहराता हुआ पारावार। मगर वह बोल नहीं सके। शिवनाथ की आँखें दीये की लौ-सी झलमला रही थीं। उनसे अपनी आँखें मिलाकर ये बातें वह कहते तो कैसे कहते!

शिवनाथ ने कहा—जिंदगी में तुमने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं बाबा, लेकिन ऐसी लड़ाई से कभी तुम्हारा पाला नहीं पड़ा। इसमें मरना ही पड़ता है, मारना नहीं। यह सत्याग्रह की लड़ाई है! बन्दूक के मुंह पर वीर की तरह निहत्थे ही छाती खोलकर खड़ा होना पड़ता है इसमें।

संन्यासीजी ने शिवनाथ के माथे पर अपना हाथ रखा। कहा—बहुत-बहुत दिन जियो मेरे बेटे, तुम्हारी आयु सौ की हो।

गोसाईं बाबा चल देने को मुड़े। शिवू ने कहा—ये कुंजियाँ अपने पास रख लो बाबा। न होगा, तो मास्टर साहब के जिम्मे लगा देना। एक ही दो दिन में वह आ जायँगे।

संन्यासीजी से नकारते न बना। उन्होंने अपना हाथ बढ़ा दिया।

शिवनाथ तिरंगा लेकर फिर निकल पड़ा।

तैंतीस

उन्मत्त सागर की जो हालत होती है, कलकत्ता की हालत इस समय वही हो रही है। जहाँ देखो, सभा हो रही है, जुलूस निकल रहे हैं, उन्मत्त सागर-जैसा राष्ट्र का जीवन तरंगों से लहरा-लहरा उठता था। अप्रतिहत प्रवाह की तरह शासन की किलेबंदी की दीवारों को तोड़ फेंकने के लिये स्वयंसेवकों के जत्थे के जत्थे चले जा रहे हैं। विशाल नगरी के घर-घर में क्या औरत और क्या मर्द प्रत्येक के एक-एक रोम में सिहरन हो रही है। इतने पर भी शहर के अधिकांश घर के किवाड़ बंद पड़े हैं—सागर की हुंकार के समान तीव्र आह्वान के बावजूद ज्यादातर लोग डर के मारे सुन्न घसीट गये हैं।

ऐसे भी लोग हैं, जो जीवन की इस उत्साहमयी लहर की निन्दा करते हैं। आपस में बहस-मुबाहसे के बाद इस आन्दोलन को आत्मघाती सिद्ध करते हैं। ऐसे लोगों में से अक्सर या तो पूंजीपति हैं या जमींदार, जो सब प्रकार सुखी-संपन्न हैं। क्रान्ति के कोलाहल से उनकी नसों के तार झनझना उठे हैं। कल्पना की आँखों आन्दोलन के भावी रूप को देखकर उनके होश उड़ रहे हैं। उन्हें स्पष्ट मालूम हो रहा है कि इस प्रलयकारी विप्लव के थपेड़े से वर्तमान बुद्बुद् की तरह अतीत के गर्भ में विलीन होता जा रहा है, वर्तमान के साथ-साथ उनके जीवन का सर्वस्व भी स्वाहा हो रहा है।

रामकिंकर बाबू ऐसे ही लोगों में से हैं। धनी और जमींदार तो वह हैं ही, उच्चपदस्थ राजकर्मचारियों में पहुँच है, आदर भी है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि आइन्दे उनकी इस इज्जत में इजाफा होनेवाला है। ऐसी दशा में उनका ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रास्ते से जब कोई जुलूस गुजरता है, तब उनकी भँवें सिकुड़ जाती हैं। उनकी इस खीझ की हवा उनके सारे घर को ही लगी है। घर की औरतें तक कहा करती हैं—मुए, मौत के कौर हैं। घर के सब निकम्मे आ जुटे हैं। न काम है, न धंधा। नारे लगाकर मरे जा रहे हैं।

कोई हँसकर कहती—इस तरह गले फाड़-फाड़कर न चिल्लायें, तो पुलिस गिरफ्तार ही नहीं करेगी। खाना नसीब नहीं होता। जेल में दो दिन जी तो जायेंगे खाकर!

दूसरी कहती—जिस दिन पड़ जायँगे गोली की चोट पर, उस दिन समझेंगे। उनकी सारी बातें सुनी-सुनायी होतीं, रटे बोलों की रट।

जो भी हो, शोरगुल सुनकर बरामदे पर पहुँच जाना उनके लिये जरूरी हो गया था। घर के सामने ही बड़ा-सा पार्क। जब कभी उसमें सभा होती, शुरू से आखिर तक छत से देखे बिना उन्हें चैन ही कहाँ! भाषण का कुछ अंश तो वे सुन पातीं, बहुत कुछ नहीं भी। लेकिन भाषण देनेवाले और भीड़ की जो नाराजगी हवा में तिरती आकर उन्हें छू जाया करती, उसका अनुभव उन्हें जरूर होता। और, तब वे खिलौने के समान चुप्पी मारे कोने में खड़ी हो जाया करतीं। छत की रेलिंग में मुंह गाड़कर बच्चे सब कुछ देखा-सुना करते और भीड़ के साथ वे भी चिल्ला उठते—वन्देमातरम्।

गौरी का ढाई साल का नन्हा, वह भी अपनी तोतली बोली में कह उठता—बण्डेमाटम्। जब कभी वह भूल जाता और माँ के पास दौड़ा आता, कहता—बुण्डे—बोल, बुण्डे—

गौरी कहती—छिः, वह नहीं कहते बेटा।

वह रो पड़ता, न, बोल।

लाचार गौरी कहती—वन्देमातरम्।

फिर वह याद करने के लिये 'वण्डे माटम्' की झड़ी लगा देता। उस दिन कमलेश ने उसकी रट सुनकर व्यंग्य से कहा—वाह, इसीको कहते हैं बाप का बेटा, सरदार का घोड़ा। खूब नारा बुलंद कर रहा है!

कमलेश का व्यंग्य गौरी को चुभा। वह कहने लगी—बच्चे जो औरों से सुनते हैं, वही बोलते हैं, इसमें गुनाह क्या हो गया ऐसा? घर के सभी बच्चे तो यही रट रहे हैं, कसूर गिना गया सिर्फ मेरे ही बच्चे का!

कमलेश ने हँसते हुए कहा—और लड़कों के कहने में और तेरे लड़के के कहने में जमीन-आसमान का फर्क है। लड़का कैसे बाप का है! उसका बाप कट्टर देशभक्त है, महापुरुष है। तेरा लड़का भी वैसा ही होगा यह भी कोई महान-वहान व्यक्ति होगा। उसके लच्छन नहीं देखे हैं?

गौरी का अँचरा पकड़कर खींचते हुए नन्हा 'वंद्रेमातम' की रट लगा रहा था। धप् से उसकी पीठ पर एक धौल जमाकर गौरी बोल उठी—कपड़ा क्यों खींचे जा रहा है, फट जायगा। अभागा मर भी तो नहीं जाता कि निश्चित हो जाऊँ।

कमलेश अप्रतिभ होकर वहाँ से गायब हो गया। रोने की आवाज सुनकर बगल के कमरे से नानी ने गौरी को झाड़ना शुरू किया—लड़के को क्यों पीटती है रे निगोड़ी! जब-तब धमाधम पीटती ही रहती है। पाजी कहीं की! ऐंह, मा-पना का रोब गाँठा जा रहा है।

और कभी ऐसा होता था तो अपने लड़के के प्रति नानी के असीम स्नेह को सोचकर गौरी चुप लगा जाती थी, शांत रह जाती थी। अब न तो वह झिझकती है, न शांत ही रहती है। उलटे उबल पड़ती है और लड़ने लगती है।

गरमाकर उसने कहा—अच्छा करती हूँ, और पीटूंगी। जान खाता है, तो डाँट-पीट करूँगी ही। स्नेह से सिर चढ़ा लेने की स्थिति मेरी है कहाँ? मुझे तो इसे आदमी बनाना है।

ऐसी स्थिति में अक्सर गहरी ठन जाया करती और तब रामकिंकर बाबू को गौरी को मनाना पड़ता। उनकी बातों से गौरी को आज भी सांत्वना मिलती है, भरोसा होता है। आते ही वह घरभर को थियेटर-सिनेमा भेज देते या अच्छे कपड़े या कोई गहना गौरी को दिया करते। उस दिन सारी रात गौरी ने करवटें बदलकर काटी। बार-बार उसकी कल्पना में अपनी मृत्युशय्या की तस्वीर दिखायी देती रही कि वह पड़ी-पड़ी अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रही है और 'वह' उसकी खाट पर बैठा है। उसकी आँखों से सावन-भादों जारी है और बार-बार कहता है कि मुझे क्षमा कर दो। गौरी कभी उसे हँसती हुई क्षमा कर देती है; कभी सोचते-सोचते वह करवट बदलकर सो जाती है। शिवनाथ के आने की खबर आती है, वह कह बैठती है, नहीं-नहीं, उसे मैं नहीं देखना चाहती, देखना नहीं चाहती। कल्पना के साथ ही एक आवेश से वह बिस्तर पर रोगी के समान छटपटा उठी। बच्चा जगकर रोने लगा। क्रोध से उन्मत्त-सी होकर वह बच्चे को पीट चली, हंगामा खड़ा कर दिया। इस तरह कभी-कभी बच्चे को छाती से लगाकर सिसक-सिसक कर रोती रह जाती।

आज की जो कहासुनी हो गयी, उसका भी रूप कुछ वैसा ही होने-वाला था, लेकिन अचानक एक उलटा हलकोरा आ गया और प्रवाह की गति रुद्ध हो गयी। नानी गौरी की बात का एक करारा-सा जवाब देने जा रही थीं कि गौरी का दस-बारह साल का ममेरा भाई दौड़कर पहुँचा और कहने लगा—दादी, गौरी दीदी के दुल्हे को सिपाही पकड़ ले गये।

गौरी को जैसे बिजली छू गयी। वह जड़-सी मूक और पंगु हो गयी। नानी के मुंह से भी कुछ देर तक शब्द नहीं फूटा। जरा देर बाद वह

चिल्लाकर रो उठी—हे भगवन्, यह क्या गजब हो गया, मैंने क्या बिगाड़ा।

वह लड़का बोला—तो रोने-धोने से क्या होगा? जैसी करनी वैसी भरनी। सरकार से चाल चल सकती है कहीं!

यह खबर राखाल सिंह खुद ले आये थे। उसी दिन शिवनाथ से रूठकर वह अपने घर चले गये थे। लेकिन घर जाकर एक दिन को भी वह निश्चिन्त नहीं रह सके। तीसरे दिन उन्होंने बहूरानी को ले जाने का निश्चय किया और कलकत्ता आकर रामकिंकर बाबू को पकड़ा। उनके दोनों पैर पकड़कर बोले—बड़ी मुसीबत आ पड़ी है बाबू, बहू को भेज दीजिये, वरना सब कुछ बिगड़ने को है।

राखाल सिंह चौंके। उन्होंने समझा, हो न हो, शिवनाथ बीमार है। पूछा—क्यों, हुआ क्या है राखाल सिंह? शिवनाथ—

बस, सर्वनाश हो गया बाबू, बाबू को पुलिस ने पकड़ लिया है।

पुलिस ने पकड़ा है?

हाँ, बाबू! उस दिन पकड़ा था, लेकिन छोड़ दिया। अब कहीं पकड़ाये तो खैरियत नहीं। और बाबू हैं कि अपनी हरकतों से बाज नहीं आते। लाख मना कीजिये, किसी की एक नहीं सुनते। कसम-सी खा बैठे हैं।

रामकिंकर बाबू समझकर भी जैसे नहीं समझ रहे थे। बात पर यकीन करते हुए उन्हें पीड़ा हो रही थी। इसलिये उन्होंने फिर पूछा—किसके साथ फौजदारी हुई है?

फौजदारी नहीं हुजूर, स्वदेशी-आंदोलन।

हुँ।—उन्होंने एक लंबी साँस ली।

बहूरानी को आप जरूर भेज दें। उनके जाने से शायद वह बाज आ जायँ। वह कहेंगी, रोयेंगी-पीटेंगी, तो बाबू टाल नहीं सकेंगे।

अपने किये पर पछतावा और इस बिगड़ेदिमाग दामाद पर क्रोध से उनका हृदय तीखा हो उठा। उनके जी में आया कि एक बार उससे उनकी मुठभेड़ हो जाय। अपनी आग उगलनेवाली आँखें उसे दिखाकर वह उसे जमीन में धंसा दें। लेकिन उन्हें एक बीता हुआ दृश्य याद आ गया। हरीसन रोड पर एक दिन ऐसी ही नजर से उन्होंने शिवनाथ को देखा था, मगर उस तरुण ने उस निगाह की कतई परवा न की, उन्हें ठुकराकर अपनी राह चला गया। उनका क्रोध और कटु हो गया। राखाल सिंह भी जैसे उन्हें नहीं सुहा रहे थे! इतने में उनकी माँ यानी गौरी की नानी ऊपर रो उठीं। वह चटपट ऊपर चले गये। बेटे पर नजर पड़ते ही माँ ने कहा—तू ने मेरी नान्ती को कुएँ में ढकेल दिया। आखिर में उसके भाग्य में क्या यही बदा था!

लंबी साँस भरकर रामकिंकर बाबू बोले—नान्ती है कहाँ?

उनके भतीजे ने, जिसने यह खबर अभी-अभी अंदर पहुँचायी थी, कहा—अभी तो वह छत पर गयी है।

ऐसी दोहरी स्थिति गौरी के जीवन में और कभी नहीं आयी। उसे एक तो इस बात की चोट लगी कि उसे उपेक्षा करके, उसके साथ के सब संबंध को मिटा देने के खयाल से ही शिवनाथ जेल की दीवारों के अंदर अपना खातमा करने गया है। दूसरे उसे इससे लज्जा हुई। चूँकि वह इस परिवार की संस्कृति और रुचि में पली, इसलिये यहाँ के अनुसार जेल जाने से बड़ी लज्जा और कोई हो भी नहीं सकती! यों भी उसकी ग्लानि का कोई अंत नहीं था। उसके भाई और बहनोई हजारों-हजार लाखों-लाख रुपये कमा रहे हैं और उसका पति जाने किस अनजान बस्ती में बैठ कर खेती कर रहा है! इस सुसज्जित महानगरी के पथ पर कीमती पोशाक पहनकर जुलूस के साथ जानेवालों की तुलना में एक मामूली गाँव के बीच धूप से झुलसे हुए पति की याद करके, उसका माथा झुक

आता है। उस लज्जा के ऊपर से इस दूसरी लज्जा का भार वह कैसे ढोयेगी ?

सामने ही राजपथ पर लोगों का प्रवाह। मगर वह जैसे उसे निकम्मा लगने लगा। पार्क के पेड़-पौधे, आस-पास के घर-द्वार, सब कुछ ही आज उसकी आँखों में अर्थहीन हो उठे। यहाँ तक कि धरती और आकाश के बीच की दिखनेवाली प्रकृति में भी उसके लिये कोई आकर्षण नहीं रह गया। यकायक उसके कानों में गीत की कोई कड़ी ध्वनित हुई, जाने कहाँ से, कितनी दूर से उड़कर आ रही थी। आँखों ने उस आवाज का अनुसरण किया—देखा, स्वयंसेवकों की एक टोली गीत गाती हुई आ रही है और सड़क की मोड़ पर सिपाहियों का एक जत्था अड़कर खड़ा है।

गौरी को इस बार एक अभूतपूर्ण अनुभूति हुई। पता नहीं क्यों, उसने आज तक जैसा कुछ देखा किया, आज उसका उलटा देखा। उन स्वयंसेवकों के चेहरे पर उसे उच्छृङ्खलता की छाप नहीं दिखायी दी, दुष्ट-जैसी कठोरता का आभास नहीं मिला। उसे लगा कि साहस, वीरता और महिमा से वे किशोर देवताओं-से दीख रहे हैं। करोड़ों-करोड़ नर-नारियों की चकित-मुग्ध दृष्टि उन सब की आरती उतार रही है।

ममेरे भाई ने बीच ही में रोक दिया—गौरी दीदी, चाचा तुम्हें बुला रहे हैं।

गौरी के होश हो आया! उसे लगा, उसका हृदया जाने कितना हलका हो गया है, उसमें अब ग्लानि का कहीं लेश भी नहीं। वह जैसे मस्तक उन्नत किये नीचे आयी। कुछ चिंतित हुए-से रामकिंकर बाबू अपनी माँ से राय-मशविरा कर रहे थे। पास आकर कन्या-सुलभ कंठ से गौरी ने कहा—नामू जी, मैं श्यामपुर जाऊँगी।

श्यामपुर!

जी!

रामकिंकर बाबू ने कहा—अच्छा, जाओ। कमलेश को तुम्हारे साथ किये देता हूँ, तुम शिवनाथ को राजी कर लेना, कमलेश मैजिस्ट्रेट से मिलकर सब ठीक कर लेगा। चिंता न करना—हाँ ?

डब्बे में घुसने पर गौरी के जी में जी आया! बच्चे को लेकर डेवढ़े दर्जे के खाली जनाना डब्बे में वह बैठ गयी। कमलेश उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहता था, पर वह बोली—इसी में मुझे आराम रहेगा। मर्दाने डब्बे में घूँघट काढ़कर बैठे-बैठे मेरा दम फूलने लगता है।

सूने डब्बे में उसे बड़ी सांत्वना मिली, मानों ऐसी ही निर्जनता उसे इस समय चाहिये थी। सारी दुनिया ही आज जैसे बदल गयी है। दृश्यमान प्रकृति से लेकर उसका अपना अंतर तक सब कुछ जैसे नये बोल बोलने लगा है। गाड़ी वेग से दौड़ी जा रही है, सुदूर प्रसारी हरियाली से भरे खेत पीछे भागे जा रहे हैं, पौधों से भरे खेत उसे सदा से सुहाते आये हैं, मगर आज अच्छा लगने का स्वाद ही कुछ और है! आज उसे हरे पौधों का जीवन प्रत्यक्ष दिखायी दिया, पौधे जैसे झूम-झूमकर बातें करते हों। पौधों से ढंकी मिट्टी का रूप भी आज उसे नया लगा। यह मिट्टी वह मिट्टी नहीं है, जिसे धूल या कादों कहकर लोग झाड़ फेंकते हैं। यह वह मिट्टी है, जिसकी छाती पर नाज लगते हैं, मुसीबत में जिस पर लोट कर रोने से सांत्वना मिलती है। यह वही मिट्टी है, जिसके हृदय पर मनुष्य ने संसार बसाया है। उसे अपना घर याद आ गया। कमलेश-वाला घर नहीं, शिवनाथ का घर। अपने घर के लिये आज उसमें गाढ़ी ममता उपजी। आज ऐसा क्यों हुआ, यह सोचने का अवसर नहीं था, न हीं बेकली थी। मानों कितने ही दिनों से वह ऐसा ही होने की चाह रखती थी ; ऐसा ही नहीं होने से, इसी रूप में नहीं ग्रहण करने से वह आज तक बेचैनी और अशांति की आग में जलती रही है। घर छोड़कर वह दर-दर की ठोकर खाती रही है, अपना घर छोड़कर औरों की शरण में

अपने को अपमानित किया है। उसका मन इस समय गाड़ी से भी तेज दौड़ने लगा कि सब से पहले वह शिवनाथ के पाँव छूएगी। उसे माफी माँगने का खयाल भी नहीं आया। सोचा, प्रणाम के बाद ही उसके गले लगकर छाती में मुँह गाड़ देगी। बच्चे को उसकी गोद में रख देगी।

उसने सोये बच्चे को उठाकर अपनी छाती में जकड़ लिया। वह जग गया। उसी तरह ध्यान में डूबी रहकर ही उसने गाड़ी बदली। साँझ होते-होते गाड़ी बंदर श्यामपुर में लगी। कमलेश ने जल्द-जल्द गौरी को उतारा, सामानों को नीचे फेंका। उसके ताज्जुब का ठिकाना नहीं रहा कि इसी बीच बहुत से लड़कों ने चारों ओर से गौरी को घेर लिया था। सभी पैर छू-छूकर प्रणाम करके माथे पर उसके चरणों की धूल ले रहे थे। स्टेशन के बाहर से भी कई लड़के दौड़े आये। कमलेश उनमें से एक को पहचान पाया—वह था श्यामू। वह भीड़ हटाता हुआ गौरी की ओर बढ़ रहा था।

कमलेश खीझ उठा—अरे, यह क्या हो रहा है, बात क्या है?

श्यामू ने गर्व से कहा—शिवनाथ भैया कल गिरफ्तार हो चुके हैं। हमलोगों ने पाँच का नया जत्था बनाया है।

झिझककर कमलेश ने गौरी का हाथ पकड़कर कहा—गौरी, चल, बाहर चल। भैया, भीड़ न करो, रास्ता दो।

हौले-हौले गौरी ने कहा—मैं चलती हूँ, हाथ छोड़ दो।

कमलेश ने राखाल सिंह से कहा—सिंहजी, सामान मेरे ही घर भिजवा दीजिये।

गौरी बोली—नहीं-नहीं, मैं अपने घर जाऊँगी।

चौंतीस

शोक से भींगी हुई नीरवता में गौरी अपने घर पहुँची। गौरी को देखकर रतन और नित्तो रो पड़ीं, मगर चुपचाप रोयीं। गौरी को कहीं सदमा न पहुँचे, वह शर्मिंदा न हो, यह सोच कर उमड़ते हुए आँसू को उन्होंने आँचल से पोंछ लेना चाहा। किसन ने बच्चे को गोद में उठा लिया और आँसू बहाते हुए बाहर चला गया। राखाल सिंह बोले—देखो नित्तो, और आप से भी कहता हूँ रतन देवी, यह आँसू बहाकर अशुभ न मनाओ। तुम लोग देखती रहो न, कल ही बाबू को छुड़ा लाता हूँ। कहते-कहते वह चले गये। उन्हें आज मरने की भी फुर्सत कहाँ है! अभी कमलेश से सलाह-मशविरा करके कुछ तै करना है।

नित्तो ने कहा—भाभी, आप ऊपर चली जायँ। अभी गाँवभर की लड़कियाँ घेर लेंगी।

रतन बोली—हाँ-हाँ, वही करो। यह गाँव ऐसा गया-बीता है कि कहीं किसी के घर अच्छा-बुरा कुछ हुआ और लोग फट पड़े, जैसे दुर्गामाई बैठी हैं। तुम ऊपर चली जाओ। कोई आये भी तो कह दूँगी, बहू के माथे में दर्द है—सो गयी हैं।

गौरी ने वैसा ही किया। ऊपर चली गयी। नित्तो बोली—आपवाला कमरा ही खोल देती हूँ। साफ-सुथरा तो है ही। और एक बार बुहार देती हूँ, बिछौने की चादर बदल देती हूँ। सोना भी तो है?

अब गौरी बोली—नहीं रतन, दालान में ही बिस्तर लगाओ। मैं, तुम, रतन जीजी, सब साथ सो रहेंगी।

नित्तो की आँखों में आँसू भर आया। बोली—क्या कहूँ भाभी, बस एक रात, जिस दिन आप आयीं, उसी रात बाबू इस कमरे में सोये। उसके बाद ढाई-तीन साल बीत चले, इसमें कोई नहीं सोया। बाबू तो दूसरे ही दिन बेलगाँव चल दिये थे।

गौरी ने कुछ भी न कहा। खिड़की पर खड़ी आकाश की ओर देखने लगी। यहाँ चलने के कुछ ही पहले जिस एक उज्ज्वल प्रकाश ने उसके हृदय की कालिमा को धोकर चमका दिया था, उस पर मेघ की फीकी छाया-सी पड़ती आ रही थी। उसे शिवनाथ पर रंज हुआ, जिससे वह बेचैन हो गयी। लेकिन यह रंज पहले से जुदा था। इसमें न तो क्रोध था, न क्षोभ, थी अपनी भूल की झिझकी हुई जानकारी। जो भी हो, अपराध उससे चाहे जितने ही क्यों न बन पड़े हों, लेकिन जाते समय क्या एक बार उससे मिल लेना उचित नहीं था? और कुछ नहीं तो एक पत्र ही लिख देने से क्या क्षति होती?

गौरी की उदासी देखकर नित्तो को पछतावा होने लगा कि उसने यह सब कहकर भूल की। उस बात को बदलने की नीयत से वह बोली—अरे-अरे, चाय लाना तो भूल ही गयी। मेरा भी क्या दिमाग है? अभी चाय लाती हूँ।

गौरी ने पूछा—हाँ नित्तो, इस ढाई साल में क्या वह एक बार भी यहाँ नहीं आये?

नित्तो ने दीर्घ निश्वास फेंका। बोली—एक घड़ी को भी नहीं भाभी। घर-द्वार, जमीन-जायदाद को एक दिन के लिये भी उलटकर नहीं देखा। देख-रेख सिंहजी करते रहे। कहाँ तक बताऊँ, यहाँ की आय से फूटी पाई भी नहीं ली उन्होंने।

वहाँ उनका रसोई-पानी कौन करता था ?

एक रसोइया था। बस उसे रसोइया समझिये, नौकर समझिये जो भी समझिये, एक ब्राह्मण था। कपड़े वह आप फींचते थे, झाड़ू आप लगाते थे और जूता पहनना तो छोड़ ही दिया था, पालिस की क्या जरूरत! और तो और—कहते-कहते सहसा उसके जी में आया, हरे-हरे यह क्या कहती जा रही है वह! आप अपने पर खीझकर वह चुप हो रही। कहा—ये बातें रात को होंगी। पहले आपके लिये चाय ला दूँ।

सारी रात जागते ही बीती। इस ढाई साल के अर्से में जो-जो हुआ, नित्तो और रतन ने उसे सुनाया। गौरी सुनती रही। नित्तो जो कहना भूली, सो रतन ने बताया और रतन से जो छूटा, उसे नित्तो ने पूरा कर दिया। कहते-कहते रतन को आवेश आ गया। अपने को वह रोक नहीं सकी। बोली—बुरा मत मानना बहन, यह सब कुछ तुम्हारे और मौसी के दोष से हुआ है। अगर आपस में उलझकर तुम दोनों इधर-उधर नहीं गयी होतीं, तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता।

नित्तो से भी अब न रहा गया। बोली—फूफी तो बहुत पहले जा चुकी थीं। आप यदि न गयी होतीं भाभी, तो मजाल था कि भैया जी ऐसे बाबाजी बने फिरते, जो जी में आता, करते!

गौरी ने राग-द्वेष कुछ नहीं किया। म्लान हँसी हँसकर बोली—दोष मैं अपना कबूल किये लेती हूँ। लेकिन एक बात भली तरह सोच देखो कि मेरे होते क्या तुम्हारे भैया यह सब कुछ नहीं करते।

रतन इसे साफ-साफ इनकार नहीं कर सकी। फिर भी उत्तर दिया—हाँ करते, लेकिन इतना नहीं कर पाते।

गौरी ने हँसकर कहा—देखो, जो करता है, वह नाप-जोखकर, सोच-विचारकर नहीं करता। तुम लोग कलकत्ता होतीं, तो इसकी सचाई समझतीं। वहाँ क्या रात; क्या दिन—हर घड़ी यही चल रहा है। सी० आर० दास

जैसे आदमी, जो साल में लाखों रुपये कमाते थे, सब छोड़-छाड़कर जेल चले गये उनकी पत्नी वासंती देवी, वह भी जेल गयीं। उनके लड़के भी गये। गाँधीजी भी जेल गये। मगर जानती हो, ऐसे भी लोग हैं, जो ऐसों की निन्दा करते हैं! कहते हैं कि सब मिलकर देश का सत्यानाश कर रहे हैं। स्वयंसेवकों के बारे में कहा करते हैं कि वे भूखों मरते हैं, पेटभर खाने के लिये जेल जा रहे हैं! माना, मगर यह तो कहो, तुम्हारे भैया को किस बात की कमी थी कि वे जेल गये!

रतन ने अचरज से कहा—अच्छा, लोग ऐसा कहते हैं?

नित्तो ने गर्व से कहा—लेकिन यहाँ तो कोई भी ऐसा नहीं कहता। आज भैयाजी का नाम घर-घर फैल गया है, हर जबान पर उनकी चर्चा लगी है।

अचानक गौरी की दोनों आँखें बरस पड़ीं, जैसे नदी का बाँध टूट गया हो! अपने को वह और नहीं रोक सकी। वह बच्चे को अपनी ओर खींच कर चुपचाप रोती रही।

अंधेरे में रतन और नित्तो का अपना चर्खा चालू ही रहा। बड़ी देर में उन्हें ख्याल आया कि बहू तो कुछ बोल-चाल नहीं रही है। रतन ने धीमे से पुकारा—बहू?

कोई उत्तर नहीं मिला।

नित्तो बोली—छोड़ दो, सो गयी हैं।

वे दोनों भी करवट बदलकर सो गयीं।

भोर होते गौरी की आँख लगी। इसलिये सवेरे वह नहीं जगी। यों कलकत्ता में भी वह देर से जागती थी, फिर यहाँ रात जो जगी सो अलग। नित्तो ने पुकारकर उसे जगाया। बोली—आपके भैया बुला रहे हैं।

वह नीचे गयी। देखा, कमलेश अकेले ही नहीं था, इस घर के जो भी हितू थे, सब मौजूद थे। राखाल सिंह, किसन, कुल के भानजे के वंश

के कई लोग, यहाँ तक कि रतन बाबू मास्टर भी थे। गौरी ने घूंघट को थोड़ा खींच लिया और एक तरफ खड़ी हो गयी।

कमलेश बोला—जल्द-जल्द नहा-खा लो बहन, दस बजे चलना है। गौरी ने गर्दन हिलाकर हामी भरी। कमलेस बोला—छुड़ा तो उसे हम चुटकी बजाते लेंगे, बशर्ते कि वह राजी हो जाय। सो जैसे भी हो, तुम्हें उसे राजी करना पड़ेगा।

रतन बाबू ने कहा—इम्पासिबुल, शिवनाथ कान्ट डू इट। उसका मन और ही धातु का बना है।

राखाल सिंह बिगड़ उठे। बोले—देखिये मास्टर साहब, इन सब की जड़ आप हैं। मगर अब राह में रोड़े न डालें, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

भानजे वंश के एक सज्जन बोले—रिश्ते में शिवनाथ के दादा होते थे—नहीं-नहीं, जिद से शिवनाथ का बुरा होगा। आपका ऐसा कहना बेजा है मास्टर साहब। यह इतनी छोटी बहू, नन्हा-सा लड़का, इतनी-इतनी जायदाद, सबको ठुकराकर चल देने से काम चल सकता है भला न हो तो, आप भी साथ जायँ। आप की बात वह रखता है, तो आप भी उसे समझा कर कहें।

मास्टर ने साफ नकार दिया। बोले—मुझसे यह हर्गिज न होगा। उससे शिवनाथ छुटकारा तो पा जायगा, पर वह गिर कितना जायगा, यह भी मालूम है ?

कमलेश इस बार रुखाई से बोला—खैर। आपके जाने की जरूरत नहीं—कुछ कहने का भी कष्ट आपको नहीं उठाना पड़ेगा। इतनी ही कृपा रखिये कि बीच में बाधक न बनिये, लंबी मत मारिये। हुँः! जेल ही जाने में बड़प्पन है और जो जेल नहीं जाते, वे कौड़ी के तीन हैं! क्या तर्क है! आप कृपा कर बाहर जायँ।

कमलेश की बात पर गौरी का हृदय, नये सिरे से परिवर्तित हृदय,

सहमत् नहीं हो रहा था। मगर वह विरोध भी नहीं कर सकी। इतने लोगों के सामने शिवनाथ के बारे में अपनी राय देने में एक बहू को जो लज्जा हो सकती है, वही उसे भी हुई। उसका मुँह नहीं खुला, किन्तु मन बार-बार यही कह रहा था कि उन्हें आदर्शों से गिरने को, हेय हो जाने को वह नहीं कह सकेगी, नहीं कहेगी। उन्हें हेय होने का अनुरोध कर उनकी नजर में अपने को नहीं गिरा सकेगी।

कमलेश की बात पर रामरतन बाबू ने कहा—ऑल राइट, मैं जाता हूँ। मगर द्वार तक पहुँचते ही ठिठक गये। विस्मय से अभिभूत होकर आनन्द से गद्‌गद् होकर बोल उठे—फूफी।

एक ही क्षण में सब की दृष्टि द्वार पर जा रही। शैलजा अन्दर आयीं। उफ्, उनमें कितना परिवर्तन आ गया है। तपस्विनी के समान कुछ-कुछ दुबली देह, तप की उज्ज्वलता जैसी ही रंग की स्वच्छता, उसी के अनुरूप मुखमण्डल पर दृढ़ता का आभास। सर के बाल छोटे-छोटे छँटे। उन्हें देखकर सबके-सब अचम्भे से अवाक रह गये।

उन्होंने ही पहले पूछा—मेरे शिवू को पकड़कर ले गया है?

राखाल सिंह फुक्का फाड़कर रो पड़े। किसन ने भी रोना शुरू कर दिया? मास्टर साहब स्वगत बोल उठे—इडियट्स!

शैलजा ने कहा—राखाल सिंह रो क्यों रहे हो?

उन्होंने कहा—अब मैं छुटकारा चाहता हूँ माँ जी, यह भार ढोया नहीं जाता। शैलजा विचित्र ढंग से हँसीं। बोलीं—बेटे, जो भार जिसका है, वह उसी को ढोना पड़ता है। माँगने ही से क्या छुटकारा मिल सकता है कि मनुष्य ही छुटकारा देनेवाला मालिक है! लो, यह रहा कुञ्जियों का झब्बा। शिवू गोसाईं दादा को दे गया था, वे मुझे दे गये।

भानजे-वंश के किसी ने कहा—हाँ-हाँ, कोई चार दिन हुए कि पुजारी को मन्दिर का सब भार सौंपकर वह तीरथ के लिये गये हैं।

नित्तो ने आसन बिछा दिया—फूफीजी, बैठिये।

शैलजा बैठ गयीं। बोलीं—यह खबर मुझे उन्हींने पहुँचायी! कहा, जीजी, तुम्हीं जाओ? मेरी तो शिवू ने एक न सुनी! उनसे यह सुनकर मुझसे रहा नहीं, दौड़ी आयी।

रामरतन बाबू ने पूछा—उन्हीं के साथ आयीं क्या?

नहीं तो। वह मुझे कुंजियाँ देकर केदारमठ चल दिये। कहा, हिरनौटा पाला था, उसकी ममता से रो-रोकर मरा जा रहा हूँ। अब आँखों के जवाब देने के पहले एक बार गुरु के दर्शन कर लेने की इच्छा है। और मेरा भाग्य देखो, बाबा विश्वनाथ की शरण में गयी, वहाँ भी रहना नसीब नहीं हुआ। शिवू को देखने के लिये प्राण रो उठे। दौड़ी आ रही हूँ, अकेली ही आ गयी। हाँ, तो शिवू को कब पकड़कर ले गये लोग?

राखाल सिंह ने कहा—सोमवार की साँझ को। आप चिंता न करें। चलिये, आज ही शहर चलें। उसे छुड़ा लावें।

अचंभे में आकर उन्होंने पूछा—छुड़ा लावें?

हाँ, कमलेश बाबू मजिस्ट्रेट को राजी कर लेंगे। आप भी चलिये, बहूरानी भी चलें। आपलोग किसी तरह बाबू को तो राजी कर दें। बस एक इकरारनामा लिख दिया जायगा। वह छूट जायँगे।

बहूरानी आ गयी हैं?

नित्तो ने कहा—जी। कल आयी हैं। लोग-बाग हैं, इसीसे यहाँ आ नहीं रही हैं।

शैलजा ने नित्तो की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। राखाल सिंह से बोलीं—तुम लोग बहूरानी को ही लिवा जाओ। इकरारनामा लिखकर छूटने का प्रस्ताव मैं उससे नहीं कर सकती।

रामरतन बाबू गद्‌गद् होकर बोले—दैट्स लाइक फूफी!

शैलजा कहती गयीं—मेरे बाबूजी कहा करते थे, जूठन खाना और पैरों पड़ना—ये दो काम करने के नहीं। मैं उसे भूल मान लेने को नहीं कह सकती—बँध जाने को बाध्य नहीं कर सकती। हाँ, कोई गलत काम वह करता, तो एक बात भी थी। चार साल काशी में रही। देखती रही, कितने ही कोमल बच्चे हँसते-हँसते जेल गये, फाँसी पर चढ़ गये, कालापानी चले गये। इधर छः महीनों से दल के दल बच्चे, जवान, बूढ़े देश के नाम पर जेल जा रहे हैं। पहले जब शिवू बात-बात में 'देश और देश' किया करता था, तब मैं समझ नहीं पाती थी। काशी रहकर मैं समझ सकी कि यह कितना पवित्र और महत् कार्य है। इसके लिये मैं उसे माफी माँगने को नहीं कहूँगी।

गौरी से और नहीं रहा गया। आकर उसने फूफी के पांव छुए और बोली—यह मुझसे भी नहीं होने का फूफी, आप इन लोगों को मना कर दीजिये।

नित्तो ने कहा—आप लोग जरा बाहर तो हो जाइये। सास-बहू को सुख-दुख की दो बात करने का मौका तो दीजिये।

यह सुनकर सबसे पहले कमलेश उठ खड़ा हुआ। मुँह भारी-भारी किये वह वहाँ से चला गया।

बहू की ओर देखती हुई शैलजा ने रूखे ही स्वर में कहा—आखिर तुम आयी बेटी ?

गौरी अपराधिनी की नाईं चुपचाप खड़ी रही। उसकी आँखें आँसुओं में डूब गयीं। रतन आशंकित हो उठी, नित्तो जल्द-जल्द बाहर निकल भागी।

शैलजा ने फिर कहा—यह चाबियों का झब्बा अब तुम्हीं लो। राखाल सिंह को देना भूल गयी, यह अच्छा ही हुआ।

गौरी की आँखों से आँसू बहकर अब मिट्टी को भिंगोने लगा।

नित्तो नन्हे को गोद में लेकर दौड़ी आयी—बताइये फूफी, यह कौन ?

नन्हे को देखकर शैलजा रो पड़ीं—यह तो शिवू ही जैसे नन्हा बनकर फिर आ गया है। बचपन के शिवू में और इसमें जरा भी अंतर नहीं।

नित्तो ने नन्हे को उनकी गोद में डाल दिया—लीजिये, अपनी गोद में लीजिये।

शैलजा ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। दुबारा उसे गौर से देखकर बोलीं—ठीक छुटपनवाला शिवू ही है!

नन्हा भी अचरज से उन्हें देखने लगा था। नित्तो ने कहा—मुन्ने, दादी हैं। कहो, दादी!

उसे अपनी छाती से लगाये फूफी ने बहू से कहा—बहूरानी, इसमें रोती क्या हो विहो। यह भी कोई रोने की बात है। छिः। आओ, मेरे पास बैठो—रोना क्या! मेरा शिवू जैसे-तैसे काम में थोड़े ही जेल गया है? भगवान से प्रार्थना करो, दो-चार वर्ष या दस वर्ष में—अपने जीवन में ही वह विजयी बनकर लौट आये।

मुन्ना उनके रुद्राक्ष से उलझ पड़ा था। फूफी ने हँसकर कहा—क्यों भैया, दादी की दौलत पर झपट्टा मार रहे हो? बहू, जरा बेटे की करामात देखो, कैसा काइयाँ है।

गौरी हँसने लगी।

बित्तो ने कहा—मगर भैयाजी को तो छुड़ा ही लाइये।

फूफी ने कड़ी निगाह से घूरकर कहा—हर्गिज नहीं, यह हर्गिज न कहो। इससे मेरे शिवू का सर झुकेगा।

रतन बोली—खैर, न छुड़ाओ, उससे मिल तो आओ सही।

शैलजा का गला भर आया। बोलीं—हाँ, वहाँ तो जरूर जाऊँगी। आज ही जाऊँगी। नित्तो, बुला तो राखाल सिंह को।

पैंतीस

जेल में कमरों का उतना अच्छा प्रबंध नहीं था! क़ैदियों से मिलने-जुलने के लिये कोई अलग कमरा नहीं था। भेंट-मुलाकात दफ्तरवाले कमरे में ही की जाती थी। वह कमरा भी इतना छोटा-सा था कि कहीं दो से तीन आदमी हुए कि मुश्किल। शैलजा ने कहा—हम लोग बाहर खड़े-खड़े ही मुलाकात कर लेंगे। साथ में राखाल सिंह और रामरतन बाबू थे। गौरी के साथ बच्चे को लेकर नित्तो थी।

फाटक खोलकर शिवनाथ को दफ्तर में खड़ा कर दिया गया। उसकी नजर बाहर जो पड़ी, तो वह अचरज और आनंद से अवाक हो गया—फूफी! गौरी! आने के समय उसने पहरेदार से जानना चाहा था कि कौन मिलने आये हैं। उसने कहा—अजी साहब, बहुत-बहुत आदमी आये हैं, औरतें भी हैं। इससे उसने समझा था कि राखाल सिंह आये होंगे और उनके साथ रतन और नित्तो होगी। वे भी सगे-सम्बन्धियों से कुछ कम अपने न थे।

रुँधे गले से फूफी ने कहा—शिवू!

जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो, शिवू ने कहा—फूफी!

फूफी को मानों कहने के लिये बात नहीं मिल रही थी। उन्होंने बहुत खोज-ढूँढ़कर ही कहा—बहू आयी हैं, मैं आयी हूँ, मुन्ना आया है—हम सब तुमसे मिलने आये हैं।

शिवनाथ को लिखकर उसे लौट जाने का अनुरोध करने तो नहीं आये? अपने को जब्त किये वह चुपचाप खड़ा रहा।

धीरे-धीरे फूफी भी अपने को सम्हालती जा रही थीं। उन्होंने कहा—मैं तुझे आशीर्वाद देने आयी हूँ बेटा। बहू प्रणाम करने आयी है। मुन्ना तुझे, अपने बाप को, देखने-चीन्हने आया है। तू इसे आशीर्वाद दे मेरे बेटे कि यह भी तुझी-सा बड़ा हो सके।

शिवनाथ का मुख उज्ज्वल हो उठा। उसका कलेजा भर गया। लगा, अपने जीवन में वह इससे बड़ी वस्तु कभी नहीं पा सका है। उसका सारा दुःख, सारा अभाव मिट गया है, उसके अंतर की शक्ति हजार गुनी हो गयी है। मुड़कर उसने गौरी की ओर देखा। आधे उघरे घूँघट से उसका चेहरा साफ दीख रहा था। उसके होंठों पर हँसी थी, आँखों में आँसू। मुखमंडल पर संकेत की कितनी ही भाषा, कितनी ही बातें सोने के अक्षरों में लिखी किसी महाकवि के काव्य जैसी झलमला रही थीं। शिवनाथ के भी चेहरे पर शायद वैसी ही लिखावट निखर उठी थी। दोनों ही मुग्ध हो गये—इस मौन में ही जाने कितनी बातों का आदान-प्रदान हो गया! उनकी परितृप्ति की कोई सीमा न रही। आज आँखों ही आँखों में एक निमेष में दोनों में जो संकल्प, जो निश्चय हो गया, वह वर्षों साथ रहकर भी होना मुश्किल था।

फूफी ने मुन्ना को खिड़की पर खड़ा कर दिया और बोली—भैया मेरे! शिवनाथ ने मुन्ने की ठोढ़ी पकड़कर उसे दुलारा। फूफी से बोला—फूफी, इसे तुम इसी तरह आदमी बनाना, जैसे मुझे बनाया। इन सब का भार तुम्हीं पर दिये जाता हूँ!

फूफी जैसे पीड़ित होकर बोलीं—ऐसा मत कह बेटा, यह भार अब मुझसे उठाये न बनेगा।